॥ ॐ सिद्धेभ्यः ॥

धर्म सुधारक-महान् क्रान्तिकार श्रीमान् लोंकाशाह

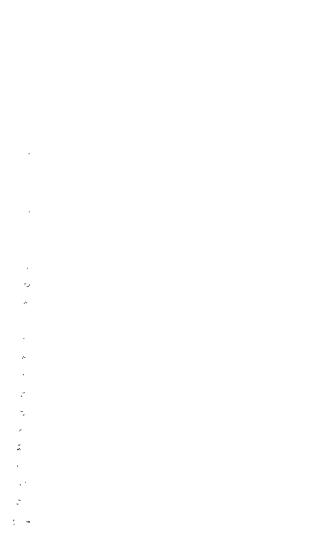
का

संनिप्त परिचय



ति श्रीर श्रवनित यह दो मुख्य श्रव-स्थाएँ श्रनादिकाल से चली श्राती हैं। जो जाति, धर्म या देश कभी उन्नत श्रवस्था में थे, वे समय के फेर से श्रवनत श्रवस्था को भी प्राप्त हुए, इसी प्रकार जो श्रस्ताचल में दिखाई देते थे, वे उन्नति के शिखर

पर भी पहुँचे, एकसी अवस्था किसी की नहीं रहती! जैन इतिहास की जानने वाले अवसर्पिणी श्रीर उत्सर्पिणी की



वित्कुल सहज होगया। विना पैसे चढ़ाये धर्म की कोई भी किया श्रसफल हो जाती थी। धन, जन, सुख एवं इच्छित कार्य साधने के लिए दुखी शक्त जन विविध प्रकार की मान्य-ताएँ (मांगनी) लेने लगे। इस प्रकार त्यागी वर्ग ने धर्म के वास्तविक स्वक्रप को भुलाकर विविध प्रकार से मन्दिर सूर्तियों का पूजना पूजाना और इस प्रकार पाखरह एवं अंध विश्वास का प्रचार करना ही अपना प्रधान कर्त्तच्य वना लिया था। धर्मोपदेश में भी वही स्वार्ध पूरित नूतन प्रन्थ, कथाएँ, चरित्र ग्रीररास महातम्य श्रादि जनता को सुनाने लगे जिससे जनता वस मन्दिरों के खुन्दराकार पापाण की ही पूजने में धर्म मानने लगी। सत्य धर्म के उपदेशक हूंढने र भी मिलना कठिन होगये, इस प्रकार अवनित होते होते जय भयंकर स्थिति उत्पन्न होने लगी, जय ऐसे निकृष्ट समय में जैन शासन को फिर एक महावीर की आवश्यता हुई, विना महावीर के वहुत समय से गहरी जड़ जमाये हुए पाखराड का निकन्दन होना श्रसम्भव था, ऐसे विकट समय में इसी जैन समाज को प्रकृति ने एक वीर प्रदान किया।

विक्रमीय पन्द्रह्वी शताब्दी के वृद्धकाल में जैन समाज को उन्नत वनाने, और भगवान् महावीर के शास्त्रों में छिपे हुए पुनीत सिद्धांतों का प्रचार कर पाखंड का विध्वंस करने के लिये इसी जैन जाति में दूसरा धर्म क्रांतिकार शीमान लोंकाशाह का प्रादुर्भाव हुआ। श्रीमान् श्रपनी प्राकृतिक प्र-तिभा से वाल्यकाल ही में श्रीढ़ अनुभवियों को भी मार्ग दर्शक रन गये, आप रत्न परीचा में निषुण एवं सिद्धहरथ थे एक गर इसी रतन परीचा में आपने वहें २ अनुभनी एवं वृद्ध

उन्नत श्रवनत श्रवस्थायों से भली भांति परिचित है। व नुसार जैन घमं को भी कई यार अनुकूल और प्रतिह अवस्थाओं में रहना पड़ा। इतिहास सादी है कि भ^{हन} पार्चनाथ श्रोर महावीर स्वमी के मध्यकाल में कितन पर वर्तन होगया था, श्रमण संस्कृति में कितनी शिथिलता ह गई थी, धर्म के नाम पर कितना भयंकर श्रंधेर चतता ह नर हत्या में धर्म मी ऐसे ही निकृष्ट समय में माना जाता ह पेसी दुरावस्था में ही श्रहिंसा एवं त्याग के श्रवतार भगवा महाबीर स्वामी का प्रादुर्भाव हुत्रा, श्रीर पाखरुड एवं क्र विश्वास का नाश होकर यह वसुन्धरा एक वार और क्र^{हत} पुरी से भी वाजी मारने लगी, मध्यलोक भी उर्द्धलोक (हर्ग घाम) वन गया, परमेश्वर्यशाली देवेन्द्र भी मध्यलीक श्राकर श्रवने को भाग्यशाली समभाने लगे, यह सब जैन्द्रन की उन्नत श्रवस्था का ही प्रभाव था, ऐसे उदयाबत पर पहुँचा हुन्ना जैन धर्म थोड़े समय के पश्चात् फिर इवित गामी हुन्ना, होते २ यहां तक स्थिति हुई कि धर्म श्रीर पार में कोई विशेष अन्तर नहीं रहा। जो कृत्य पाप माना जीकर त्याच्य समभा जाता था, वही धर्म के नाम पर श्रादेव मान जाने लगा। हमारे तारण तिरण जो पृथ्वी आदि पटकाप के भाग वध को सर्पधा हैय कहते थे, वही प्राण वध धर्म है नाम पर उपादेय हो गया। मन्दिरों श्रीर मूर्तियों के चर्की मेंपड़कर त्यागी वर्ग भी हम गृहस्थों जैसा श्रीर कितनी ही वार्तों में हम से भी वढ़ चढ़ कर भोगी हो गया। स्वाध साधना में मन्दिर श्रीर मूर्ति भी भारी सहायक हुई, मन्दिर की जागीर, लाग, टेक्स, चढ़ावा श्रादि से द्रव्य प्राप्ति श्रिधि होने लगी। भगवान् के नाम पर भक्तों को उल्लू बनान

विल्कुल सहज होगया। विना पैसे चहाये धर्म की कोई भी क्रिया श्रसफल हो जाती थी। धन, जन, सुख एवं इच्छित कार्य साधने के लिए दुखी शक्त जन विविध प्रकार की मान्य-ताएँ (मांगनी) लेने लगे। इस प्रकार त्यागी वर्ग ने धर्म के वास्तविक स्वरूप को भुलाकर विविध प्रकार से मन्दिर मुर्तियों का पूजना पूजाना और इस प्रकार पाखरड एवं श्रंध विश्वास का प्रचार करना ही अपना प्रधान कर्त्तव्य वना लिया था। धर्मीपदेश में भी वही स्वार्थ पूरित नृतन प्रन्थ, कथाएँ, चरित्र श्रीररास महातम्य श्रादि जनता को सुनाने लगे जिससे जनता वस मन्दिरों के सुन्दराकार पापाएं को ही पूजने में धर्म मानने लगी। सत्य धर्म के उपदेशक इंढने पर भी मिलना कठिन होगये, इस प्रकार अवनित होते होते जब भयंकर स्थित उत्पन्न होने लगी, जब ऐसे निकृष्ट समय में जैन शासन को फिर एक महाबीर की आवश्यता हुई, विना महावीर के वहुत समय से गहरी जड़ जमाये हुए पाखरुड का निकन्दन होना श्रसम्भव था, ऐसे विकट समय में इसी जैन समाज को प्रकृति ने एक धीर प्रदान किया।

विक्रभीय पन्द्रहवी शताब्दी के चृद्धकाल में जैन समाज को उन्नत बनाने, और भगवान महावीर के शालों में छिपे हुए पुनीत सिद्धांतों का प्रचार कर पांखंड का विध्वंस करने के लिये इसी जैन जाति में दूसरा धर्म क्रांतिकार श्रीमान लॉकाशाह का प्रादुर्भाव हुआ। श्रीमान श्रपनी प्राकृतिक प्र-तिभा से वाल्यकाल ही में शैढ़ श्रनुभवियों को भी मार्ग दर्शक बन गये, श्राप रत्न परीज्ञा में निपुण एवं सिद्धहस्थ थे एक बार इसी रत्न परीज्ञा में आवने बड़े र श्रनुभवी एवं चुद्ध

जाँहरियों को भी श्रपनी परीचा बुद्धि से चकित कर दिश फलस्वरूप श्राप राज्यमान्य भी हुए, कुछ समय तक श्राप राज्य के कोपाध्यक्त के पद को भी सुरोभित किया, तदनन किसी विशेष घटना से संसार से उदासीनता होने पर राज्य काज से निवृत्त हो, श्रात्मचिन्तन में लगे। श्रीमान् पटन मनन के बढ़े शौकीन थे, उचित संयोगों में आपने जैन आगर्मी का पठन एवं मनन किया, जिससे श्रापके श्रन्तर्चनु एकदम खुल गये, पुनः २ शास्त्र स्वाध्याय एवं मननं होने लगा, साथ ही वर्तमान समाज पर दृष्टि पात की । शास्त्रों के पठन मनन से श्रीमान् की परीचा बुद्धि एकदम सतेज होगई। समाज में फैले हुए पाखंड श्रीर श्रन्धविश्वास से आपको अपार खेद हुन्न, श्रोर से छोर तक विषम परिस्थित देखकर श्रापने पुनः सुघारकर धर्म को असली स्वरूप में लाने के लिये पूर्य वर्ग से तत् विषयक विचार विनिमय किया, परिणाम में शिथिलाचारिता एवं स्वार्थपरता का ताग्रडच दिखाई दिया जव कीतराग मार्ग की यह श्रवस्था इस वीर श्राद्धवर्य से नहीं देखी गई, तय स्वयं दढ़ता पूर्वक कटियद्ध हो प्रण किया कि—" मैं अपने जीतेजी जिन मार्ग को इस अवनत अवस्था से श्रवश्य पार कर शुद्ध स्वरूप में लाउंगा, श्रीर शुद्ध जैनत्व का प्रचार कर पालंड के पहाड़ को नष्ट करूंगा, इस पुनीत कार्य में भले ही मेरे प्राण चले जांय पर ऐसी स्थित में शह रहते कभी भी सहन नहीं कर सकता "शीघ्र ही श्रापन सुघार का सिंहनाद किया, पाखंड की जड़ें हिल गई,पासंडी घवड़ा गये, इस बीर का प्रण ही पांखंड को तिरोहित करने का श्री गरोश हुआ। लगे सद्धम्मं का प्रचार करने, जनत भी मूल्यवान् वस्तु की ब्राहक होती है। जब तक सब्बे रत

की परीचा नहीं हो तभी तक कांच का दुकड़ा भी रत्न गिना जाता है, पर जब श्रसली श्रीर सच्चे रत की परीक्षा हो नाती है तव कोई भी समभदार कांच के दुकड़े को फैंकते देर नहीं करता। ठीक इसी प्रकार जनता ने आपके उपदेशों को सुना, सुनकर मनन किया, परस्पर शंका समाधान किया परीचा हो चुकने पर प्रभु वीर के सत्य, शिव, श्रीर सुन्दर सिद्धांत को अपनाया, पाखंड और अन्धश्रद्धा के वंधन से मुक्ति प्राप्त की। एक नहीं सैकड़ों, हजारों नहीं, किन्तु लाखों सुमुख्यों ने भगवान् महावीर के मुक्तिदायक सिद्धांत की श्रपनाया, सैकड़ों वर्षों से फैले हुए श्रन्धकार को इस महान् धर्म फांतिकार लोकमान्य लोंकाशाह ने लाखों हदयों से विलीन कर दिया। मूर्तिपूजा की जड़ खोखली होगई। यदि यह परम प्नीत आत्मा श्रधिक समय तक इस वसुन्धरा पर स्थिर रहती तो सम्भव है कि-निहव मत की तरह यह जरुपूजा मत भी सदा के लिये नए हो जाता, किन्तु काल की विचित्र गति से यह महान् युगस्षा वृद्धावस्था के प्रातः काल ही में स्वर्गवासी वन गये, जिससे पाखंड की हट भित्ति विलक्कल घराशायी नहीं हो सकी।

श्रीमान् के ज्ञानवल श्रीर श्रात्मवल की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है, इसी श्रात्मवल का प्रभाव है कि एक ही उपदेश से मूर्तिपूज़कों के तीर्थयात्रा के लिये निकले हुए विश्वाल संघ मी एकदम जड़पूजा को छोड़ कर सब्बे धर्मभक्त वन गये। प्या यह श्रीमान् के श्रात्मवल का ज्वलन्त प्रमाण नहीं है। यद्यपि स्वार्थिय जड़ोपालक महानुभावों ने इस नर नाहर की, सभ्यता छोड़कर भर पेट निन्दा की

है, किन्तु निष्पन्न सुश जनता के हृदय में इस महापुरुष वे प्रति पूर्ण श्रादर है। इतिहासश इस श्रलोकिक पुरुष के सुधारक मानते हैं। यही क्यों ? हमारे मृर्तिपूजक वन्धुओं की प्रसिद्ध श्रीर जवाबदार संस्था 'जैनधर्म प्रसारक समा भावनगर' ने प्रोफेसर हेलमुटग्लाजेनाप के जर्मन ग्रव्य 'जैनिज्म' का भावान्तर प्रकाशित किया है उसमें भी श्रीमार को सुधारक माना है, श्रीर सारे संघ को श्रपना श्रनुयायी वनाने की ऐतिहासिक सत्य घटना को भी स्वीकार किया है, देखिये वहां का श्रवतरण--

'' शत्रुंजयनी जात्रा करीने एक संघ श्रमदाबाद थड्ने जतो हती तेने एरो पोताना मतनो करी नाख्यो '' (जैन धर्म ए० ७२)

ऐसे महान् श्रात्मवली वीर की द्वेपवंश व्यर्थ निन्दा करने वाले सचमुच दया के ही पात्र हैं।

हम यहां संतिप्त परिचय देते हैं। श्रतएव श्रधिक वि चार यहां नहीं कर सकते। किन्तु इतना ही वताना श्रावश्यक समभते हैं कि--

श्रीमान लोंकाशाह ने, जैन धर्म को श्रयनत करने में प्र धान कारण, शिथिलाचार वर्द्धक, पाखरड श्रीर श्रन्ध वि श्वास की जननी, भद्र जनता को उल्लू बनाकर स्वार्थ पोपण में सहायक ऐसी जैनधर्म विरुद्ध मूर्तिपूजा का सर्व प्रधम बहिष्कार कर दिया जो कि जैन संस्कृति एवं श्रागम श्राहा की घातक थी. यह बहिष्कार न्याय संगत श्रीर धर्म सम्मत धा, श्रीर था मौढ़ श्रभ्यास एवं प्रयल श्रनुभव का पुनीत फल। क्योंकि मूर्तिपूजा धर्म कर्म की घातक होकर मानव को श्रन्धविश्वासी वना देती है श्रीर साथ ही प्राप्त शक्ति का दुरुपयोग मी करवाती है। मूर्तिपूजा से श्रात्मोत्थान की श्राशा रखना तो पत्थर की नाव में वैठ कर महासागर पार करने की विफल चेष्टा के समान है।

श्रीमान् लोंकाशाह द्वारा प्रवल युक्ति एवं श्रकाद्य न्याय-पूर्वक किये गये मूर्तिपूजा के खएडन से जड़पूजक समुदाय में भारी खलवली मची। वड़े २ विद्वानों ने विरोध में कई पुस्तकें लिख डाली किन्तु श्राज पांच सौ वर्ष होने श्राये श्रय तक ऐसा कोई भी मूर्तिपूजक नहीं जन्मा जो मूर्ति पूजा को वर्द्धमान भाषित या श्रागम विधि (श्राह्मा) सम्मत सिद्ध कर सका हो। श्राज नक मूर्ति पूजक यन्धुश्रों की श्रोर से जितना भी प्रयत्न हुशा है सब का सब उपेक्सीय है। वस इसी यात को दिखाने के लिए इस पुस्तिका में श्रीमान् लोंकाशाह के मूर्तिपूजा खरडन के विषय में मूर्तिपूजकों की कुतकों का समाधान श्रीर श्रीमान् शाह की मान्यता का समर्थन करते हुए पाठकों से शांतिचक्त से पढ़ने का निवेदन करते हैं।



है, किन्तु निष्पत्त सुग्न जनता के हृदय में इस महापुरुष प्रित पूर्ण श्रादर है। इतिहासक इस श्रलोकिक पुरुष के सुधारक मानते हैं। यही क्यों ? हमारे मृर्तिपूजक वन्धु की प्रसिद्ध श्रीर जवायदार संस्था 'जैनधर्म प्रसारक समावनगर' ने प्रोफेसर हेलमुटग्लाजेनाए के जर्मन श्रव्य 'जैनिज्म' का भावान्तर प्रकाशित किया है उसमें भी श्रीमार को सुधारक माना है, श्रीर सारे संघ को श्रपना श्रनुवायी वनाने की ऐतिहासिक सत्य घटना को भी स्वीकार किया है, देखिये वहां का श्रवतरण--

" रात्रुंजयनी जात्रा करींने एक संघ श्रमदाबाद थइने जतो हती तेने एरो पोताना मतनो करी नाख्यो " (जैन धर्म ए० ७२)

ऐसे महान् श्रात्मवली वीर की द्वेपवंश व्यर्थ निना करने वाले सचमुच दया के ही पात्र हैं।

हम यहां संचित्र परिचय देते हैं। श्रतएव श्रधिक वि चार यहां नहीं कर सकते। किन्तु इतना ही वताना श्रावश्यक समभते हैं कि--

श्रीमान लोंकाशाह ने, जैन धर्म को श्रवनत करने में प्र धान कारण, शिथिलाचार वर्द्धक, पाखराड श्रीर श्रन्ध वि श्वास की जननी, भद्र जनता को उल्लू वनाकर स्वार्थ पोगर्ण में सहायक ऐसी जैनधर्म विरुद्ध मूर्तिपूजा का सर्व प्रथम विहिष्कार कर दिया जो कि जैन संस्कृति एवं श्रागम श्राहा की घातक थी. यह विहिष्कार न्याय संगत श्रीर धर्म सम्मत धा, श्रीर था प्रीढ़ श्रभ्यास एवं प्रवल श्रनुभव का पुनीत फल। क्योंकि मूर्तिपूजा धर्म कर्म की घातक होकर मानव

को अन्धविश्वासी वना देती है और साथ ही प्राप्त शक्ति का दुरुपयोग भी करवाती है। मूर्तिपूजा से श्रात्मोत्थान की श्राशा रखना तो पत्थर की नाव में वैठ कर महासागर पार करने की विफल चेष्टा के समान है।

श्रीमान् लोंकाशाह द्वारा प्रवल युक्ति एवं श्रकाद्य न्याय-पूर्वक किये गये सूर्तिपूजा के खरडन से जड़पूजक समुदाय में भारी खलवली मची। वहें २ विद्वानों ने विरोध में कई पुस्तकें लिख डाली किन्तु आज पांच सौ वर्ष होने आये अय तक ऐसा कोई भी मूर्तिपूजक नहीं जन्मा जो मूर्ति पूजा को वर्द्धमान भाषित या स्रागम विधि (स्राज्ञा) सम्मत सिद्ध कर सका हो। श्राज तक मूर्ति पूजक यन्धुश्रों की श्रोर से जितना भी प्रयत्न हुन्ना है सब का सब उपेक्सीय है। वस इसी यात को दिखाने के लिए इस पुस्तिका में थीमान लॉकाशाह के मूर्तिपूजा खएडन के विषय में मूर्तिपूजकों की कुतकों का समाधान ग्रीर श्रीमान शाह की मान्यता का समर्थन करते हुए पाठकों से शांतचित्त से पढ़ने का निवेदन करते हैं।



श्री लोंकाशाह मत-समर्थन

गुजराती संस्करण पर प्राप्त हुई

सम्मतियाँ

(१) भारत रत्न शतावधानी पंडित मुनि राज श्री रत्नचन्द्रजी महाराज श्रीर उपाध्या किविवर मुनि श्री श्रमरचन्द्रजी महाराज साह की संम्मिति—

"लोंकाशाह मत समर्थन" श्रपने विषय की एक सुन् पुस्तक कही जाती है, लोंकाशाह के मन्तव्यों पर जो इध उघर से श्राक्रमण हुए हैं, लेखक ने उन सब का सबीर उत्तर देने का प्रयत्न किया है। श्रीर लोंकाशाह के मंतव्य को श्रागम मूलक प्रमाणित किया है। उदाहरण के रूप में जो मूल पाठ दिए हैं वे प्रायः श्रुद्ध नहीं हैं। श्रतः श्रगले संस्करण में उन्हें श्रुद्ध करने का ध्यान रखना चाहिए। मतमेदों को एकान्त बुरा नहीं कहा जा सकता, श्रीर उन पर कुछ विचार चर्चा करना यह तो बुरा हो ही कैसे सकता है ? जहां मिठास के साथ यह कार्य होता है वह उभय पत्त में श्रमिनन्दनीय होता है, श्रीर श्रागे चलकर वह मत मेदों को एक सूत्र में पिरोने के लिए भी सहायक लिख होता है। हम श्राशा करेंगे कि—इस चर्चा में रस लेने वाले उभय पत्त के मान्य विद्वान इस नीति का श्रवश्य श्रमुसरण करेंगे।

(२) श्रीमान् सेठ वर्धमानजी साहव पीत-लिया रतलाम से लिखते हैं कि—

हमने लोंकाशाह मत समर्थन पुस्तक देखी, पढ़कर प्रसन्नता हुई। पुस्तक चहुत उपयोगी है अलवत्ता भाषा में कितनी जगह कठोरता ज्यादे है वो हिंदी अनुवाद में टूर होना चाहिए, जिससे पढ़ने घालों को प्रिय लगे। पुस्तक प्रकाशन में प्रश्नोत्तर का ढंग और प्रमाण युक्ति संगत है।

(३) युवकहृदय मुनिराज श्री धनवन्द्रजी महाराज की सम्मति—

श्रापकी लोंकाशाह मत समर्थन पुस्तक स्था॰ समाज के लिए महान श्रख है। जो परिथम धापने किया उसके लिए धन्यवाद। ऐसी पुस्तकों की समाज में श्रत्यन्त झावश्यकता है। श्रापकी लेखनी सदैव जिनवाणी के प्रवार के लिए तैयार रहे।

श्री लोंकाशाह मत-समर्थन

गुजराती संस्करण पर प्राप्त हुई

सम्मतियाँ

(१) भारत रत्न शतावधानी पंडित मुनि राज श्री रत्नचन्द्रजी महाराज श्रीर उपाध्याप कविवर मुनि श्री श्रमरचन्द्रजी महाराज साहब की संम्मति—

"लोंकाशाह मत समर्थन" श्रपने विषय की एक सुन्द पुस्तक कही जाती है, लोंकाशाह के मन्तव्यों पर जो इध उधर से श्राक्तमण हुए हैं, लेखक ने उन सब का सबीर उत्तर देने का प्रयत्न किया है। श्रीर लोंकाशाह के मंतव्य को श्रागम मूलक प्रमाणित किया है। उदाहरण के रूप में जो मूल पाठ दिए हैं वे प्रायः श्रुद्ध नहीं हैं। श्रतः श्रगले संस्करण में उन्हें श्रुद्ध करने का ध्यान रखना चाहिए। मतमेदों को एकान्त बुरा नहीं कहा जा सकता, श्रौर उन पर कुछ विचार चर्चा करना यह तो बुरा हो ही कैसे सकता है ? जहां मिटास के साथ यह कार्य होता है वह उभय पत्त में श्रीमनन्दनीय होता है, श्रौर श्रागे चलकर वह मत मेदों को एक सूत्र में पिरोने के लिए मी सहायक निद्ध होता है। हम श्राशा करेंगे कि—इस चर्चा में रस लेने वाले उभय पत्त के मान्य विद्धान इस नीति का श्रवश्य श्रमुसरण करेंगे।

(२) श्रीमान् सेठ वर्धमानजी. साहव पीत-लिया रत्नलाम से लिखते हैं कि—

हमने लोंकाशाह मत समर्थन पुस्तक देखी, पढ़कर प्र-तन्नता हुई। पुस्तक चहुत उपयोगी है अलवत्ता भाषा में कितनी जगह कठोरता ज्यादे है वो हिंदी अनुवाद में दूर होना चाहिए, जिससे पढ़ने वालों को प्रिय लगे। पुस्तक प्रकाशन में प्रश्नोत्तर का ढंग और प्रमाण युक्ति संगत है।

(२) युवकहृदय मुनिराज श्री धनचन्द्रजी महाराज की सम्मति—

श्रापकी लोंकाशाह मत समर्थन पुस्तक स्था॰ समाज के लेप महान श्रस्त्र है। जो परिधम श्रापने किया उसके लिप व्यवाद। ऐसी पुस्तकों की समाज में श्रत्यन्त आवश्यकता । श्रापकी लेखनी सदैव जिनवाणीके प्रचार के लिए तैयार स्थानकवासा जन कायालय ग्रहमदात्राद मं त्राई हुई सम्मतियों में से कतिपय सम्मति-यों का मार—

(४)पूज्य श्री गुलावचन्दजी महाराज (लिंबडी सम्प्रदाय)

लोंकाशाह मत-समर्थन पुस्तक वांचतां घणो श्रानन्द थयो स्रावा उत्तम प्रयास वदल लेखक रतनलाल दोशी ने धन्यवाद

घटे छे, अनेक प्रमाणो सहित आ पुस्तक थी स्था जैन समाज नी धर्म अद्धा दृढ़ थशे।

(५) पूज्य श्री नागजी स्वामी (कच्छ मांडवी)

श्री लोंकाशाह मत समर्थन जैन जनता माटे घराँज उप-योगी श्रने प्रमाणित पुस्तक छे।

(६) पूज्य श्री उत्तमचन्द्रजी स्वामी, (दरिया-पुरी सम्प्रदाय)

पुरी सम्प्रदाय) लोंकाशाह मत समर्थन नामनुं पुस्तक घरांज सारुं छे।

(७) श्रीयुत भाईचन्द, एम. लखाणी करांची-

लोंकाशाह मत-समर्थन नामनुं पुस्तक वांची घणोज झानन्द थयो है।

(=) श्रीयुत रागवजी परसोत्तमजी दोशी धाफा—

हालमां लोंकाशाह मत समर्थन नी चोपड़ी छपायेल छे, ते मारा वांचवा थी घणोज खुशी थयो छुं, रुपया २) मोकलुं छुं तेनी जेटली प्रतो खावे तेटली गामड़ामां प्रचार करवो छे माटे फायदे थी मोकलशो, खा बुक मां सूत्र सिद्धान्त अनुसार घणा सारा दाखला ख्राप्या छे ते वांची हुं खुशो थयो छुं।

(६) श्रीयुत जेचन्द श्रजरामर कोठारी सिविल स्टेशन राजकोट से लिखतें हैं कि—

श्रापनुं लोंकाशाह मत-समर्थन श्रने मुखनिखका सिद्धि वन्ने पुस्तक बांच्या, वे त्रण वार श्रथ इति बांच्या, तेमां सिद्धांनों ना दाखला दलीलो श्रने विशेष करीने विशेषी पत्त ना श्रमिप्रायो जणावी न्याय थी श्रमणोपासक समाजनी पूरे पूरी सेवा वजावी छे तेने माटे रतनलाल डोशी ने श्रवण्ड धन्यवाद घटे छे, समाजे कोई न कोई रूपमां तेमनी कदर करवी जोइए, श्री डोशी जेवा निडर पुरुप जमानाने श्रनुस्ती पाकवाज जोइए।

(१०) श्रीयुत वेचरदासजी गोपालजी राज-कोट से लिखते हैं कि--

लोंकाशाह मत समर्थन पुस्तक वांच्युं हे, वांची मने इघणोज स्नानन्द थयो हो, स्नामां जे कांई पुरावा स्नाप्या हे, ते वधा वरावर हो, मुखविस्तिकासिद्धि हुपायुं होय तो जरूर मोकलशो। (११) सदानन्दी जैन मुनि श्री छोटालालर्ज महाराज एक पत्र द्वारा निम्न प्रकार रे स्था॰ जैन के संपादक को लिखते हैं--

॥ श्रंभिनन्दन ॥



पोतानी महत्ता वधारवामां श्रंतराय पड़े, श्रने चैतत्त्र पूजानी महत्ता वधे ते मूर्तिपूजक समाजना साधु महापुरुप श्रने गृहस्थों ने कोई पण रीते रुचतुं न होवा श्री कोई न कोई वहानुं मलतां स्थानकवासी समाज ऊपर भाषानी संयम गुमावीने श्रनेक प्रकारना श्राचेयो वारम्वार कर्यां करे छे, श्रने जाणे स्थानकवासी समाजनुं श्रस्तित्वज महा ही देनुं होय तेवो प्रयत्न सेवी रहेल छे।

श्रा श्राक्रमणनो न्याय पुरःसर भाषासमिति ने साववी ने पण जवाव श्रापवा जेटलीए श्रमारी समाजना पण्डिते विद्वानो, श्रने नवी नवी मेलवेली पदवीना पदवीघरो ने जराए फुरसद नथी, मोटे भागे श्रपवाद सिवाय दरेक ने पोताना मान पान वधारवानी श्रने वधुमां पोताना नान वाहाने येन केन प्रकारे जालवी राखवानी श्रने पथीए वधु मारा जेवाने श्रनेक श्रतिशयोक्ति भरेला पोतानी कीर्तिन वणगा फुंकाववानी प्रवृत्ति श्राडे जराए फुरसद मलती नथी

पवा वखते---

श्रीमान् रतनलाल दोशी सैलाना वाला शास्त्रीय पद्धति-ए स्थानकवासी समाजनी जे श्रपृर्व सेवा यजावी रहेल छे, ते श्रति प्रशंसनीय छे, श्रने एना माटे मारा श्रन्तःकरणना श्रमिनन्दन छे।

घणां घर्षो पहेलां प्रांसद्ध वक्षा श्रीमान् चारित्रविजयजी
महागजे मांगरोल वंदरे जनसमूह वच्चे व्याख्यान करतां
कहेलुं के श्वेताम्बर जैन समाजना वे विभाग स्थानकवासी
श्रने देरावासी १०० मां ६= वावतोंमां एक छे, मात्र वे वावतो
मांज विचारमेद छे तो ६= वावत ने गीण वनावी मात्र वे
वावतो माटे लडी मरे छे ते खरेखर मुर्खाई छे, तेमनुं श्रा
कहेतुं हाल वधारे चरितार्थ थतुं होय तेम जोवाय छे।

हुंकामां श्रीयुत रतनलाल दोशीने तेमनी स्थानकवासी समाजनी, अप्रतिम सेवा माटे फरीवार अभिनन्दन श्राणी पोते श्रादरेल सेवा यक्ष ने सफल करवा, तेमां श्रावता विद्योधीन हरवा स्वना करी स्थानकवासी समाजना मुनिवर्ग श्री न हरवा स्वना करी स्थानकवासी समाजना मुनिवर्ग श्रो श्रावक वर्गने श्रावह भरी विनन्ती करें हुं के—श्री रतनलाल दोशी ने वनती सेवा कार्यमां सहाय करवी, श्रने वधु नहीं तो होवट स्थानकवासी जैनवर्मनी श्रभिवर्घा श्रथें तेनी सत्यता अर्थे तेमना तरफथी जे जे साहित्य प्रकट थाय तेनी सत्यता अर्थे तेमना तरफथी जे जे साहित्य प्रकट थाय तेनो वधुमां वधु फेलावो करवो, एक पण गाम पत्रं न होतुं जोइए के ज्यां ए दोशीनां लखेल साहित्यनी २-४ नकलो न होय । हिंदीमां हो य तो तेनो गुजरातीमां श्रनुवाद करीने तिनो प्रचार करवो।

ां श्री रतनलाल दोशी ने तेमना समाज सेवानां कार्यमां दिसाधन, संयोग, समय, शक्ति ए सर्वनी पूरती अनुकूलता पैमले एवी श्रा श्रन्तरनी श्रमिलापा है। ३० शान्ति!

मू० पू० जैन पत्र की विरोधी यालाचना

"जैन" भावनगर ता. प्रश्रगस्त १६३७ ष्ट्रष्ट ५३३ श्रम्यास श्रमे श्रवलोकन

श्रन्तर कलेश नोतरतुं ए श्रयोग्य प्रकाशन

ि ले० श्रभ्यासी] े श्राजे एक मारा मित्रे स्थानकवासी जैन पत्रनी चौ^{धा}

वर्षनी भेटनुं पुस्तक मने मोकल्युं छे, आ पुस्तकनुं नाम हे '''लोंकाशाह मत-समर्थन" पुस्तकनुं नाम जोता मने घणीज खुशाली उपजी के ठीक थयुं, थ्रा पुस्तक लेखके लोंकाशाह संवंधे प्राचीन श्रवाचीन प्रमाणो शोधी काढी खास लोंकाशाह नुं मन्तव्य प्रकशित कर्युं हशे, श्राखुं पुस्तक उत्साह भरे ^{पुरुं} वांची नाख्युं परन्तु श्राखा पुस्तकमां क्यांय लोंकाशाहना ^{मत} चुं समर्थन नथी, समर्थन तो दूर रहा किन्तु लोंकाशाहत एक पण सिद्धांत नुं निधान पण नथी कर्युं. श्रा पुस्तक वांचव पछी मने लाग्युं के लोंकाशाहनो कोई सिद्धांतज नथी, कवि वर लावएयसमये तो खास लख्युं हतुं के लोंकाशाहे पूज . प्रतिक्रमण, सामायिक, पौषध, दया श्रादिनो लोपज कर्य छे, आ वधानो लोप लोंकाशाहे कर्यो छे, तो पछी तेना मत नुं समर्थन शानुं थाय ? एटले भाई रतनलाल ने शोध नीकलबुं पड्यं छे, के लोकानो मत शो ? अन्ते तेमां निरार सांपड़वाथी तेश्रोने श्वेताम्पर मत निन्दा पुराण रचवुं पड

होय एम लागे छे।

श्राजधी त्रण वर्ष पहेलां स्थानकवासी समाजना मनाता यशस्वी लेखक संतवालजीए स्थानकवासी कोन्फ्रेन्सना मुख्यत्र 'जैन प्रकाशमां' श्रीमान लोंकाशाहना नामनी लांबी लेखमाला लखी हती ते वखते पण तेमणे लख्युं हतुं के लोंकाशाहनुं जीवन चरित्र नथी मलतुं छतांय तेमणे स्थानक मार्गी समाज ने पसंद पड़े तेवुं सुन्दर कल्पनाचित्र दोरी ए चरित्र लांबी लेखमाला रुपे रजु कर्युं हतुं, श्रने तेमां केटलाक श्वेताम्वर श्राचार्यो माटे श्रमर्यादित लखाण लखायेल! जेनो सुन्दर जवाय श्वे० समाजना विद्वान साधुश्रोए श्रने श्रावको ए श्राच्यो हतो, श्रने चर्चाए एवं तीव स्वरूप लींधुं हतुं के उभय पत्तने नजीक श्राववाना श्राजे जे प्रयासो थाय छे ते श्रम मुदार वर्षो माटे दूरने दूर ठेलाय।

श्रा कड़वी प्रसंग हजु चितिज पर थी दूर थती आबे छे त्यां ए वितएडावादमांज शासन सेवा होय तेम मानीने के गमे ते श्राशय थी श्राजे आ पुस्तक प्रकट करी जैन समाजना दुर्भाग्यनो एक कड़वी प्रसंग उभी कर्यों छे।

श्रा पुस्तक चांचनार कोई पण भाई स्हेजे कहेरो के श्रावा "लोंकाशाह मत-समर्थन" ना नाम नीचे खेताम्बर श्राचार्यों नी पेट भरीने निन्दा करवामां श्रावी हो, मूर्तिपूजानुं क मर्या-दित शैलीए खराडन करवामां श्राव्यं हो, मूर्तिपूजानुं संडन ए कांई भारतनी प्राचीन श्रार्थ संस्कृति नथी, इस्लामी समय-थी जगतमां मूर्तिपूजानो विरोध शुरु थयो श्रने ते श्रानार्थ संस्कृतिना फल स्वरूप इस्लामी संस्कृतिमांज उत्पन्न ध्येल इस्लामी युगमांज फलेल फूलेल दुंदक मतना उपासकोप जैनधर्ममां मूर्तिपूजानो विरोध दाखल कर्यो ए वस्तुना निरू पण माटेज स्थानकवासी जैन पत्रे श्रा पुस्तक प्रगट कर्युं होय तेम स्पष्ट जणाइ श्रावे छे।

''स्रि महात्मात्रोना व्हेकाववाथी' 'शुद्ध श्रद्धःथी पतित्

आत्मारामजी' 'मणावी राखेला तोता' 'आ गरवड़ गोटालो सावद्य गुरु घंटालो एज कर्योछे' 'मूर्ति वांदवानो आडंगो लगाव्यो छे' 'मूर्तिपूजा करवानुं शास्त्रीय विधान छे एवी डींग मारवीए मूर्खता छे' 'स्वामीजीए (आत्मारामजीए)डींग मारी छे तेमनुं कथन मिथ्या छे' 'चैत्यशब्द थी ब्हेकी जड़ने मूर्तिपूजानुं पाखराड सिद्ध करन्नुं ए अन्याय छे' 'निर्युक्तिनो अर्थ करतां आ स्थानकमार्गी परिडत पोतानी परिडताइ वतावे छे' 'निर्गता युक्तिर्यस्याः निर्युक्ति' 'खरी रीते स्थानक मार्गी समाज ब्याकरएने ब्याधिकरण माने छे एनाज आप्रताप छे"

"श्रावी रीते श्रेणिक राजानुं हमेशा १० स्वर्ग जवधी पूजवानुं कथन गयोड़ शास्त्र छें 'महानिशिथमां मूर्तिपूजानुं खरडन तथा स्वार्थीश्रोना पोकलो खुल्ला करवामां श्राव्यां छें 'मूर्तिनी गुणगाथाश्रों किएत कहाणीश्रोज छें श्रादेशमां गुलामीनुं श्रागमन प्रायः मूर्तिपूजानी श्रधिकता थी थयुं छें 'त्रिपष्टिशलाका पुरुपना रचनार ने पत्नुं कयुं दिव्य ज्ञान प्रगट थयुं हतुं के जेथी तेमणे मरिचि ने वन्दन करवानी गण्य हाकी ? श्रा तो केवल गण्य सिवाय बीजुं कथुं नथी' 'श्रा मान्यता (पूजानी) एकान्त मिथ्यात्वोपासक तथा धर्म घातक छें 'श्रारे स्वार्थीजनों! मिथ्या कुतर्क उत्पन्न करी हिंसाने केम

घोत्सांहन श्रापो छो'?'स्रिशोए श्रा श्रन्धेर खातुं केम चलाव्युं'

श्रमने तो तेमां तेमनी विषय लोलुपंता तेमज स्वार्थान्वता जणाइ श्रावे छे' 'माटे ए जिनमूर्तिनो उपदेश श्रापनार नाम-धारी त्यागिश्रो भोगिश्रोनी श्रपेत्ताए वधारे पानकी सिद्ध थाय छे' 'श्रा श्रात्मारामजी महाराजना धर्मोपदेशनो नमुनो छे ? पमना श्रन्धश्रद्धालु भक्तो करी पोतानी बुद्धि थी ××× विचारता नथीं 'ए गुरुवर्थोए पोताना स्वार्थ पोपण तथा इन्द्रिय विषयोने पूर्ण करवानों मार्ग काढ्यो छे'

"श्रा कलिकाल सर्वेज्ञ तथा महान् श्राचार्यनी पद्वी घारण करनार नामधारी जैन साधुश्रोए केवी रीते पाताना साधुन्व ने लांछन लगाङ्युं छे? हेमचन्द्राचार्य हतातो सर्वेज्ञ? नहीं तो सर्वेज्ञ वगर श्रावी वात कोण कहे ? प्तान्धता शुं नथी करावती"

जैनधमना आत्मकल्याणकारी तीर्थो अने तीर्थ यात्रा मारे लेखक आ प्रमाणे लखे हेः—

''पहाड़ोमां रखड़ता, श्रात्मारामजीए पोते पण सूनमां धूल मेलवी ने श्रनन्त संसार परिश्रमण करवा रूप फल प्राप्त कर्युं छे, मनमानी हांकी श्रर्थनो श्रन्थं कर्यो छे, उत्तराध्ययन निर्युक्तिकारे गीतम स्वामीने माटे साहात् प्रभुने छोड़ी पहाड़ोमां भटकवानुं लखी मायुं"

श्रावश्यक निर्शुष्तिकारे श्रावकोने मन्दिर यनाववा, पृज्ञा करवी वगैरे विषयोमां अडंगा लगाव्यां मूर्तिपूजक गुरुगिष्ठ भं० व्यायविजयजी--व्यायनो खून करनार व्यायविजयजीः 'व्यायविजयजीप व्यायचे खून कर्ये हे, श्रावी श्रमिनिवेशमां 'उन्मत्त व्यक्तिको 'श्रुद्ध श्रद्धाधी पतित श्रात्मारामजी' 'मूर्तिपूजक वन्धुन्नो हमणा मूर्तिपूजा मानवा रूप उन्मार्ग 'पर हो'। श्रावी श्रावी घणीए पुष्पांजलिश्चो श्रा पुस्तकमां भी हैं श्री सागरानन्दस्रिजी, श्री वरलभस्रिजी, मुनि श्री हों सुन्दरजी, मुनि श्री द्शेनविजयजी. श्री लव्विस्रिजी श्री श्वेताम्बर समाजना विद्वानो ने निद्वामां श्रा लेखक श्राग वध्या है।

श्रावी रीते कोई पण वितग्रहावाद उभो करवामां स्व मार्गी समाज पहेल करे छे, कलेश नोतरे छे, अने तेनो कं जवाव ग्रापे एटले दलीलना श्रभावे घवराइ जाय, श्रशं त्रशांतिनी यांग पोकारे, संतयालनी लेखमालाना जवा श्रपाया पछी समाज शांत हती, पंग श्रा नवा पंडितने प शांति न गमी, पटले मूर्तिपूजाना खराडननुं श्रने श्वेताम्बरा चार्थोनी निन्दानुं पुराण रची नाच्युं, खरी रीते संतवातन जवायमां मुनिराज श्री ज्ञानसुन्दरजी राचित मूर्तिपूजा क इतिहास अने श्रीमान् लोंकाशाह वन्ने पुस्तको छै, श्रा वर्ने पुस्तको दुंढक समाजने एवा सचोट उत्तर श्रापनारा है ^ई पंडित रतनलाल जेवानां सेंकडो पुस्तको तेनी सामे भार पडी जाय तेम छे, मूर्तिपूजाना जे पाटो जेठमलजीए सम्बन्ध · सारमां, हरखचन्द्रजीए राजचन्द्र विचार समीचामां, श्रमे लखऋषिए पोतानी आगम वशीसीमां छप द्यां तेज पार श्रने श्रर्थोधी ए पुस्तकोमां सिद्ध कर्युं छे के जिनमूर्तिना पार शास्त्रोमां छे, आ पाटो ने जुटा ठरावना आ पंडित वहा पड्या हे, पंडित वेचरदासना मृतिपूजाना विचारो माटे रा

मुनि सम्मेलन द्वारा स्थापित प्रतिकार समिति ने खा स्वना छ के था प्रन्थनुं श्रवलोकन करी तेमां शास्त्रना पार

पसेणीय स्वनो तेमनो अनुवाद जोवानी हुं भलामण करं हुं

ना नामे जे भ्रम जाल उभी करी छे तेनो जवाय श्रापे, श्रा भ्रम जाल खास करीने कानजी स्वामी ढुंढक मत छोडी निकत्या श्रने तेमनी पाछल बीजो समाज न जाय तेमने माटेज रचाणी छे, बाकी श्रा पुस्तकनो खरो जवाय नो कानजी स्वामी श्रादिए ढुंढक मत त्यजी, मूर्तिपूजा स्वीकारी ने श्रापीज दीधो छे।

उक्क विरोधी लेख का उत्तर "स्थानकवासी जैन" पत्र में गुजराती में ता० २१-=-३७ के पृष्ठ ४१ में और हिंदी में जैन पथ प्रदर्शक" में ता० २४-=-३० के श्रङ्क के पृष्ठ ४ के दूसरे कॉलम से निम्न प्रकार से दिया गया है।

मि॰ अभ्यासी की अवलोकन दृष्टि

'लों शशाह मत-वमर्थन' पर मूतिपूजक 'जैन' पत्र के किसी पर्देनशीन अभ्यासी (विद्यार्थी की दृष्टि पड़ी। अभ्यासी मदोदय ने ता० = अगस्त ३७ के अंद्ध में 'अभ्यास अने अवलोकन' शीर्षक में जो कलम चलाई है वह वास्तव में उनके अपूर्ण अभ्यास की स्विता है। यद्यपि अभ्यासी वन्धु ने लोंकाशाह मत-समर्थन के लिए ऐसा कोई पयत्न नहीं किया, जिससे उसकी सत्य एवं प्रमाणिकता में याधा पहुंचे, और मुझे अपने नियन्य की सत्यता के विषय में लेखक को कुछ स्वना देनी पड़े, तथापि अभ्यासी महोदय के अभ्यास की अपूर्णता एवं तत् सम्यन्धी दृष्णों को दृर करने के लिए निम्न पंपितयां लिख देना उचित समभता हैं।

१ - प्रभ्यासी यन्धु को 'लोंकाशाह मत समर्थन' में लोंका शाह के मत का समर्थन ही नहीं सुका यह तो है अवलोकन

की विल्हारी। इस पर से इतना तो सहज ही मालूम देत है कि—अभ्यासक महोदय कदाचित अभ्यास सम्बंध प्रथम श्रेणी के ही छात्र (बालक) हों। जिस समाज के सपूत हैं उसके अन्थकार ही श्रीमान् धर्मपाण लोंकाशाह के स्पूर्त हैं, वे सब यह मानते हैं कि श्रीमान् लोंकाशाह के मृतिपूजा के विरुद्ध आवाज उठाई थी. बस अभ्यासी भाई को समभ लेना चाहिए कि उसी सत्य एवं सिद्धांत मान्य आवाज के समर्थन रूप यह पुस्तक है। इतना भी झान यहि अभ्यासी बंधु को होता तो उन्हें अपनी कलम कुपाण को चलाने का मौका नहीं आता।

श्रागे चलकर श्रनऽभ्यासी वन्धु, श्रीमान् लोंकाश ह की सामायिक, पौपध, दया, दानादि के लोप करने वाले कहने हैं, श्रार प्रमाण में लावएयसमय का नाम उचारण करते हैं, यह सर्वथा श्रमुचित है। हमारे इन भोले भाई को ध्यान में रखना चाहिए कि – लोंकाशाह के शत्रु उन पर चाहे सो ब्रा चेप करें पर वह प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता. जि^स प्रकार श्रभी थोड़े दिन पहले श्रापके इसी 'जैन' पत्र के किसी तुच्छ लेखक ने इस महान् क्रांतिकार को वेश्या पुत्र कह डालने का दु साहस किया था (श्रीर फिर दाम्मिक दिल गिरी पकट कर श्रपनी मृपावादिता प्रकट की थी) वैसे ही श्रागे चलकर फिर कोई महानुभाव श्रापके जन पत्र के पूर्व के नीच त्राचेप वाले लेख का प्रमाण देकर लोकाशाह को बेश्या पुत्र सिद्ध करने की कुचेष्टा करे तो क्या वह प्रमासित हो

श्रीमान् लोंकाशाह के विषय में पूर्व व पश्वात् लेखनी उठाई है श्रीर गालियां प्रदान की है उनका प्रमाण देना सर्वेश्या अन्याय है।

यदि अभ्यासी वन्धु जरा प्रोह वुद्धि से विज्ञार करते तो उन्हें सूर्यवत् प्रकट मालूम देता कि—जिन महापुरुप को मैं सामायिक, दया, दानादि के उत्थापक कहने की धृष्ठता करता हूं, जरा उनके अनुयाइयों की श्रोर तो मेरी श्रवलो कन हिए डालूं कि— वे उक्त किया र करते हैं या नहीं ? यदि इतना कए भी आपने किया होता तो यह चृहद् भूल करने का श्रवसर नहीं आता।

श्ररे श्रन 5 श्र्मासी वन्धु ! जरा लोंकाशाह के श्रनु याह्यों की श्रोर तो श्रांस उठाकर देखों, उनके समाज में सामाधिक, प्रतिवृष्ण पीपध, प्रतिक्रमण, त्याग, प्रत्याख्यान, द्या, दान श्रादि किस प्रकार प्रचुर परिमाण में होते हैं। उनके सामने तो श्रापकी सम्प्रदाय में उक्त कियाएं यहुत स्वल्प मात्रा में होती हैं। फिर श्रापका श्रश्यास रहित वाक्य किस प्रकार सत्य हो सकता है ! क्या जिस समाज में जो कियाएं प्रचुरता से पाई जाती हैं उनके लिए उनके पूर्व जों को उत्थापक कह डालना मूर्खता नहीं है ! श्रतपव लोंकाशाह मतस्वर्थन में जो मृतिपूजा विषयक निचार किया गया है वह लोंकाशाह मत समर्थन श्रवश्य है।

२—श्रन अथासी वन्यु लोंकाशाह के लिए इस्लाम सं-स्कृति की दुहाई देते हैं, इस विषय में श्रिविक नहीं लिख-कर केवल यही निवेदन किया जाता है कि भाई साहब ! प्रथम यह तो वताइए कि—यह पीतवसन, गृहस्थों से पा चम्पी, भार वहन अनर्थ वचन, दग्ड प्रयोग, श्रादि किस जैन साधुत्व संस्कृति का परिगाम है।

महाशय ! न तो मूर्तिपूजा ही जैन संस्कृति है, न तत् सम्बंधी उपदेश देना जैन साधुत्व संस्कृति है। यह है केवल श्रजैन एवं सांसारिक संस्कृति ही, जिनके प्रभाव में श्राकर यह हेय प्रवृत्ति जैन समाज में इतनी वृद्धि पाई है।

३—श्रभ्यासी महाशय भाषा शैली के लिए ऐतराज करते हैं, किन्तु इसके पूर्व इन्हें श्रपने कहे जाने वाले न्यायांभी निधि, युगावतार महात्मा रचित सम्यक्त्व शल्योद्धार का भाषा माधुर्य देख लेना चाहिए, जिसमें उन मिष्टभाषी मही नुभाव ने साधुंमार्भी समाज के परम माननीय पूजनीय श्री श्रीमद् ज्येष्टमस्रजी महाराज के लिए किस शब्द काम में लिए हैं—

"जेटा, मूढ़मति, जेटा निह्नव, जेटे के बाप के चौपड़े में लिखा है" श्रादि।

इसी प्रकार श्रीमनी महासती पार्वतीजी को दुर्मतिजी श्रादि दुराद्य श्रमरविजयजी ने लिखे हैं, श्रीर जैन ध्वज में प्रसिद्ध प्राप्त बल्लभविजयजी का तो कहना ही क्या है द उन्होंने तो प्राना रिकार्ड ही तोड़ डाला।

इसके सिवाय श्रभ्यासी महानुभाव को ज्ञानसुन्दरजी वे तुच्छ प्रकाशनों के शब्द तो मधुर ही भाषित होते होंने, क्यें कि वे तो इनके गुरु हैं, श्रीर लिखा गया है इनके विरोधियें (स्थानकवासियों) के विरुद्ध, उनके शब्द तो श्रश्लील हों इप भी दन्हें श्रमृत सम मिष्ट लगते हैं, पर जरा उनक सेम्पल भी तो चिखिये, वे हमारे पूज्य लोंकाशाह को निह्नव हमारे पूज्य महात्माओं को कुलिंगी, नास्तिक, उत्सूत्र प्ररूपक, शासन मंजक, श्रादि नीच सम्बोधनों से याद किया है, जिसका कड़कल तो श्रमी उन्हें भोगना वाकी ही है। इसके लिए श्रापको व उन्हें तैयार रहना चाहिए।

४—जिस झानसुन्दरजी के वर्तमान प्रकाशन की अभ्या-सी भाई सराहना करते हैं, उसमें कितनी किएवतता भरी है, यह तो उसके उत्तर के प्रकट होने पर ही आपको मालूम होगा।

५— श्रभी तो अभ्यासी भाई में श्रर्थ समभने की भी शिक्त नहीं है, इसीसे वे वाक्यों का अनर्थ कर रहे है, मैंने अप्रमाखित निर्युक्त के लिए "निर्गतायुक्तियंस्याः" लिखा है पर हमारे अभ्यासी भाई इसे ही निर्युक्ति का अर्थ समभ रहे हैं, क्या इससे हमारे अभ्यासी वन्धु प्रथम कला के अभ्यासक सिद्ध नहीं होते?

अन्त में में अभ्यासी महाशय को यह यतला देना चाहता हूँ कि- आपने घूंघट की श्रोट में रह कर मू० पृ० पतिकार समिति से इसके खरडन करने की जो प्रेरला की है, इससे हमें किसी प्रकार का भय नहीं है। यदि कोई भी महाशय श्रनुचित रुप से कलम चलावेंगे तो उनका उचित सत्कार करने को हम भी तत्पर हैं।

में अपने प्रेमी पाठकों से भी निवेदन करता हूं कि वे कथित अभ्यासी महाशय के भांसे में नहीं याकर शुद्धांतः करण से उसे अवलोकन कर सत्य के प्राहक वनें। इति

रतनलाल डोशी, सेलाना-



तीर्थंकर प्रभु द्वारा स्थापित, चतुर्विध संघ रूप तीर्थ की परम पवित्र सेवा में--

मूर्ति के मोह में पड़कर स्वार्थपरता, शिथिलता, श्रीर श्रक्षता के कारण कई लोग हमारी साधुमार्गी समाज पर अनुचित एवं श्रसत्य श्राचेप करके सम्यक्त्व को दृषित करने की चेष्टा करते रहते हैं, उन श्राचेपकारों से हमारी समाज की रचा हो, श्रीर शंका जैसी सम्यक्त्व नाशिनी राच्चसी की परछाई से भी वश्चित रहें, इसी भावना से यह लघु पुस्तिका भित्त पूर्वक समर्पित करता हूं।

किंकर--

--रत्त

भूमिका

जिस प्रकार सृष्टि सीन्दर्य में आर्यावर्त की शोभा अत्यधिक है, उसी प्रकार धार्मिक दृष्टि से भी यह देव भूमि तुल्य माना गया है। ऐतिहासिक क्षेत्र में भारत मुख्य रहा है और दूसरे देशों के लिये अनुकरणीय दृष्टान्त रूप है। धार्मिक दृष्टि से तो भारतवर्ष कैलास के समान इस अवनी पर सुशोभित एहा है। इतना ही नहीं सर्व धर्म ब्यापक सिद्धान्त "अहिंसा परमोधर्मः" का पालन भी आर्यावर्त में ही बहुत काल से प्रचलित है। सभी धर्म धालों ने श्रहिंसा को महत्व दिया है। जैन धर्म का तो सर्वस्व अहिंसा धर्म ही है, श्रीर इसके लिये जितना भी हो सका प्रचार किया है। जिससे भारत के पुर्यशाली राजाओं ने श्रपने राज्य शासन में श्रहिंसा को जीवन मुक्ति का साधन मान कर प्रथम पद दिया है।

जय जव श्रिहिंसा का महत्व घटकर हिंसा का प्रावत्य हुआ है तब तब किसी न किसी महान श्रात्मा का जन्म होता है, वे महात्मा विकार जन्य—हिंसा जनक—प्रवृत्तियों का विरोध कर नई रोशनी, नया उत्साह पैदा करते हैं। जिस समय वैदिक धर्मावलस्थियों ने हिंसा को श्रिषक महत्व दिया था, धर्म के नाम पर यह, याग हारा गी, घोड़े तथा मनुष्य तक को भी श्रान्त देव के स्वाधीन करने लगे थे, उस

हिंदी संस्करण के विषय में लेखक का

क्षिंचित् निवेदन



प्रस्तुत पुस्तक का गुजराती संस्करण प्रकाशित है थोड़े दिन बाद ही कई मित्रों की श्रोर से हिंदी सं प्रकाशित कर देने की स्वनाएं मिली।

यद्यपि मेरी इच्छा इस पुस्तक के हिंदी संस्करण शित करने की नहीं थी, क्योंकि में चाहता धारि श्री ज्ञानसुन्दरजी के मूर्तिपूजा के प्राचीन इतिहास में पूजा को लेकर हम पर जो आक्रमण हुए हैं, उसी के में एक अन्य निर्माण किया जाय, जिससे इस पुर्ल हिंदी संस्करण की आवश्यकता ही नहीं रहे, किन्तु के अत्यात्रह श्रीर उस प्रन्थ के प्रकाशन में श्रनियमित स्व होने के कारण इस पुस्तक का हिंदी संस्करण प्र^इ किया जारहा है।

सर्वे प्रथम मैंने "लोंकाशाह मत-समर्थन" हिंदी तिखा था, उसका गुजराती श्रनुवाद "स्थानकवाती हैं विद्वान तन्त्री श्रीमान् जीवस्ताल भाई ने किया था, श्रसल हिंदी कॉपी वापिस मंगवाने पर बुक पोष्ट से से मुक्ते प्राप्त नहीं हो सकी, इसिलए गुजराती संस्क्रि से ही पुनः हिंदी श्रनुवाद किया गया।

इस अनुवाद में मैंने यहुत से स्थानों पर यहुत परिवर्तन कर दिया है, परिवर्तन प्रायः भावों को स्पष्ट करने या विस्तृत करने के विचार से ही हुन्ना है, इसलिए गुजराती संस्करण वाले भाइयों को भी इसे देखना आवश्यक हो जाता है।

गले भाइयों को भी इसे देखना श्रावश्यक हो जाता है।

जो सज्जन विद्वान श्रीर संकेत मात्र में स्ममने वाले हैं
उनके लिए तो प्रस्तुन पुस्तक ही ज्ञानसुन्दरजी की पुस्तक के
उत्तर में पर्याप्त है, किन्तु जो भाई उन्हीं की पुस्तक का उत्तर
श्रीर उनकी उठाई हुई कुतकों का खगडन स्पष्ट देखना चाहें
उन्हें कुछ धैर्य धरना होगा, क्योंकि—यह श्रन्थ मात्र एक
ही विषय का होने पर भी बहुत बढ़ा हो जाने वाला है, श्रतरव ऐसा कार्य विलम्ब श्रीर शांति पूर्वक होना ही श्रच्छा है,
जब तक उसका प्रकाशन नहीं हो जाय पाठक इससे ही
संतोप करें।

पस्तुत पुस्तक के विषय में जिन जिन पूज्य मुनि महारा-जाओं और श्राद्ध वन्धुओं ने अपनी अमूल्य सम्मति प्रदान की है उन सबका में हृदय से आभारी हूं। इसके सिवाय स्स हिंदी संस्करण के प्रकाशन में आर्थिक सहायदाता अहमदनगर निवासी मान्यवर सेठ लालचन्दजी साह्य का भी यहां पूर्ण आभार मानता हूं कि—जिनकी उदारता से आज यह पुस्तिका प्रकाश में आई।

यस इतने निवेदन मात्र को पर्याप्त समक्त कर पूर्ण करता हूं।

> विनीत लेखक-

तीर्थंकर प्रभु द्वारा स्थापित, चतुर्विध संघ रूप तीर्ध^ई परम पवित्र सेवा में—

मूर्ति के मोह में पड़कर स्वार्थपरता, शिधितता, और अक्षता के कारण कई लोग हमारी साधुमार्गी समाज पर अचित एवं असत्य आलेप करके सम्यक्त्व को दृपित कर्ष की चेष्टा करते रहते हैं, उन आलेपकारों से हमारी समाउ पर हो, और शंका जैसी सम्यक्त्व नाशिनी राज्ञसी की परहाई से भी विश्वत रहें, इसी भावना से यह लघु पुस्तिका भिक्त पूर्वक समर्पित करता हं।

किंकर--

--रत्त

भूमिका

जिस प्रकार सृष्टि सीन्दर्य में आर्यावर्त की शोभा अत्यिक
, उसी प्रकार घिमिक हिए से भी यह देव भृमि तुल्य माना
या है। ऐतिहासिक द्वेव में भारत मुख्य रहा है और दूसरे
शों के लिये अनुकरणीय हणन्त रूप है। घार्मिक हिए से
। भारतवर्ष कैलास के समान इस अवनी पर सुशोभित
हा है। इतना ही नहीं सर्व धर्म ज्यापक सिद्धान्त "अदिंसा
समोधर्मः" का पालन भी आर्यावर्त में ही यहुत काल से
। चिलत है। सभी धर्म घालों ने अहिंसा को महत्व दिया है।
लेन धर्म का तो सर्वस्व अहिंसा धर्म ही है, और इसके लिये
जेतना मी हो सका प्रचार किया है। जिससे भारत के पुण्यजाली राजाओं ने अपने राज्य शासन में अहिंसा को जीवन
पुक्ति का साधन मान कर प्रथम पद दिया है।

जय जब ऋहिंसा का महत्व घटकर हिंसा का प्रायत्य इक्षा है तब तब किसी न किसी महान प्रात्मा का जन्म होता है, वे महात्मा विकार जन्य—हिंसा जनक—प्रवृत्तियों का वेरोध कर नई रोशनी, नया उत्साह पैदा करते हैं। जिस समय वैदिक धर्मावलम्पियों ने हिंसा को ऋधिक महत्व दिया था, धर्म के नाम पर यह, यान द्वारा नी, घोटे तथा मनुष्य तक को भी श्रान्त देव के स्वाधीन करने लगे थे, उस

समय भगवान महावीर श्रोर महातमा बुद्ध जैसी प्रवत क्तियों का पादुर्भाव हुआ। उन्होंने यह यागादिक कार्ज शोर से विरोध किया। धर्म के नाम पर होने वाले क्र चारों को नेस्तनावृद कर दिया। धर्म तीर्थ ब्यवस्था ए चलता रहे इसके लिये साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका ह चतुर्विध श्रीलंघ की स्थापना की। दीर्घ काल तक उस का नेतृत्व समर्थ मुनियों द्वारा होता रहा, श्रीर संघ कार्य सुचार रूप सं चलता रहा। किन्तु धीरे-धीरे संग मत भिन्नता होने अगी, श्रीर उस मत भिन्नता ने करा का रूप पकड़ कर एकता की शृंखला को तोड़ डाला। य से अवनति का श्री गरोश हुन्ना। अव साधुत्रों में ग्रापस भिन्नता हो गई तत्र स्वच्छन्दता के वातावरण का उन भा श्रसर हुए विना नहीं रहा। श्राखिरकार किसी सम पुरुष का द्वाव नहीं रहते से स्वछन्दता युक्त शिथिलावी वढ़ने लगा। बढ़ते बढ़ते श्रीमान् हरिभद्रस्रि के समय तो मंकट रूप से वाहर श्रागया। उस समय शिथिलता ह कितना दौर दौरा था, इसका वर्णन हम अपने शब्दों में नहीं करते हुए श्रीमान् हरिभद्रसूरि के ही शब्दों में वताते हैं। श्राचार्य हरिभद्रस्रिजी ने "संवोधप्रकरण" में बहुत 📢 जिखा है उसके थोड़े से वाक्य यहां उद्भत किये जाते हैं। "आ लोको चेत्य अने मठ मां रहे छे। पूजा करवाने आरम्भ करे छे। फल फूल अने सचित्त पाणी नो उपयोग करावे छे। जिन मन्दिर अने शाला चणावे छे। पोतानी जात माटे देव द्रव्यनो उपयोग करेछे। तीर्थना पंड्या लोकोनी माफक अधर्म थी घननो संचय करे छे। पोताना भक्ती पर भभृति पण नाखे छे, छिविहित साधुश्रोनी पासे पोतान

्रक्तो ने जवा देता नथी। गुरुश्रोना दाह स्थलो पर पीठो क्षणावे छे। शासननी प्रभावना ने नामे लड़ालड़ी करे छे। द्रा धागा करे छे। " """ श्रादि"

हस प्रकार थी हरिभद्राचार्य ने उस समय की श्रमण्याज का चित्र खींचा है। साथ ही इन वातों का खरडन रिते हुए लिखते हैं कि "ये सब धिक्कार के पात्र हैं, इस दना की पुकार किसके पास करें।" इससे स्पष्ट मालूम निता है कि उस जमाने में शिथिलाचार प्रकट रूप से दिखानिता था। यह हालत चैत्यवाद के नाम पर होने वाली शिखलता का दिग्दर्शन करा रही है, किन्तु उन साधुओं की नेजी चर्या कैसी थी, इसका पता भी श्रीमान् हरिभद्रस्रिती के शब्दों में "संबोध प्रकरण्" नामक प्रनथ से श्रीर जिन्वन्द्रस्रि के "संघपट्टक" में यहुत-सा उल्लेख मिलता है। उनमें से कुछ श्रंश यहां उद्धृत करते हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जाय कि उस समय साधुओं की शिथिलता कितनी श्रीक वढ़ गई थी।

"प साधुश्रो सवारे सूर्य उगतांज खाय छे। यारम्वारे खाय छे। माल मलीदा अने मिएान उढ़ावे छे। शस्या, जोड़ा, वाहन, शस्त्र अने तांवा वगेरेना पात्रो पण साथे राखे छे। अत्तर फुलेल लगावे छे। तेल चोलावे छे। स्त्रीओनो अति प्रसंग राखे छे। शालामां के गृहस्थी ओना घरमां खाजां वगेरेनो पान करावे छे। अमुक गाम मारुं, धमुक फुल मारं, एम अधारा जमावे छे। प्रवचन ने यहाने विकथा निन्दा करे छे। सिद्धा ने मारे गृहस्थ ने घरे निर्वजतां उपाथय

समय भगवान महावीर श्रोर महातमा बुद्ध जैसी प्रकत् क्तियों का पादुर्भाव हुआ। उन्होंने यज्ञ यागादिक् शोर से विरोध किया। घर्म के नाम पर होने वाले चारों को नेस्तनावृद कर दिया। धर्म तीर्थ व्यवस्था र चलता रहे इसके लिये साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका चतुर्विव श्रीसंघ की स्थापना की। दीर्घ काल तक उस का नेतृत्व समर्थ मुनियों द्वारा होता रहा, श्रीर संघ कार्य सुचार क्रव सं चलता रहा। किन्तु धीरे-धीरे संब मत भिन्नता होने जगी, श्रीर उस मत भिन्नता ने अ का रूप पकड़ कर एकता की शृंखला को तोड़ डाला। से अवनित का श्री गरोश हुन्ना। जब साधुत्रों में ग्रापस भिन्नता हो गई तत्र स्वच्छन्दता के चातावरण का उन भा श्रसर हुए विना नहीं रहा। श्रास्तिरकार किसी पुरुष का दबाव नहीं रहने से स्वछन्दता युक्त स्थित वढ़ने लगा। वढ़ते बढ़ते श्रीमान् हरिभद्रसूरि के तो प्रकट रूप से वाहर आगया। उस समय शिधिलता कितना दौर दौरा था, इसका वर्णन हम अपने शब्दों में ग करते हुए श्रीमान् हरिभद्रसूरि के ही शब्दों में बताते हैं। श्राचार्य हरिमद्रस्रिजी ने "संबोधप्रकरण" में बहुत तिखा है उसके थोड़े से वाक्य यहां उद्धत किये जाते हैं।

"श्रा लोको चंत्य श्रने मठ मां रहे छे। पूजा करवानी श्राहम करे छे। फल फूल श्रने सचित्त पाणी नो उपयोग करावे छे। जिन मन्दिर श्रने शाला चणावे छे। पोतानो जात माटे देव इव्यनो उपयोग करेछे। तीर्थना पंद्या माफक श्रवमं थी धननो संचय करे छे। पोताना जो पर अभृति पण नाखे छे, सुविहित साधुश्रोनी पासे पोताना

स्य श्रर्पण कर दिया। कियोद्धार में संलग्न होकर विकार [#]निकाल फेंका। उस समय विरोधी बलने भी तेजी से विश्व किया. किन्तु अन्त में विजय तो सत्य ही की होती पही हुआ। विरोधियों के विरोध के कारण ये हैं— ি श्रमण वर्ग का शैथिल्य (२) चैत्यवाद का विकार (३) श्रहं-पंकी श्रंसाला। इन विरोधी वलों ने कई ज्योति धरों को हसाही बना दियेथे। कह्यों को अपने फंदे में फंसा थाथा। श्रीरक इयों को पराजित कर दियाथा। किन्त मान लोंकाशाह इन सब विरोधी वलों की धकेलते हुए rता साफ करते गये। और जैन धर्मको फिर से देदीप्य· न बनाते गये। श्रमणवर्ग के शिथिलाचार का प्रयत वि-ध किया, तथा सत्य सिद्धांतों का प्रचार किया। धन्य है । धर्म प्राण लोंकाशाह को कि जिन ने धर्म के नाम पर ाने तन, मन, धन श्रीर स्वार्थ की वाजी लगा दी, श्रीर ।र्थवृत्ति घारण कर फिर से जैन धर्म का सितारा चमका या। इस प्रकार शिथिलाचार को ट्र फॅकने वाले श्रीमान् काशाह कितने वीर पुरुष थे. उनमें घीरता श्रीर गम्मीरता तनी थी, इस विषय में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखा-के समान है। ऐतिहासिक दृष्टि से एक श्रंत्रेज लेखिका मान शाह के विषय में लिखती है कि-

"About A. D. 1452× The Lonka Sect arose d was followed by the Sthanakwasi sect, dated nich coincide strikingly with the Lutheran and ritan movements in Europe.

[Heart of Jainism]

इस पर से स्पष्ट मालूम होता है कि श्रीमान लोंका शाह हम पर बहुत उपकार किया। हमें ढोंग श्रीर घतिंग से गया। धर्म निवृत्ति में ही है, इस ्यात को बताकर याहा मां मंगावी ले छे। क्रय-विक्रयना कार्यों मां भाग ले हे। वालकों ने चेलां करवा माटे वेचता ले छे। वैदुं करे हे। धागा करे छे। शासननी प्रभावना ने वहाने लहालां छे। प्रवचन संभलावीने गृहस्थो पासे थी पैसानी राखे छे। ते वधामां कोई नो समुदाय परस्पर मततो वधा श्रह्मिद्र छे। यथा छन्दे वर्ते छे।" श्रादि,

इस प्रकार वतला कर अन्त में वे आचार्य ऐसा कि ''श्रा साधुश्रो नथी पण पेट भराश्रोनुं टोलुं छे।" हरिभद्रस्रिर के समय में ही जब स्वच्छन्दता एवं रि इतनी हद तक श्रपनी जड़ जमा चुकी थी तव श्रीमान शाह के समय तक यह कितनी वढ़ गई होगी, इसका मान पाठक स्वयं ही कर सकते हैं। श्रीमान् लॉकाशाह भी इसी शिथिलाचार को हटाने के लिए क्रान्ति मचार्नी उनसे ऐसी भयंकर परिस्थिति नहीं देखी गई। उन्होंने धर्म के नाम पर पाखराड हो रहा है। श्रव्यवस्था, के ताग्डम चृत्य, स्वार्थ श्रीर विलास का श्रमणों पर धिक अधिकार हो गया है। इसी के फल स्वरूप जैन का महत्व एक दम उतर गया। धर्म के नाम पर गरीव निर्दोप मजा पर श्रत्याचार हो रहा है। कुरूढ़ियें, वहम, श्रद्धा श्रीर सत्ताशाही श्रादि से जनता त्रासको प्राप्त हो वुकी शांति के उपासक अम्य प्रचग्ड वन गरे। समाज सर्व के रत्तक होकर संघ की शक्तियों का भत्तण करने लगे। हालत, वह भी धर्म के नाम पर, भला इसे एक सत्य धर्म का उपासक केसे सहन कर सके ? श्रीमान् शाह भी स्वच्छन्दती के ताएडच को सहन नहीं कर सके। यही कारण है कि उन्हों ने स्वछन्दता को दूर करने के तिये अपना तन, मन, धन,

स्य अपंश कर दिया। कियोद्धार में मंलग्न होकर विकार िनिकाल फेंका। उस समय विरोधी यलने भी तेजी से वाद किया, किन्तु भन्त में विजय तो सत्य ही की होती यही इश्रा। विरोधियों के विरोध के कारण ये हैं— श्रिमण वर्ग का शैधिल्य (२) चैत्यवाद का विकार (३) ऋहं-भ की अंखला। इन विरोधी वलों ने कई ज्योति धरों को त्साही बना दिये थे। कह्यों को अपने फंदे में फंसा द्या था। श्रीर कइयों को पराजित कर दिया था। किन्तु मान् लोंकाशाह इन सब विरोधी वलों को धकेलते हुए हता साफ करते गये। और जैन धर्म को फिर से देदीप्य-न बनाते गये। श्रमणवर्ग के शिथिलाचार का प्रवल वि-ध किया, तथा सत्य सिद्धांतों का प्रचार किया। धन्य है त घर्म प्राण लोंकाशाह को कि जिन ने धर्म के नाम पर यने तन, मन, धन श्रीर स्वार्थ की वाजी लगा दी, श्रीर शर्थवृत्ति धारण कर फिर से जैन धर्म का सितारा चमका या। इस प्रकार शिधिलाचार को दूर फेंकने वाले श्रीमान् काशाह कितने वीर पुरुष थे, उनमें घीरता और गम्मीरता हतनी थी, इस विषय में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखा-के समान है। ऐतिहासिक दृष्टि से एक अंग्रेज लेखिका ीमान् शाह के विषय में लिखती है कि-

"About A. D. 1452× The Lonka Sect arose nd was followed by the Stbanakwasi sect, dated rbich coincide strikingly with the Lutheran and

'aritan movements in Europa.

[Heart of Jainism]

इस पर से स्पष्ट मालूम होता है कि श्रीमान लॉका शाह । हम पर यहुत उपकार किया। हमें दोंग छोर धर्तिग से (चाया। धर्म निवृत्ति में ही है, इस ्वात को बताकर वाहा

श्राडम्बरों से पिएड छुड़्याया। इतनी क्रांति मना हा लोंकाशाह ने श्रपना मत या सम्प्रदाय स्थापित नहीं किन्तु सत्य सनातन जैन धर्म के सिद्धान्तों का ही किया। उन महानुभाव ने धर्म क्रांति में मूर्ति-पूजा की विरोध किया, साधु संस्था का शिष्टिय दूर किया, तशा कारवाद की शृंखला को तोड़ फेंकी। इतना करने पर एक संकुचित वर्तुल में ही दंघे हुए नहीं रहे, किन्तु वि त्तेत्र में पदार्पण किया, श्रीर निर्भय होकर धर्म सुधार वि जिससे धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा रुकी, अहिंसा धर्म का फिर से उद्योत हुआ। ऐसे अ धर्म को वृद्धिगत करने वाले वीर पुरुष का नाम लेकर हैं। सत्य का पुजारी हिंपित नहीं होगा ? आखिर सत्य तो हैं। ही रहता है। फलस्वरूप इन्हीं सिद्धान्तों को मानने लाखों की संख्या में हुए। धर्म को बाह्य रूप नहीं देकर न्तरिक रूप दिया गया। आडम्बर में धर्म नहीं रह सं वहां स्वार्थ की छाया भलकती है। जहां स्वार्थ घुसा के कि परोपकारी चुत्तियों के पर उखड़े। धर्भ प्राण लोकाणी इन स्वार्थ पोपक सिद्धान्तों का प्रवल विरोध किया, है सत्य को सबके सामने रखा। उस सत्य को स्वीकार न की हिए मिध्यावादियों ने श्रपना प्रलाप तो चालू ही रक्खा. भोले भाने जीवों को लगे भरमाने, "अरे भाई? मूर्तिए शास्त्रति है। सूत्रों में स्थान स्थान पर मूर्ति पूजा का वर्ष श्राता है। मूर्ति-पूजा से ही धर्म रह सकता है। हजारों व पहले की सृतियां है " आदि आदि कपोल किएत बाते क कर मोली जनता को ध्रम में डालने लगे। ग्रहा! कित अन्येर ? कहां महावीर के जमाने में ही मूर्ति पूजा का अभाग त्रीर कहां हजारों वर्ष ? हां, यत्तादिकों की मूर्तियां एवं यही तन शास्त्रों में वर्णित पाये जाते हैं, श्रीर प्राचीन मूर्तियां मिलती हैं। परन्तु कोई यह कहने का साहस करें कि ीं, जिन मन्दिर—तीर्धंकर मन्दिर—श्रीर मूर्तियां भी थीं, यह उसकी केवल अनिमिक्ता है। घास्तव में मूर्ति-पूजा ा श्री गरोश पहले पहल वीद्ध मतानुयायियों ने ही किया, ह भी बुद्ध निर्वाण के बाद ही, उसमें भी प्रारम्भ में तो बुद्ध स्तृप, पात्र, धर्मचक सादि की पूजा की जाने लगी, तद-तर बुद्ध की मृतियां स्थापित होने लगी। श्रीर इन्हीं वौद्धों ी देखा देखी जैन घर्मानुयायियों ने भी कुशाण काल में जिन दिरों को बनाया, श्रीर पूजा प्रतिष्ठा करने लगे। जैन धर्म निवृत्ति प्रधान एवं आध्यात्मिक भावों का ही गोतक है, इस बात को भूलकर उपरी आडम्बर में ही धर्म र चिल्लाने घाले कितने शिथिल होगये थे, धर्म के नाम पर म्या २ पार्खंड रचे जाने लगे, इसका वर्णन हम श्री हरिभद्र मुरिजी के शब्दों में ही व्यक्त कर आये हैं। यही कारण है कि जिन धर्म के असली प्राण भाव को उसी समय से तिलांजली िन्दी गई, श्रीर पतन का सर्वनो व्यापी वना दिया गया, हमारे कहने का आश्य यह है कि जैनियों ने आडम्पर को महत्व देकर लाभ नहीं उठाया, वरन् उल्टा अपना गंघा घेठे।

भीमान लोंकाशाह ने इन्हीं शियिलताओं को दूर कर फिर से शाउम्पर रहित श्रिंदिसा धर्म को यतलाया, श्रीर शास्त्रा-नुकूल जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया। परन्तु खेद है कि फिर भी वही पुराना दर्श (श्रपनी ही दयली बजाना) चल रहा है कितने ही व्यक्ति अपना अधिकार न समस-कर उल्टी वातों का फैलाव करते ही रहे, ग्रीर वर्तमान में कर भी रहे हैं। इतना ही नहीं सत्य जैन समाज पर अघटित कालेप फरने से बाज नहीं भाते, और श्रपनी त्त् में में की न्नाडम्बरों से पिएड छु**द्**वाया। इतनी क्रांति मचा कर में लोंकाशाह ने अपना मत या सम्प्रदाय स्थापित नहीं किया किन्तु सत्य सनातन जैन धर्म के सिद्धान्तों का ही प्रचाप किया। उन महानुभाव ने धर्म क्रांति में मूर्ति-पूजा का प्रवत विरोध किया, साधु संस्था का शिष्टित्य दूर किया, तथा अधि कारवाद की शृंखला को तोड़ फेंकी। इतना करने पर भी एक संकुचित वर्तुल में ही धंघे हुए नहीं रहे. किन्तु विशाल त्तेत्र में पदार्पण किया, श्रीर निर्भय होकर धर्म सुधार किया जिससे धर्म के नाग पर होने वाली हिंसा रुकी, औ श्रहिंसाधर्म का फिर से उद्योत हुआ। ऐसे श्रहिंस धर्म को वृद्धिगत करने वाले वीर पुरुष का नाम लेकर की सत्य का पुजारी हर्षित नहीं होगा? आखिर सत्य तो सत ही रहता है। फलस्वरूप स्न्हीं कि दान्तों को मानने वाल लाखों की संख्या में हुए। धर्म को बाह्य रूप नहीं देकर अ न्तरिक रूप दिया गया। आडम्बर में धर्म नहीं रह सकत वहां स्वार्थ का छाया भलकती है। जहां स्वार्थ घुसा ना कि परोपकारी वृत्तियों के पैर उखड़े। धर्भ प्राण लोकाशाह इन स्वार्थ पोपक सिद्धान्तों का प्रवल विरोध किया, श्री सत्य को सबके सामने रखा। उस सत्य को स्वीकार न कर हुए मिथ्यावादियों ने श्रपना प्रलाप तो चालू ही रक्या, औ भोले भाने जीवों को लगे भरमाने, "अरे भाई र मृति-पूर शारवति है। सूत्रों में स्थान स्थान पर मूर्ति पूजा का वर्ष आता है। मृर्ति-पूजा से ही धर्म रह सकता है। इजारों व पहले की मृतियां है " आदि आदि कवील कल्पित बातें क कर भोली जनता को भ्रम में डालने लगे। भ्रहा! कितः अन्धेर ? कहां महावीर के जमाने में ही मूर्ति पूजा का अभाव श्रीर कहां हजारों वर्ष ? हां, यक्तादिकों की मूर्तियां एवं यह यतन शास्त्रों में विणित पाये जाते हैं, श्रीर प्राचीन मूर्तियां भी मिलती हैं। परन्तु कोई यह कहने का साहस करे कि नहीं, जिन मन्दिर—तीर्थंकर मन्दिर—श्रीर मूर्तियां भी थीं, तो यह उसकी केवल अनिभक्ता है। वास्तव में मूर्ति पूजा का श्री गणेश पहले पहल वौद्ध मतानुयायियों ने ही किया, वह भी बुद्ध निर्वाण के बाद ही, उसमें भी प्रारम्भ में तो बुद्ध के स्तूप, पात्र, धर्मचक श्रादि की पूजा की जाने लगी, तदन्तर बुद्ध की मूर्तियां स्थापित होने लगी। श्रीर इन्हीं वौद्धों की देखा देखी जैन धर्मानुयायियों ने भी कुशाण काल में जिन मंदिरों को वनाया, श्रीर पूजा प्रतिष्ठा करने लगे।

जैन धर्म निवृत्ति प्रधान एवं ब्राध्यात्मिक भावों का ही छोतक है, इस बात को भूलकर ऊपरी आडम्बर में ही धर्म २ चिल्लाने वाले कितने शिथिल दोगये थे, घर्म के नाम पर क्या २ पाखंड रचे जाने लगे, इसका वर्णन हम श्री हरिभद्र स्रिजी के शब्दों में ही ब्यक्त कर श्राये हैं। यही कारण है कि जैन धर्म के असली प्राण भाव को उसी समय से तिलांजली देदी गई, श्रोर पतन का सर्वनो ब्यापी बना दिया गया. हमारे कहने का श्राशय यह है कि जैनियों ने आडम्पर को महत्व देकर लाभ नहीं उठाया, चरन् उल्टा ऋपना गंवा बैठे। थीमान लोंकाशाह ने इन्हीं शिघिलताओं को दूर कर फिर से आडम्बर रहित श्रदिसा धर्म को वतलाया, और शास्त्रा-जुकूल जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया। परन्तु खेद हैं कि फिर भी वही पुराना दर्ग (श्रवनी ही दवली बजाना) चल रहा है कितने ही व्यक्ति श्रपना अधिकार न समकः-कर उल्टी वातों का फैलाय करते ही रहे, श्रीर वर्तमान में कर भी रहे हैं। इतना ही नहीं सत्य जैन समाज पर अघटित आनेप करने से याज नहीं भाते, श्रीर अपनी तृ तू में में की

हा हू मचाते ही रहते हैं तथा जनता को घोखे में डालकर श्रिपना स्वार्थ सोघते हैं।

प्यारे न्यायप्रिय महाशयों इन प्रेमियों का ताएडव बढ़ने न पावे और वास्तविक सत्य क्या है इसको जनता मली प्रकार से जानले, इसी उद्देश्य को सामने रखते हुए श्रीमान रतनलालं जी डोशी सेलाना निवासी ने यह पुस्तक 'लोंका-शाह मंत् संमेंथीन नामक श्रापके सामने रक्खी है। इसमें

उन कुर्युक्तियों का ही वास्तविक रीत्या जवाब दिया गया है, जो कि समाज में भ्रम फैलाने वाली एवं वाह्याडम्बर की महत्व देने वाली हैं। श्रन्त में शिथिलाचार पोपकों ने कैसी? क्पोल कल्पित वार्ते लिखी हैं इसका दिग्दर्शन भी लेखक ने

करायां है। इस पुस्तक को लिखकर श्रीमान् डोशीजी ने स्वधर्म रज्ञा की हैं, श्रीर सत्यान्वेपी मुमुज़श्रों की सत्य घटना वताकर धर्म पाण लोकाशाह श्रीर समस्त स्थानक-वासी समाज की सेवा की है। तथा सत्य सिद्धान्तों के प्रति

श्रंपनी श्रटल श्रद्धा व्यक्त कर मिथ्या प्रलाप को जड़ से उखा ढ़ने की कोशिश की है। पतद्र्ध श्रापको घन्यवाद। इस प्रस्तक के लेखन का श्रमिशाय किसी के लिद्धांन्तों

पर छाँकमण करना नहीं है, किन्तु मानव जीवन सत्यम्य वने ग्रीर सत्यमार्ग की गवेपणा कर श्राराधना करे यही है।

श्रतः पाठकों से निवेदन है कि वे इस पुस्तक को शांत भाव से निष्पन्न वेनंकर श्राद्योपान्त पढ़कर सत्य मार्ग का अवतम्बन करें तथा मिथ्या कुयुक्तियों से अपने को बचाते रहें। इत्यलम् सुद्देषु कि बहुना ?

शतावधानी पं॰ मुनिश्री रत्तचन्द्रजी महाराज का चरण किंकर श्रजमेर حاه زرّ- = - زدود / मुनि पूनमचन्द्रः

विषय-सूचि

, l e	षिय			पुष्ठ
प्रवेश चारित्र धर्म	का स्वरूप	•	•••	
	•••	•••	•	×
र् द्रौपदी	•••	••••	-	१६
🗷 सूर्याभ देव			***	થર
३ स्रातन्द श्रावक	•••	•••		રૂપ્ટ
४ श्रंवड संन्यासी			•••	३७
प्र चारण मुनि			•••	३८
६ चमरेन्द्र		****	•	કું
७ तुंगिया के आव	ক		•••	88
= केळा पहरार्थ	••••			४२
् स्वान्यस्यकः निर्मा	क्त श्रोर भरतेश्	गर	••••	
	क्ताधात विधान		•••	पूद
१० महाकरप का म ११ क्या शास्त्रों का	न्त्राच्या करता भे	म॰ पु॰	है !	६६
	344141 41541		•	दह
१२ अवलम्बन	~	•••	****	5 2
१३ नामस्मरण श्री	र मूर्ति पूजा			99
१४ भौगोलिक नक	য়	,		હ દ
६५ क्यापना-सत्य	••	•		-
१६ नामनिद्येष वन	इतीय फ्यों ?	••••	****	≖ •
१७ शक्कर के खि		****	***	= ₹
१७ शक्कर का ल	ું લાગ	****	••••	πX
र= पति का चित्र		••	***	=0
१६ स्त्री चित्र भी	र साधु		****	ξ¥
२० हुएडी से मूर्	त का साम्यता		***	٤Ę
२१ नोट मूर्ति न	H & 1			



री लोंकाशाह मत-समर्थन



चरितधम्मे दुविहे परणते तंजहा-ग्रगार-चरित्तधम्मे चेव, श्रणगारचरित्तधम्मे चेव ॥ [स्थानांग सूत्र]

श्रनन्त, श्रह्मय, केवलशान, केवल दरीन के घारक, विश्वोपकारी, त्रिलोकपूर्य, श्रमण भगवान श्री महावीर प्रमु ने भव्य जीवों के उदार के लिए एकान्त हितकारी मोह्न जैसे शाश्वन सुख को देने वाले ऐसे दो प्रकार के धर्म प्रति-पादन किये हैं। जिसमें प्रथम गृहस्य [भावक] धर्म श्रीर हुसरा मुनि (श्रणगार) धर्म है।

गृहस्थ धर्म की ज्याच्या में सम्यक्तव, हादशवत, न्यारह प्रतिमा, सादि का विस्तृत विचार आगमों में कई जगह मिलता है। प्रमाण के लिए देखिए—

(१) गृहस्थ धर्म की संज्ञित ब्याय्या आवश्यक सूत्र में इस प्रकार वर्ताई है। पंचरहमणुब्दयाणं, निरहं गुणब्दयाणं। चडरहं सिक्खादयाणं, वारसविहस्स॥ (२) आवक जीवन और उसमें दैनिक-शासंगिक कर्तव्य का वर्णन—

स्त्रकृतांग धु० २ <mark>घ० २ स्त्र ७६</mark>—

से वहाणामए सम्योवासगा मवन्ति श्रमिगयवीवावी^{वा}ः उवलद्धपुराणपावा, स्राप्तवसंवरवेयणा, शिक्वरा, किरियाहि गरण्यन्थमोक्सकुमला, श्रमहेज्जदेवासुरनागसुदन्नजक्दा देवगरोहि क्लमकिन्नर्किपुरिसगरुलनंघव्यमहोरगाइएहि निग्गंघात्रो पावयसात्रो, श्रणहक्कमसिज्जा, इस्पेन निर्म्य पाययमें सिस्संकिया निक्कंखिया, निव्वितिगच्छा,स्ट्रा गहियहा, पुच्छियहा, विश्विच्छियहा, श्रमिगयहा,श्रिष्टि र्मिजपैमासुरागरचा । श्रयमाउसो ! निग्नेथे पानपसे श्र^{वं} परमट्ट सेसे श्रणह, ऊतियफलिहा श्रवंगुयदुवारा, श्रविव-चंतेडरपरघरपवेसा, चाउद्महमुहिह्रपुरिण्मासिखीसु पहि पुनं वीसंह सम्मं घणुपालेमाणा समग्रे जिम्मेये फासु-एस चिन्नेषं श्रमण्याण्याद्ममार्मेणं, वस्वपहिन्गहकंबलपाय पुन्टल्लं, श्रीसहमेसन्बेलं, पीटफलगसेन्जासंघारएलं, पडिलामेमाणा बहुर्हि सीलवयगुणवेरमण्यन्वस्वाण्योस-होबबासेखं ऋहापरिन्गहिएहि तबोक्तमोहि, ऋषाखं भावे-माणा विद्रंति ॥७६॥

प्रथम तो मूर्ति-पूजक गृहस्थ लोगों का यह कथन इनके माननीय धर्म गुरुश्रों के वहकाने का ही परिणाम है, क्यों के इनके गुरुवर्यों ने सूत्र स्वाध्याय के विषय में श्रावकों को श्रयोग्य उहरा कर इनका श्रधिकार ही छीन लिया है। जिस से कि ये लोग खुद श्रागम से श्रनभित्र ही रहते हैं, श्रीर गुरुशों से खुनी हुई श्रपनी श्रयोग्यता के कारण सूत्र पठन की श्रोर इनकी रुचि भी नहीं वढ़ती, यिव किसी जिज्ञास के मन में श्रागम बांचन की भावना जागृत हो तो भी गुरुशों की वताई हुई श्रयोग्यता श्रोर महाणाप के भयसे वे श्रागम बांचन से वंचित ही रहते हैं, उन्हें यह भय रहता है कि कहीं थोड़ा सा भी श्रागम पठन कर लिया तो व्यर्थ में महाणाप का वोक्ता उठाना पड़ेगा। ऐसी स्थित में वे लोग 'वाश वाक्यं प्रमाएं' पर ही विश्वास नहीं करें तो करें भी क्या?

इस प्रकार गृहस्थ वर्ग को अन्धकार में रशकर पूज्य वर्ग स्वेच्छानुसार प्रवृत्ति करे इसका मुख्य कारण यही हो सकता है कि यदि आवक वर्ग को सूत्र पठन का अधिकार देया गया, तो फिर सत्याधीं, तत्व गवेपी अभिनिवेप-मिथ्या व-रहित हृदय वाले, मुमुजुओं की अद्धा हमारी प्रचलित हिंत पुत्रा पद्धित को छोड़ कर शुद्ध मार्ग में लगजायगी, कससे हमारी मान्यता, पूजा, स्वार्थ, एवं इन्द्रिय पोपण में हिर्म लगेगा। देखिये इन्हीं के विजयानन्द सूरि सकत अज्ञान-तिमिर-नास्कर" की प्रस्तावना ए० २७ पं० ३ में एवं हों कि—

ंजय धर्माध्यज्ञों का ऋधिक यस होजाता है तब वे ऐसा दोवस्त करते हैं कि—कोई अन्य जन विद्या पढ़े नहीं

कर श्रमण् धर्म के लिये विधि विधान यतलाने वालै ब्रने शास्त्र हैं, जैसे श्राचाराङ्ग स्वकृताङ्ग, ठालाङ्ग, समवाया विवाहप्रज्ञप्ति, दरावैकालिक, उत्तराध्ययन त्रादिः इन सूत्रों त्यागी वर्ग के लिये इसन, चलन, गमनागमन, शयन, निर गमन, प्रतिलेखन, प्रमाजन, त्रालाप संलाप, ज्ञान, दर्शन च।रित्र, तप, त्राराधन, स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग, प्रति कमण, प्रायश्चित्त, विनय, वैयायृत्य, त्रादि स्रनेक स्रावस्य श्रत्यावश्यक, श्रल्पावश्यक कामो की विधि का विधान करने में स्राया है, यहां तक कि रात्रि को निद्रा लेते यदि करव फिराना हो तो किस प्रकार फिराना, मल मूत्रादि किस प्रकार परिष्ठापन करना, कभी सुई, केंची, चाकू या चने की आव श्यकता हो तो कैसे याचना, फिर लौटाते समय किस प्रकार लौटाना, श्रन्य मार्ग न होने पर कभी एकाध बार नदी पार करने का काम पड़े तो किस प्रकार करना, आदि विधि^{र्गी} का विस्तृत विवेचन किया गया है। छेद सूत्रों में दगड़ि धान किया गया है कि उसमें कितने ही ऐसे कार्यों का । दएउ वताया गया है कि जिनका मुनि जीवन में प्रायः प्रसं मी उपस्थित नहीं होता।

इटने कथन से हमारे कहने का यह आश्य है कि पर मोपकारी तीय कर महाराज ने जो आगार और अलगार धर्म बताया है, उसमें "मूर्ति-पूजा" के लिए कहीं भी स्थान नहीं है, न मूर्ति-पूजा धर्म का अंग ही है।

हमारे कितने ही मूर्ति-पूजक वन्धु यों कहा करते हैं कि "मूर्ति-पूजा ख्वों में सैकड़ों जगह प्रतिपादन की गई है" किन्तु उनका यह कथन एकान्त मिथ्या है।

प्रथम तो मूर्ति-पूजक गृहस्थ लोगों का यह कथन इनवें माननीय धर्म गुरुशों के वहकाने का ही परिणाम है, क्यों के इनके गुरुवयों ने सूत्र स्वाध्याय के विषय में श्रावकों को अयोग्य ठहरा कर इनका श्रधिकार ही छीन जिया है। जिस से कि ये लोग खुद श्रागम से श्रानभिश्च ही रहते हैं, श्रोर गुरुशों से सुनी हुई श्रपनी श्रयोग्यता के कारण सूत्र पठन की श्रोर इनकी रुचि भी नहीं वढ़ती, यदि किसी जिद्मासु के मन में श्रागम वांचन की भावना जागृत हो तो भी गुरुशों की वताई हुई अयोग्यता श्रोर महापाप के भयसे वे श्रागम वांचन से वंचित ही रहते हैं, उन्हें यह भय रहता है कि कहीं थोड़ा सा भी श्रागम पठन कर लिया तो व्यर्थ में महापाप का वोभा उठाना पढ़ेगा। ऐसी स्थित में वे लोग 'वावा वाक्यं प्रमाणं' पर ही विश्वास नहीं करें तो करें भी क्या?

इस प्रकार गृहस्थ वर्ग को अन्धकार में रसकर पूज्य वर्ग स्वेच्छानुसार प्रवृत्ति करे इसका मुख्य कारण यही हो सकता है कि यदि आवक वर्ग को सूत्र पठन का अधिकार दिया गया, तो फिर सत्यार्थी, तत्व गवेपी अभिनिवेष-मिष्णा त्व-रहित हृइय वाले, मुमुलुओं की अज्ञा हमारी पचिलित सूर्ति पूजा पद्धति को छोड़कर शुद्ध मार्ग में लगजायगी, जिससे हमारी मान्यता, पूजा, स्वार्थ, एवं इन्द्रिय पोपण में भारी धक्षा लगेगा। देखिये इन्हीं के विजयानन्द सूर्रि सकत ''अज्ञान-तिमिर-भास्कर'' की प्रस्तायना ए० २७ एं० ३ में लिखते हैं कि—

'जय धर्माध्यक्षों का अधिक वल होजाता है तब वे ऐसा पन्दोवस्त करते हैं कि—कोई अन्य जन विद्या पढ़े नहीं जेकर पढे तो उसको रहस्य वताते नहीं, मनमें यह समक्ष् हैं कि श्रपढ़ रहेंगे तो हमको फायदा है, नहीं तो हमा छिद्र काढ़ेंगे, ऐसे जानके सर्व विद्या गुप्त रखने की तजवी करते हैं, इसी तजवीज ने हिंदुस्तानियों का स्वतंत्र पणानक करा श्रीर सच्चे धर्म की वासना नहीं लगने दी, श्रीर नये? मतों के श्रम जाल में गेरा श्रीर श्रच्छे धर्म वालों को नास्तिक कहवाया।

यद्यपि श्रात्मारामजी का यह श्राद्येप वेदानुयायियों पर है किन्तु वे स्वयं श्रपने शब्दों का कितने श्रंशों में पालन करते थे, इसका निर्णय इन्हीं के वनाये 'हिंदी सम्यक्ष श्रव्योद्धार' चतुर्थ वृत्ति के 'श्रावक सूत्र न पढ़े' शीर्षक प्रक रण से हो सकता है, इस प्रकरण में श्राप एकान्त निर्णे करते हैं। कुछ भी हो पर स्वामीजी का कारण तो सत्य ध सो श्रद्धान तिमिर भास्कर में वता ही दिया, उन्हीं के शब्दे से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रपने स्वार्थ पर कुठाराबाद होने के कारण ही श्रावकों को सूत्र पठन में श्रनधिकार्य वे।पित किया गया है।

१-श्रावक सूत्र पढ़ सकता है या नहीं ? यह विषय एक स्वतंत्र निरम्य की श्रावश्यकता रखता है। यहां विषयानता के भय से उपेका की जाती है।

इतना दोते हुए भी जो इने गिने पढ़े लिखे आगम वांचक दयक्ति हूँ वे अपने गुरुओं के कथन को असत्य मानते हुए भी उनके मनाव में आकर तथा दुरायद के कारण पकड़ी हुई



जेकर पढे तो उसको रहस्य बताते नहीं, मनमें यह समभ हैं कि अपड़ रहेंगे तो हमको फायदा है, नहीं तो हम छिद्र काढ़ेंगे, ऐसे जानके सर्व विद्या गुप्त रसने की तजबी करते हैं, इसी तज्ञवीज ने हिंदुस्तानियों का स्वतंत्र पणान करा श्रीर सच्चे धर्म की वासना नहीं लगने दी, श्रीर नये मतों के श्रम जाल में गेरा श्रीर श्रच्छेधर्म वालों को नास्तिक कहवाया।

यद्यपि श्रात्मारामजी का यह श्राच्चेप वेदानुयायियों पर हैं किन्तु वे स्वयं श्रपने शब्दों का कितने श्रंशों में पाल करते थे, इसका निर्णय इन्हीं के वनाये 'हिंदी सम्यक्त शब्योद्धार' चतुर्थ वृत्ति के 'श्रावक सूत्र न पढ़े' शीर्षक प्रक्र रण से हो सकता है, इस प्रकरण में श्राप एकान्त निषेक करते हैं। कुछ भी हो पर स्वामीजी का कारण तो सत्य था सो श्रद्धान तिमिर भास्कर में वता ही दिया, उन्हीं के शब्दों से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रपने स्वार्थ पर कुठारावाल होने के कारण ही श्रावकों को सूत्र पठन में वापित किया गया है।

१-श्रावक स्त्र पढ़ सकता है या नहीं ? यह विषय एक स्वतंत्र निरम्य की श्रावश्यकता रखता है। यहां विषयान्ता के भय से उपेता की जाती है।

इतना होते हुए भी जो इने गिने पढ़े लिखे श्रागम बांचक इयक्ति हैं वे श्रपने गुरुशों के कथन को श्रसत्य मानते हुए भी उनके प्रभाव में श्राकर तथा दुराशह के कारण पकड़ी हुई हु हु को छोड़ते नहीं हैं। पंडित वेचरदासजी जैसे तो विरत्ते ही होंने जो इस विषय में गुरुओं की परवाह नहीं करते हुए सूत्रों का अध्ययन मनन करके मू०पू० विषयक सत्यहकीकत प्रकट कर अज्ञान निद्रा में सोई हुई जनता के समत्त सिद्ध कर दिखाई उसका भाव यह है कि--

''मृर्ति-पुना भागम विरुद्ध है। इसके लिये तीर्थकरों ने खत्रों में कोई विधान नहीं किया। यह कल्पित पद्धति हैं"। ी देखो—'जैन साहित्यमां विकार थवा थी धयेली हानि'

इस सत्य कथन का दराड भी पंडितजी को भोगना पड़ा मूर्ति-पूजक समाज ने आपका विद्यकार कर दिया, शाब्दिक ाण वर्षा की कड़ी लग गई, सद्भाग्य से पंडितजी के मूल्प ान शरीर पर आक्रमण नहीं हुआ, इसिल्य यदि कोई सत्य चार रखते भी हैं तो सामाजिक भय से सत्य सममते हुए भी प्रकट करते उरते हैं।

इत्यादि पर से यह स्पष्ट् होगया कि—हमारे ये भोते भाई गुरुखों के पढ़ाये हुए तोते हैं, इसलिए शास्त्रज्ञान से गायः अनिभिन्न इन बन्धुओं को कुछ भी नहीं कुहकर इनके ित्रों की दलीलों को ही कसीटी पर कसकर विचार करेंगे ससे पाउकों को यह मालूम हो जाय कि-स्तकी युक्ति र प्रमाणों में कितना सत्य रहा हुमा है। पाउकों की जिता के लिए हम इनकी दलीलों का प्रश्नोत्तर हुए में

१-द्रौपदी

प्रश्न-द्रौपदी ने जिन प्रतिमा की पूजा की है जिस कथन 'ज्ञाता धर्म कथांग' में है और वह श्राविका भी उसके 'समोत्थुंगं' पाठ से मालूम होता है, इससे मूर्ति करना सिद्ध होता है. फिर श्राप क्यों नहीं मानते ?

उत्तर-द्रौपदी के चरित्र का शरण लेकर मूर्ति-पूजा सि करना, वस्तु स्थिति की श्रनभिञ्चता, श्रौर श्रागम प्रमाण विर्वलता जाहिर करना है। यहां श्रसलियत को स्पष्ट कर के पूर्व पाठकों की सरलता के लिए 'जिन' शब्द का श्र श्रौर उसकी ब्याख्या करदेना उचित समभता हूं।

जिन शब्द के मूर्ति पूजक आचार्य श्री हेमचन्द्रजी निम्न चार अर्थ किये हैं।—

- ?. तीर्थंकर २. सामान्य केवली ३. कंदर्भ कामदेव ४. नारायमा दृरि । (हेमीनाम माला)
- (१) तीर्थद्वर-वाह्य श्रोर श्रभ्यंतर शतुश्रों को जीतने वार्षे श्रमन्त श्राम, श्रमन्त दर्शम, श्रमन्त चारित्र, श्रमन्त वल हे यारक, देवेन्द्र नरेन्द्रादि के पूजनीय, ३४ श्रातिशय ३४ वार्षे श्रातिशय के घारक, विश्व वंद्य, साधु श्रादि चार तीर्थ ही स्थापना करने वाले तीर्थद्वर प्रथम 'जिन' हैं।

(२) सामान्य केवली-याद्या-भ्यन्तर शत्रुश्रों से रहित, अनन्त ज्ञानादि चतुष्ठय के धारक, कृतकृत्य केवली महाराज द्वितीय 'जिन' हैं।

ये दोनों प्रकार के 'जिन" भाव 'जिन' हैं। इनके शरण में गया हुआ प्राणी संसार लागर को पार कर मोल के पूर्ण उख का भोक्षा वन कर जन्म मरण से मुक्त होता है।

कंदर्भ (कामदेव)-यह तीसरा दिग्विजयी 'जिन'है, जिसमें देव, दानव, इन्द्र, नरेन्द्र, व मनुष्य, पशु, पन्नी, सभी को अपने आधीन में रखने की शक्ति है।

इस देव के प्रभाव से बहे २ राजा महाराजाओं के श्रापस में युद्ध हुए हैं। रावण, पद्मोत्तर, कीचक, मदन रथ, आदि पहान चूपतिश्रों के राज्यों का नाश कर उन्हें नर्क गामी वनाया है। बढ़े २ ऋषि मुनियों के वर्षों के तप संयम को इस कामदेव ने इशारे मात्र से नप्र कर उन्मार्ग गामी वना डाला है। नन्दीसेण जैसे महात्मा को इस जिन देव ने अपने एक ही भाषाडे में धराशायी कर अवना पूर्ण आधिपत्य जमा दिया, इसी विश्वदेव की वेरणा से ही तो एक तपस्वी साधु विशाल नगरी के नाश का कारण बना। इस देव की लीला री अवर्णनीय है। यह बढ़े २ उच्च फुल की कोमलांगियों के ल गौरव का नाश करते शरमाता नहीं, भनेक महा सति-ों को इस जिन देव की रूपा से बेरित हुए नरपिशा**वों** द्वारा गद्भर कष्ट सहन कर दर दर मारी मारी फिरना पड़ा। ाज का अपमान लक्ष्न कर अनेक मकार की यातनाएँ

सहन करना पड़ी। वड़े २ उच्च खानदानी युवकों को वेश्या गामी, परदार-व्यसनी, वना कर घर २ भीख मांगते इसी ने तो बनाये हैं। ग्राज भारत की श्रधो गति, वल, वैभव, उच्च संस्कृति का नाश यह सभी इसी जिन-देव के कृपा कटाइ का फल है।

पुराणों की इन्द्र, चन्द्र, नरेन्द्र, महेश, गीतमऋषि ग्रादिकी कलंक कथाएँ भी इसी देव की कृषा का परिण्याम कि

वर्तमान समय में भी पुनिववाह की प्रथा अनेक हिन्दुओं का मुसलमान, ईसाई, आदि वन जाना कन्या-विकय, वृद्ध विवाह, भ्रूण-हत्या, आदि का होना इत्यादि जितनी भी गुण गाथाएं इस विश्वदेव की गाई जाय उतनी थोड़ी है। इस तरह यह कामदेव भी तृतीय श्रेणी का 'जिन' है।

(४) नारायण (वासुदेव)-तीन खएड के विजेती

श्रपने वाहुवल से श्रनेक युद्धों में श्रनेक महारथियों को परा जित कर सम्पूर्ण तीन खराड में निष्कंटक राज्य करने वाले ऐसे वासुदेव भी चौथी श्रेणि के 'जिन' है '।

यह तीसरी श्रीर चौथी श्रेणि के जिन द्रव्य जिन हैं इनसे संसार के प्राणियों का उद्धार नहीं हो सकता। तृतीर श्रेणि का जिन तो तीनों लोक विगाइता है, श्रीर जितन प्रभाव श्रम्य तीन जिन देवों का नहीं उतना इस कामदेव जिल का है, इसके श्राध्य में जितने प्राणी हैं उतने श्रम्य तीन जिन के नहीं।

नोट--' बुद्ध को भी जिन कहा गया है। सूत्रों में श्रवः धिज्ञानी, मनप्रयक्तानी को भी जिन कहे हैं।

जार्ओं को छोड़कर निदान के प्रभाव से पारांडु पुत्र के गते वर माला डालकर पांच पति की पत्नि वनी ब्रादि।

इस कथानक पर से यह घटित होता है कि द्रीपदी है जिस जिन प्रतिमा की पूजा की थी वह जिन प्रतिमा, पाउड़ी के पूर्व परिचित उस तीसरी श्रेगि के जिन (कामदेव) की मूर्ति होनी चाहिये। निम्नोक्ष देतु इसको सिद्ध करते हैं-

(श्र) जिन प्रतिमा पूजा के समय द्रौपदी जैन धर्मिश (श्राविका) नहीं थी, श्रौर निदान पूर्ति के पूर्व वह श्राविक भी नहीं हो सकती है, न सम्यक्त ही पा सकती है, क्यों निदान प्रभाव ही ऐसा है। यदि द्रौपदी के निदान को 🤫 रस का कहा जाय तो मन्दरस वाला निदान भी पूरा हुँ^ए विना श्रवना प्रभाव नहीं हठा सकता, श्रीर द्रीपदी की निद्रान पूर्ति दोती है पाणित्रहण के परचात्, स्रतएव पाणित्रहण 🕯 पूर्व द्रौपदी में सम्यक्त्य का होना एकदम श्रसम्भव ाल्र होता है। खास खुत्र में भी स्थयम्बर मएडप में ब्राते द्रौपदी पर निदान का श्रसर वताने वाला मूल पाठ स्पष्ट रूप से मिलता है, देखिये-

''पुत्र्वकय णियाणेणं चोंइङजमाणी"

जय मृति पूजा के पश्चात् भी द्रौपदी के लिए स्त्रकार 'पूर्व' कृत निदान से प्रेरित हुईं 'लिखते हैं तो पहले पूजा के समय उस परसे निदानके प्रभावसे हटकर सम्यक्त्व को कैसे प्राप्त ही गई ?विस्र पाटक इस पर जरा मनन करें कि जब सम्यक्त जिसमें नहीं है तो वह तीर्थद्वर को श्राराध्य देव कैसे मान सकता है ? अतएव यह स्पष्ट हुआ कि द्रीपदी की प्रतिम पूजा तीर्थद्भर मृति की पूजा नहीं दो सकती।

निदान ग्रस्त के संस्कार ही ऐसे वन जाते हैं कि जिन नाव से जब तक इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो जाय तब तब इ उसी विचार श्रीर उधेड़ बुन में लगा रहता है। यहां द्रीपर्द हिदय में निदान प्रभाव से विलासिता की पूरी आकांच ो, श्रखएड भोग प्राप्त करना ही जिसका मुख्य लह्य था, त इसी ध्येय को लक्ष्य कर द्रीपदी ने अपनी यह इच्छा करने को ऐसे ही देव की मूर्ति की पूजा की। उसे उस य वस केवल इसी की शावश्यकता थी। यदि द्रौपदी उस समय थाविका ही होती, तो वह पांच क्यों वस्ती ? श्रगर पांच पति से पाणित्रहण करने में पर निदान प्रभाव कहा तो पूजा के समय जो कि स्वयं-ह लिए प्रस्थान करते समय की थी, निदान प्रभाव कहां गया ? इस पर से यह सत्य निकल झाता है कि जीपदी ो पूजी हुई सूर्ति तीर्थक्कर की नहीं होकर कामदेव ही की

ो। सीभाग्य एवं भोग जीवन की सामग्री की पूर्णता एवं वुरता ऐसे ही देव से चाही जाती है। (ब्रा) विवाह के समय द्वुपद राजा ने मुद्य, मांल का ब्रा-ार बनवाया था, यह झीपदी के परिवार को ही अजैन होना ता रहा है। इस पर से भी द्रीपदी के श्राविका नहीं होने

(इ) द्रौपदी के विवाद पर्चात् उसका पांच पति हप रान पूर्ण होकर सम्यक्तव की वाधा भी दूर हो जाती है, ए विवाह बाद के वर्णन से ही द्रीपदी का श्राविका होना ा जाता है, लग्न परवात् के जीवन में ही नत नियम,

ता है, किन्तु लग्न के बाद से लेकर संयमाराघन श्रीर है श्रनशन के सारे जीवन विस्तार में कहीं भी मूर्ति पूज उल्लेख स्रोज करने पर भी नहीं मिलता है। यदि मूर्ति

घार्मिक करणी में मानी गई होती तो उसका वर्णन भी मिक करणी के साथ अवश्य मिलता। इस पर से भी घा इत्यों में मृति पूजा की उपादेयता सिद्ध नहीं हो सकती इसके सिवाय द्रौपदी के प्रतिमापूजा के प्रकरण में 'र त्थुणे और स्योभदेव की साची के पाठ होने का नी जाता है किन्तु यह पाट मूल का होना सिद्ध नहीं हो सक कारण प्राचीन इस्त लिखित प्रतियों में उपरोक्त नमोड श्रादि पाठ का नहीं होना है. श्रीर श्राचार्य श्रमयदेव स्^{रि} भी इस बात को स्वीकार कर बृत्ति में स्पष्ट कर दिया है। चार्य श्रमयदेवजी का समय वारहवीं श० का है जब से वीं और १७वीं शताबी तक की मतियों में माय:-"जिए पडिमार्स श्रद्धचर्म करेई" इतना ही पाठ मिलता है। स्वयं इस लेखक ने मीदि में श्रीमान् लाला मन्न्जालजी श्रत्रवाल के पास बहुत प्राइ श्रीर जीर्ण श्रवस्था में झाता घमें कथा की एक प्रति देर उसमें भी केवल उक्त पाट ही है। इसी प्रकार किशनगढ़ मी एक प्रति उक्त प्रकार के ही पाउ को पुष्ट करने वाली है दीकाकार श्री श्रमयदेवजी भी मूल पाठ में केवल उक्त वार को स्थान देकर वाकी के पाठ को वाचनान्तर में होना वता हें, देखिये--'जिएपडिमाएं श्रच्चएां करेड्ति-एकस्प वाचनाया मेतावदेव हरयते, वाचनास्तरेतु"

इस मकार मूल पाठ को इतना ही स्वीकार कर वाचना-हतर में अधिक पाठ होना माना है। इससे अतुमान होता है कि-द्रौपदी के अधिकार में समोत्युं आदि अधिक पाठ इस जिन प्रतिमा को तीर्थक्षर प्रतिमा सिद्ध करने के अभि-गय से किसी शंकाशील मित लेखक ने बड़ा दिया हो, श्रीर ह पाठ सर्व मान्य नहीं है यह स्पष्ट है।

इतने विवेचन पर से यह श्रुच्छी तरह सिद्ध होग्या कि क्षा प्रसंग पर निदान के प्रभाव से मिध्यात्व वाली द्रौपदी स्ते पूजी हुई जिन प्रतिमा तीर्धहर की मूर्ति नहीं हो सकती प्रेसे मकरण पर से मूर्ति-पूजा को धार्मिक व उपादेय सम-क्र भना अनुवित है। स्वयं टीका कार भी द्रौपदी के इस पूजा तिमकरण में जिखते हैं कि—

'नच चिरतानुवादवचनानि विधि निषेध साधकानि भवंति'

ऐसी अवस्था में कथानक की ज़ोट लेकर विधिमार्ग में वृत्त होने वाले श्रीर व्यर्थ के श्रारंभ समारंभ कर श्रात्मा ो श्रमर्थ दराड में डालने वाले वन्धु वास्तव में दया के पान



?—''सूर्याभ देव"।

परन-स्याभदेव ने जिन प्रतिमा की पूजा की पेर राजप्रश्नीय सूत्र में लिखा है, इससे मृति-पूजा करना वि होता है, फिर श्राप क्यों नहीं मानते ?

उत्तर-सूर्याभदेव के चरित्र की श्रोटलेकर मूर्ति-पूर्व में धर्म वताना मिथ्या है।

स्योभ की मृति पूजा से तीर्थंकर की मृति पूजा करने ऐसा सिद्ध नहीं हो सकता. क्योंकि--

तत्काल के उत्पन्न हुए स्याभदेव ने अपने सामानिक देवें के कहने से परंपरा से चले आते हुए जीताचार का पाल किया है। और जिन मितामा के साथ २ नाग, भूत मितमा को कि-उससे हल्की जाित के देवों की है उनकी और अन्य जहा की है, स्याम को उस समय जीताचार के अनुसार से भी काम करने थे जा उससे पहले वहां उत्पन्न होने वाले सभी देवों ने किये थे उसका यह कार्य घमे बुद्धि से नहीं था।

दूसरा-सूर्योम की पूजी हुई प्रतिमा तीर्थंकर प्रतिमा ही इसमें कोई प्रमाण नहीं, कारण वहां वताई हुई प्रतिमाएं ास्वत है, जिसकी स्रादि और अन्त नहीं, और तीर्थंकर ाखत नहीं हो सकते (यद्यपि तीर्थंकरत्व शाखत है किंत मुक तीर्थक्कर शास्वत है यह नहीं है। सकता । क्योंकि-। जनमें हैं इसलिये उनकी आदि और अन्त है, देवलोक में ाताई हुई ऋषभ, वर्द्धमान, चन्द्रानन, वारिसेन इन चार ाम वाली मृतिएं शास्वत दोने से तीर्थद्वरों की नहीं दो नकती। यह तो देवताश्रों की परम्परा से चली श्राती हुई हल, गौत्र, या ऐसे ही किसी देव विशेष की मूर्ति है। सकती है, क्योंकि-जहां प्रतिमात्रों का नाम है वहां पृथक २ देव-तोक में होते हुए भी सभी जगह उक्त चारों नाम वाली ही मृर्तिएं वताई गई है। यदि ये मृर्तिएं तीर्थद्वरों की होती तो इन चार नामों के सिवाय अन्य नाम वाली और अशास्वती भी होनी चाहिये थी, हां. यदि तीर्थञ्जर केवल चार ही होते तय तो वे मूर्तिएं तीर्थंकर की कभी मानी भी जा सकती, किंतु तीर्धेकर की संख्या हरएक काल-चक्र के दोनों विभागों में चौबीस से कम नहीं होती, श्रतएव देवलोक की मृतिएं तीर्थं करों की द्वाना सिद्ध नहीं द्वा सकती।

सूर्याभ के इस कृत्य को धार्मिक कृत्य कहने वालों को निम्न रातों पर ध्यान देना चाहिये--

(श्र) जिन प्रतिमा के साथ द्वार, तोरण, ध्वजा, पुष्क-रणी श्रादि को पूज कर सूर्याभ ने किस धर्म की श्राराधना की ? (त्रा) स्थाभ के पूर्व भवमें प्रदेशी राजा का जीव कि क्रि, हिंसक श्रीर नर्क गित की श्रीर लेजाने वाले कर्म वाला था, यदि ये ही कृत्य चालू रहते तो श्रवश्य उसे कीय यातनाएं सहन करनी पड़ती। किन्तु जीवन के विभाग में श्रीमान् केशीकुमार श्रमण के उपदेश से धर्माराधन, तपश्चर्या, परिपहसहन, श्रन्तिम संख्यादि कियाश्रों द्वारा संचित पाप पुंज का नाश कर पुण्य प्रवल भंडार हस्तगत किया, क्या इस पाप पुंज संहाि पुण्य उद्य करने वाली करणी में कहीं मूर्ति पूजा का भी निशान है ?

(इ) स्याभ ने उत्पन्न होकर मूर्ति-पूजाकी, उसके भी कभी नियमित रूप से उसने पूजा की है क्या? भी घार्मिक कृत्य तो सदैव किये जाने चाहिये, जैसे भी प्रतिक्रमण श्रादि, पूर्व समय के श्रावक प्रति दिन कृत्य करते थे इसका वर्णन सूत्रों में पाया जाता है। कि तरह यदि मूर्ति-पूजा को भी घार्मिक किया में स्थान के तो किसी न किसी स्थान पर एक भी श्राद्धवर्य के विवर्णन में उल्लेख श्रवश्य मिलता । इसी प्रकार मूर्ति पूर्व यदि घार्मिक करणी होती तो स्थाभ सदैव इस क्रिया करता, खास २ प्रसंग पर तो कुल रिवाज श्रथवा विवर्ण

(ई) स्यांभ का दढ़ प्रतिश्च कुमार रूप श्रन्तिम भव उसमें चारित्र धर्म की श्राराधना कर मुक्ति प्राप्त करने द वर्णन दें, उसमें भी कहीं मृति-पूजा का कथन है क्या? ŀ

। जय हमारे मूर्ति-पूजक येधु इन वातों पर विचार करेंगे ा उन्हें भी विश्वास होगा कि-मूर्ति पूजा को धर्म कहना

सूर्याभ की यह करणी जीताचार की थी, धर्माचार श्रात्मोत्थान) की नहीं। वर्तमान में भी राजा महाराजा जया दशमी को कुलदेवी, तलवार, वन्द्रक, तोप, घड़ियाल कारे, निशान, हाथी, घोड़ा श्रादि की पूजा करते हैं, यह भी कृत्य परंपरा से चले आते हुए रिवाज में ही सिमलित सस्यक्त्वी श्रावक भी दीपावली पर वही, दवात, कलम, न, खपारी के बनाये हुए गयोश. किंदनत लद्मी आदि की ज्ञा करते हैं, ये सभी कार्य सांसारिक पद्धति के श्रवसार ु इसमें धर्म का कोई सम्यन्ध नहीं है। न कोई सम्यक्ती सी कियाओं में धर्म मानते ही हैं। इस प्रकार के लौकिक मार्गि पूर्व समय में बड़े २ धावकों ने भी किये हैं, उनमें भर-विश्वर, अरहणक आवक आदि के चरित्र ध्यान देने योग्य हैं ्रते सांसारिक इत्यां को धर्म कहना, या इनकी ओट लेकर प्रेरर्थक पाप वर्चक किया में घर्म होने का प्रमाणित करना, ानता को घोखा देना है।

यदि थोज़ी देर के जिए हम हमारे इन भोले वन्धुझाँ के धनानुसार देवलोक स्थित मूर्तियों को तीर्थक्कर मूर्ति मान वाखनार ववलामा रूपा प्राच्या है। के विति प्राच्या विति प्राच्या विति प्राची ा ना क्यार वर्तमान समय में आदर्श नेताओं के चित्र विषं स्मारक रूप में बनाये जाते हैं, यहन्हें में स्वर्गीय विकटोरिया की

(२०) मूर्ति वहे २ शहरों में रही हुई है, इती प्रकार महत लोकमान्य तिलक, गोखले ब्राद्धिके हजारों की चित्र तथा कहीं २ किसी की मूर्ति भी दिलाई देती देशी राज्यों में राजात्रों के पुतले (मूर्तियें) वड़ी त साथ वनीचों (गार्डनों) में रक्खे हुए मिलते हैं, स्मारक हैं, माननीय पुरुषों की यादगार में वने हैं प्रकार जगत हितकत्ती विश्वोपकारी, देवेन्द्र नरेन्द्रों नीय, श्रनन्तज्ञानी प्रभु की मूर्तिएं भक्तों द्वारा वना तो इसमें श्राश्चर्य ही क्या है ? जब हम सभी कला साथ चित्र कला को भी श्रनादि मानते हुँ श्रीर देवाँ दे कुशलता विशिष्ठ प्रकार की कहते हैं। तो फिर महार र्यशाली देव जो प्रभु के उत्कृष्ट रागी श्रीर मह हैं वे उनकी हीरे जवाहिरात की भी मूर्ति वनवालें तो इसमें रचर्य की कोई वात नहीं है। जो जिसे आदरणीय के है वह उसकी यादगार में उसका चित्र बनाव या वर्ष यह स्वामाविक है, किन्तु ये सभी स्मारक में ही गिने हैं, इसमें घार्मिकता का कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसे हैं हैं। रूप्त जानकता का काइ सम्बन्ध नहा है। रूप में घम समस्रकर श्रमित द्रव्य ब्यय श्रीर श्रगणित त्रस, र् वर जीवों का विनाश कर डालना, केवल मूर्खता ही यदि मृति-पूजक पं० त्रेचरदासजी के शब्दों में कहा जाय घार्मिक विधानों की सिद्धी किसी कथा की श्रोट लेकर हो सकती, उनके लिए विधि वाक्य ही होने चाहिए, छ लिए धर्म के मुख्य श्रद्ध कहें जाने वाले कार्य के लिए खास विधि का प्रमाण नहीं वताकर किसी कथा की है तेना त्रीर उसके मात्र को तोड़ मरोड़ कर मनमानी धी तान करना यह अपने पत्र कोही किएत और असत्य हि

कथानक के पात्र स्वतंत्र हैं, वे अपनी इच्छानुसार कार्य ासकते हैं, उनके किये कार्य सभी के लिए सर्वधा उपा-∦नहीं हो सकते, श्रौर विधि विधान जो होता है वो सभी लिए समान रूप से उपादेय होता है, उसके लिए खास हों में कथन किया जाता है। श्रमुक कार्य इस प्रकार ना ऐसा स्पष्ट वाक्य विधि में गिना जाता है। जिस प्रकार ति पुजक श्राचार्यों ने मृति पुजा किस प्रकार करना, किस वय किस सामग्री से करना इस विषय में प्रन्थों के पृष्ठ के १ भर डाले हैं, इसी प्रकार यदि गण्धरोक्त उभयमान्य सूत्रों भी कहीं वताया गया होता या केवल इतना भी कहा गया ता कि—'श्रावकों का मूर्ति-पूजा करना चाहिये, मुनिश्रों दर्शन यात्रा त्रादि करना व उस संयन्धी उपदेश देना हिए, संघ निकलवाना चाहिए, ग्रादि कथन होता तो ये ांग सर्व प्रथम ऐसा प्रमाण बड़े २ असरों में रखते किन्त व सूत्रों में ही नहीं तो लावे कहां से ? अतएव सूत्रों में र्ति पूजा का विधान द्वाने का कहना श्रीर स्योन के कथा-ह की अनुचित साची देना मृपावाद और हिंसावाद के पण करने समान है। समभदारों को चाहिए कि वे निष्प-वृद्धि से विचार कर सत्य को ग्रहण करें।





कथानक के पात्र स्वतंत्र हैं, वे अपनी इच्छानुसार कार्य सकते हैं, उनके किये कार्य सभी के लिए सर्वधा उपा-ं नहीं हो सकते, श्रौर विधि विधान जो होता है वो सभी लिए समान रूप से उपादेय होता है, उसके लिए खास दों में कथन किया जाता है। श्रमुक कार्य इस प्रकार ना ऐसा स्पष्ट वाक्य विधि में गिना जाता है। जिस प्रकार ते पूजक आचार्यों ने मूर्ति पूजा किस प्रकार करना, किस ाय किस सामग्री से करना इस विषय में प्रन्थों के पृष्ठ के : भर डाले हैं, इसी प्रकार यदि गण्धरोक्ष उभयमान्य सूत्रों भी कहीं यताया गया होता या केवल इतना भी कहा गया ता कि-'श्रावकों केा मूर्ति-पूजा करना चाहिये, मुनिश्रों दर्शन यात्रा त्रादि करना व उस संवन्धी उपदेश देना हिए, संघ निकलवाना चाहिए, श्रादि कथन होता तो ये ग सर्व प्रथम ऐसा प्रमाण वड़े २ श्रत्तरों में रखते किन्तु । सूत्रों में ही नदीं तो लावे कहां से ? श्रतपय सूत्रों में ते पूजा का विधान होने का कहना श्रीर सूर्योन के कथा-त्की अनुचित साची देना मृपावाद और हिंसावाद के रण करने समान है। समभदारों को चाहिए कि वे निष्प-बुद्धि से विचार कर सत्य को ग्रहण करें।



३—''श्रानन्द श्रावक''

प्रश्न-श्रानन्द् श्रावक ने जिन प्रतिमा वांदी हैं, दे कथन "उपासक दशांग" में है, इस विषय में श्रापका है कहना है ?

उत्तर-उक्त कथन मी असत्य है, उपासकद्शीं आनन्द के जिन मितमा बन्दन का कथन नाम मान के नहीं है, यह तो इन बन्धुओं की निष्कल (किन्तु अन्ध दानुओं में सफत) चेष्टा है, ये लोग मान वहां आये 'चैत्य' शब्द से ही मृति बन्दने का श्रहंगा लगाते हैं, इ सबेधा श्रनुचित है। यह शब्द किस विषय में और श्रवें को बनाने में आया है पाठकों की जानकारी के

दत स्थत का वह पाठ जिलकर बताया जाता है— नोत्तलुमेभंते करपहंत्रज्ञप्पभिहंत्रज्ञदिं श्रहण्डियियदेवयाणिका, त्रण्णउत्थियपरिस्

¹⁵ णमंसित्तएवाः

व्वेश्वलाणतेणं श्वालवित्तएवा, संलवित्तएवा, तेसि श्वसणंवा, पाणंवा, खाइमेवा, साइमेवा, दाउंवा श्रणुप्पदाउंवा'।

श्रथीत—इसमें श्रानन्द थावक प्रतिशा करता है कि— निरचय से श्राज परचात मुभे श्रन्य तीर्थिक, श्रन्य तीर्थ के देव, श्रीर श्रन्य तीर्थी के ग्रहण किये हुए साधु को चंदन मिस्कार करना, उनके गोलाने से पूर्व गोलना, वारंबार वो-गा, श्रसण, पाण, खादिम, स्वादिम, देना, वारंवार देना, हि नहीं करणता है।

श्रव करवता क्या है सो कइते हैं--

'कप्पइ में समणेणिग्गन्थे फास्एणं ऐसणि-ज्जेणं, श्रमण, पाण, खाइम, साइम, वन्ध, पड़ि-ग्गह, कंवल, पादपुच्छणेणं, पीढ, फलग, सिज्जा, संधारेणं, ओसह, भेसज्जेणं, पडिलाभेमाणे वि-हरित्तए'।

श्रथीत्-शानन्द थावक प्रतिश्वा करता है कि—मुक्ते प्रमण निर्ज्ञथ को प्रामुक प्रविज्ञ असण पाण, खादिम, स्वा-देम, वख, पात्र, कम्बल, पात्रपुच्छना, पीठ, फलक, शया, संथारा, श्रीपधि, मेपज्य प्रतिलाभते हुये विचरना कल्पता है। यहां श्रानन्द शावक सम्यन्धी फल्पनीय तथा श्रक्लप-गिय विषयक दोनों पाठ दिये गये हैं, इस पर से मूर्तिपूजा हैसे सिद्ध हो सकती हैं ? मूर्तिपूजक लोग श्रवीचीन प्रतिश्रों

३—''ग्रानन्द श्रावकः'

पश्न-आनन्द आवक ने जिन प्रतिमा वांदी है, ऐस कथन "उपासक दशांग" में है, इस विषय में आपका क्या कहना है?

उत्तर-उक्त कथन भी श्रसत्य है, उपासकद्शांग में श्रानन्द के जिन प्रतिमा वन्दन का कथन नाम मात्र को भी नहीं है, यह तो इन वन्धुश्रों की निष्फल (किन्तु श्रन्ध श्र जालुश्रों में सफल) चेष्ठा है, ये लोग मात्र वहां श्राये इण् 'चैत्य' शब्द से ही मूर्ति वन्दने का श्रदंगा लगाते हैं, जो कि सबेधा श्रनुचित है। यह शब्द किस विषय में श्रीर किस श्रथे को बताने में श्राया है पाठकों की जानकारी के लिए

उस स्थल का यह पाउ लिखकर बताया जाता है-नोष्वलुमें भंते कष्पईश्रज्जष्पभिइंश्रन्नउत्धिएग श्रमणडित्यदेवयाणिया, श्रमणडित्यपपरिगमि णिया चेइयाइ, बंदित्तएवा, णमंसित्तएवा, प्र व्विश्रहाणतेणं श्रालवित्तएवा, संलवित्तएवा, तेर्सि श्रमणंवा, पार्णवा, खाइमेवा, साइमेवा, दाउंवा श्रणुप्पदाउंवा'।

श्रर्थात—इसमें श्रानन्द श्रावक प्रतिशा करता है कि-निश्चय से श्राज परचात मुक्ते अन्य तीर्थिक, अन्य तीर्थ के देव, श्रीर अन्य तीर्थी के प्रहण किये हुए साधु को यंदन नमस्कार करना, उनके गोलाने से पूर्व गोलना, वारंवार वो-लता, श्रसण, पाण, खादिम, स्वादिम, देना, वारंवार देना, यह नहीं करणता है।

श्रव करपता क्या है सो कहते हैं--

'कष्पइ में समणेणिग्गन्थे फासूएणं ऐसणि-ज्जेगां, श्रमण, पाण, खाइम, साइम, वन्ध, पडि-ग्गह, कंवल, पादपुच्छणेगां, पीढ, फलग, सिज्ञा, संधारेणां, ओसह, भेसज्जेगां, पडिलाभेमाणे वि-हरित्तए'।

अर्थात्--आनन्द आवक प्रतिज्ञा करता है कि-मुक्ते अमण निर्मेथ को प्रामुक एपणिक असण पाण, खादिम, स्वा-दिम, चस्त्र, पात्र, कम्यल, पात्रपुच्छना, पीठ, फलक, यया, संथारा, औषि, मेपन्य प्रतिलाभते हुये विचरना कल्पता है। यहां आनन्द आवक सम्बन्धी कल्पनीय तथा अकल्प-नीय विपयक दोनों पाठ दिये गये हैं, इस पर से मूर्तिप्जा कैसे सिद्ध हो सकती है! मूर्तिप्जक लोग अर्वाचीन प्रतिषों

२—''श्रानन्द श्रावक''

प्रश्न-श्रानन्द श्रावक ने जिन प्रतिमा बांदी है, ऐस् कथन ''उपासक दशांग'' में है, इस विषय में श्रापका क्य कहना है ?

उत्तर-उक्त कथन भी श्रसत्य है, उपासकद्शांग व श्रानन्द के जिन प्रतिमा वन्दन का कथन नाम मात्र को भे नहीं है, यह तो इन वन्धुश्रों की निष्फल (किन्तु श्रन्ध श्र दालुश्रों में सफल) चेष्ठा है, ये लोग मात्र वहां श्राये हुं 'चैत्य' शब्द से ही मूर्ति वन्दने का श्रहंगा लगाते हूं, जो कि सबेथा श्रनुचित है। यह शब्द किस विषय में श्रीर कि

श्रर्थ को बताने में श्राया है पाठकों की जानकारी के लिय उस स्थल का वह पाठ लिखकर बताया जाता है--

नोवनुमेभंते कष्पईश्रज्ञपिमहंश्रज्ञडिथण्य श्रमण्डित्यदेवयाणिया, श्रमण्डित्यपरिग्गहि याणिवा चेह्याह, वंदित्तण्या, णमंसित्तण्या, प्र व्विश्वलाणतेणं श्रालवित्तएवा, संलवित्तएवा, तेसि श्रमणंवा, पाणंवा, खाइमंवा, साइमंवा, दाउंवा श्रणुप्पदाउंवा'।

श्रर्थात—इसमें श्रानन्द श्रावक प्रतिशा करता है कि-निश्चय से श्राज पश्चात मुक्ते श्रन्य तीर्थिक, श्रन्य तीर्थ के देव, श्रीर श्रन्य तीर्थी के प्रहण किये हुए साधु को चंदन नमस्कार करना, उनके गोलाने से पूर्व गोलना, वारंवार वो-लना, श्रसण, पाण, खादिम, स्वादिम, देना, बारंवार देना, यह नहीं कल्पता है।

श्रव करवता क्या है सो कहते हैं--

'कप्पइ में समणेणिग्गन्थे कास्एणं ऐसणि-ज्जेणं, श्रमण, पाण, खाइम, साइम, वत्थ, पड़ि-ग्गह, कंवल, पादपुच्छणेणं, पीढ, फलग, सिज्जा, संधारेणं, ओसह, भेसज्जेणं, पडिलाभेमाणे वि-हरित्तए'।

अर्थात्--मानन्द थावक प्रतिज्ञा करता है कि-मुभे अमण निर्मेथ को प्रामुक एपणिक असण पाण, खादिम, स्वा-दिम, वस्म, पात्र, कम्यल, पात्रपुच्छना, पीठ, फलक, शया, संथारा, औपिध, भेषच्य प्रतिलाभते हुये विवरना कल्पता है। यहां आनन्द धावक सम्यन्धी कल्पनीय तथा अक्ल्प-नीय विषयक दोनों पाठ दिये गये हैं, इस पर से मूर्तिपूजा कैसे सिद्ध हो सकती है? मूर्तिपूजक लोग अर्थाचीन प्रतिश्रों

३—''त्रानन्द श्रावक"

मश्न-श्रानन्द आवक ने जिन प्रतिमा वांदी है। कियन "उपासक दशांग" में है, इस विषय में श्रापका कि

उत्तर-उक्त कथन भी श्रसत्य है, उपासकद्यां। श्रानन्द के जिन प्रतिमा वन्दन का कथन नाम मात्र को नहीं है, यह तो इन वन्धुश्रों की निष्फल (किन्तु श्रम्ध १ द्वालुश्रों में सफल) चेष्ठा है, ये लोग मात्र वहां श्राये ई 'चेत्य' राष्ट्र से ही मृति वन्दने का श्रद्धंगा लगाते हैं, जो है सबेथा श्रनुचित है। यह राष्ट्र किस विषय में श्रीर कि अबे को बनाने में श्राया है पाठकों की जानकारी के कि उस स्थल का वह पाठ लिखकर बताया जाता है--

नोष्वलुमेभंते कष्पईश्रज्ञष्पिमइंश्रज्ञउतिवर्ष श्रम्णउतिवयदेवयाणिया, श्रम्णउतिवयप् याणिया चेड्याइ, वंदित्तग्या, णमंसित्तग्या, ह व्वेश्रहाणतेणं श्रातित्तएवा, संतिवित्तएवा, तेसि श्रमणंवा, पाणंवा, खाइमंवा, साइमंवा, दाउंवा श्रणुप्पदाउंवा'।

अर्थात्—इसमें आनन्द आवक प्रतिश करता है कि-निश्चय से आज पश्चात मुक्ते अन्य तीर्थिक, अन्य तीर्थ के देव, और अन्य तीर्थी के प्रहण किये हुए साधु को वंदन नमस्कार करना, उनके गोलाने से पूर्व गोलना, वारंवार वो-लना, असण, पाण, खादिम, स्वादिम, देना, वारंवार देना, यह नहीं करण्या है।

श्रव करपता क्या है सो कहते हैं--

'कप्पइ में समणेणिग्गन्थे फासूएणं ऐसणि-ज्जेंगां, श्रमण, पाण, खाइम, साइम, वन्थ, पड़ि-ग्गह, कंवल, पादपुच्छणेंगां, पीह, फलग, सिज्जा, संथारेणां, ओसह, भेसज्जेंगां, पडिलाभेमाणे वि-हरित्तए'।

अर्थात्-मानन्द थावक प्रतिज्ञा करता है कि—मुक्ते थमण निर्मेथ को प्रासुक एपणिक असण पाण, खादिम, स्वा-दिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पात्रपुच्छना, पीठ, फलक, राया, संधारा, औषि , मेपच्य प्रतिलाभते हुपे विवरना कल्पता है। यहां आनन्द आवक सम्बन्धी कल्पनीय तथा अकल्प-नीय विपयक दोनों पाठ दिये गये हैं, इस पर से मूर्तिपूजा कैसे सिद्ध हो सकती है ? मूर्तिपूजक लोग अर्वाचीन प्रतिश्रों में निम्न रेखांकित शब्द बढ़ाकर कहते हैं कि-न्रानन्द भाव ने जिन प्रतिमा बांदी है। बढ़ाया हुन्ना शब्द सम्बन्धि वाक्य के साथ इस प्रकार है—

'श्रग्ण उत्थि परिग्गहियाणि 'श्ररिहंत' चेहयाइं'

उक्त पाठ में रेखांकित श्रिरहंत शब्द श्रिधिक वड़ाकर है शब्द से यहां यह श्रर्थ करते हैं कि—

'श्रन्य तीर्थियों के श्रहण किये हुए श्ररिहन्त चंल-जिन मतिमा' (इसे यन्दन नहीं कक्षं)

इस तरह ये लोग पाठ बढ़ाकर श्रीर उसका मनगर्न श्रथं करके उससे मृतिपूजा सिद्ध करना चाहते हैं, दिन् इस प्रकार की चालाकी सुद्ध जनता में श्रधिक देर नहीं दिं सकती, क्योंकि समभदार जनता जब प्राचीन प्रतियों का निरीचण करके उनमें बढ़ाया हुश्रा श्ररिहंत शब्द नहीं देखेंचे तो श्रापकी चालाकी एक दम पकड़ी जा सकेगी, क्योंदि प्राचीन प्रतियों में यह श्ररिहंत शब्द है ही नहीं। इसकें

(य) पित्रयादिक सोसायदी कलकत्ता से प्रकाणि उपासकदर्यांग की प्रति में तो 'श्रिरिहंत-चेइयाइं' राष्ट्र नहीं है श्रीर उसके श्रंत्रजी श्रमुवादक ए० एफ० रडोएफ होर्न साहय ने श्रमेक प्राचीन प्रतियों पर से नोट में ऐसा लिख

'चंत्र और श्ररिदंत चैत्य ग्रन्द दीका में से लेकर मूल में मिला दिया है, जिस दीका में जिला है कि—पूजनीय श्ररि

में निम्न रेखांकित शब्द बढ़ाकर कहते हैं कि-न्नानन्द भाव ने जिन प्रतिमा बांदी है। बढ़ाया हुन्ना शब्द सम्बन्धि वाक्य के साथ इस प्रकार है—

'श्रयण उत्थि परिग्गहियाणि 'श्ररिहंत' चेइयाइं'

उक्ष पाठ में रेखांकित अरिहंत शब्द श्रिधिक वड़ाकर ए शब्द से यहां यह अर्थ करने हैं कि—

'श्रन्य तीर्थियों के श्रहण किये हुए श्ररिहन्त वैस-िक मितमा' (इसे वन्दन नहीं करूं)

इस तरह ये लोग पाठ वढ़ाकर और उसका मनमान श्रध करके उससे मृतिपूजा सिद्ध करना चाहते हैं, किंतु इस प्रकार की चालाकी सुद्ध जनता में श्रधिक देर नहीं दि सकती, क्योंकि समक्षदार जनता जब प्राचीन प्रतियों की निरीचण करके उनमें बढ़ाया हुश्रा श्रिरहंत शब्द नहीं देखेंगी तो श्रापकी चालाकी एक दम पकड़ी जा सकेगी, क्योंकि प्राचीन प्रतियों में यह श्रिरहंत शब्द है ही नहीं। इसं

(य) पित्रयादिक सोसायटी कलकत्ता से प्रकारित उपासकदरांग की प्रति में तो 'श्रिरिदंत-चेइयाइं' शब्द नहीं है और उसके श्रंत्रजी श्रजुवादक ए० एफ० रडोएफ होर्त सादव ने श्रनेक प्राचीन प्रतियों पर से नोट में ऐसा निख

'चेल और श्रारदंत चेल राष्ट्र रीका में से लेकर मूल में मिला दिया है, जिस रीका में खिला है कि—पूजनीय श्रीर

प्रतिष्ठा, धूप, दीप, नैवेद्य श्रादि वस्तुश्रों का भी निर्देश काता क्योंकि-मूर्ति-पूजा के काम में यही वस्तुएँ उपयो होती हैं। श्रशन पान श्वलाप संलाप से मूर्ति का तो हो सम्बन्ध ही नहीं हो सकता।

(ग) कल्प सम्बन्धो दूसरी प्रतिश्वा में तो साधु के हि वाय श्रन्य किसी का भी नाम नहीं है। न वहां वैस ग्रा का उल्लेख है। यदि स्त्रकार या श्रावक महोदय को मूर्ति पूजा इप होती तो इस विधि प्रतिश्वा में उसके: लिये भी इन न कुछ स्थान श्रवश्य होता।

श्रतपव सिद्ध हुशा कि हमारे मूर्ति पूजक वन्धुश्रों ने ने श्रपने मनमाने शन्द श्रीर श्रथी लगाकर श्रानन्द श्रावक है मूर्ति पूजक कहने की धृष्टता की है वह सवेथा हेय है। । भोले भाइयों को श्रपने ही मान्य विजयानन्दस्रि (जो हर्षी मूर्ति पूजक थे। के निम्न कथन पर ध्यान देकर विचार करण चाहिये। श्रापने मूर्ति पूजा के मंडन में साधुमार्गियों ही निद्दा करते हुये 'सम्यक्त्य शल्योद्धार हिन्दी की चतुर्थोद्धि 'श्रानन्द श्रावक जिन प्रतिमा चादी है' इस प्रकर्ण एट ८४ पंक्ति ? से लिखा है कि—

'यचिष उपायकदशांग में यह पाठ नहीं हैं क्योंकि-प्यीचार्यों ने स्त्रों को संचिष्त कर दिं हैं तथापि समवायांग में यह बात प्रसन्न हैं।

इसमें विजयानन्द सूरि साफ स्वीकार करते हैं कि 'उपासकद्यांग में (जिसमें कि प्रानन्द श्रायक के सम्बं

है ? इस पर से तो मू० पू० वंधुओं को यह समक्षता वा कि जिस विस्तृत कथन में ऐती छोटी २ वातों का कथन श्रीर मूर्तिपूजा जैसे धार्मिक कहे जाने वाले दैनिक कर्ता लिये विन्दु विसर्ग तक भी नहीं,, यह साफ वता रहा है वे श्रादरी श्रावक मूर्तिपूजक नहीं थे।

(२) स्वामीजी ने हिम्मत पूर्वक यह डींग मारी है 'समवायांग में यह वात प्रत्यत्त है' यह लिखना भी भूंठ क्योंकि समवायांग में श्रानन्द श्रावक का वर्णन तो ठीकी नाम भी नहीं है, हां समवायांग में उपासगदशांग नोंघ श्रवश्य है, उस नोंघ में यह वताया गया है कि-

'उपासगद्यांग में श्रावकों के नगर, उद्यान, ब्यन्तरा तन, वनखएड, राजा, माता पिता, समयसरण, धर्माना धर्मकथा, इह लोक, परलोक श्रादि का वर्णन हैं

वस समवायांग में यही नोंच है श्रीर इसी को विज्ञा नन्दजी मू० पू० का प्रत्यत्त प्रमाण कहते हें ? हां यदि इसे यह कहा गया होता कि उपासगदशांग में श्रावकों के मिल मूर्ति पूजने दरीन करने यात्रार्थ संघ निकालने त्रादिविषय कथन है मू० प्० के लिये यह सास प्रमाण रूपमानी जास ती थी, किन्तु जय इसकी कुछ गंच ही नहीं फिर केसे की जाय कि समयायांग में मत्यज्ञ है ? विजयानन्दजी के अ उल्लेख का याधार वहां श्राया हुया एक मात्र 'नैत्य' गृह री है। जिसका युद्ध और प्रकरण संगत अर्थ 'व्यन्तरायतां नदीं करके स्वामीती ने जो जिन मन्दिर श्रथं किया यह है की उनित से भी वाचित होता है क्योंकि—

(अ) उपासगद्यांग में जो चेत्य ग्रन्ट श्राया है की

है जव उपासगदशांग ति ही स्वामीजी के कथनाजुसार मूर्ति पूजा का लेख नहीं है ाव समवायांग में केवल इसी शन्द से प्रत्यच श्रीर खुना र्ति पूजा का पाठ कैसे हो सकता है ? अतपव उपासगद-ोंग की तरह समवायांग का पाठ भी इसमें प्रमाण नहीं हो

(आ) स्वामी ती ने उपासगद्शांग में अपने मत के अ कूल 'श्रिरहंत चे स्याइं' पाठ माना है, किन्तु स्वामीजी के ्ष्ये हुए इस समवायांग के प्रमाण पर विचार करने से वह

स्वामीजी तथा इनके श्रवुयायिश्रों की मान्यताबुसार ो 'श्ररिढंत चेइयाइं' यह शब्द असल मूल पाठ का होता इससे मूर्ति चन्दन नहीं मान कर इन्हें समवायांग के केव-चे ह्याइं शब्द (जो व्यन्तरायतन अर्थ को वताने वाला है) भि श्रीर श्राया से तरसना नहीं पड़ता। समवायांग के पाठ हा प्रमाण देना ही यह यता रहा है कि उपासगद्यांग में

रूतिं पूजा का वर्णन ही नहीं है . या प्रतिप्त (श्ररिहत चेह-ाई) पाठ में खुर इन्हें भी संदेह जात हुआ है। इस (३) स्वामीजी के लिखे हुए उवासगदशांग में मूर्ति ा का पाउ नहीं होकर समवायांग में हैं इससे तो उल्ही पाटिक सोसायटी कलकत्ता वाली प्रति का श्रारिहत चेइ-बिना का पाठ ठीक जान पड़ता है, क्योंकि उपासगद-और समवायांग इन दोनों में मात्र 'चेइवाई' शब्द ही वैत्यं-इयन्तरायतनं, समया० टीका एव १०=सूत्र १४१ मा

हो श्रीर उपासकदशांग का 'चेइयाइं' शब्द मी स्वामीबी मान्यतानुसार मूल पाठ का नहीं ऐसा पाया जाता है। क तो स्वामीजी समवायांग के मात्र 'चेइयाइं' शब्दकी श्रोरम हैं? यद्यपि विजयानन्दजी उपासकदशांग में 'श्रीरहंत के याइ' शब्द स्पष्ट स्वीकार कहीं करते हैं तथापि इनके प्रयास से यह शब्दशी तरह प्रमाणित हो गया कि जा स्व में में उक्त पाठ नहीं होने रूप सत्य इनको भी कुछ तो कद्वी ही श्रीर इसीसे समवायांग की श्रोट लेने का इनको मिण

(ई) श्रव समवायांग में चैत्य शब्द किस प्रसंग ह श्राया है यह बता कर स्वामीजी के मिथ्या प्रयास का रहें! किया जाता है।

समवायांग में उपासक दशांग की नोंघ लेते हुए वता गया है कि उपासक दशांग में क्या वर्णन है।

र्नेसे—सेर्कितं, उवायम दसात्रो ! उवायम दसार्गं उवायमांगं, णगराइं, उवजाणाइं, 'चेइयाइं' वणखंडा, सर्वा यो, अम्मावियसे, समोसरणाइं, धम्मायित्या, धम्मक्हार्गः इदलोइय, वस्लोइय इद्वितिसेसा, उवासयाणं, सीलव्यय, वेर मण, गुण्याच्चवन्छाणं, पोसहोववास, पडिविज्जयाचो, सुर्व विस्थिता, त्वीवहाणाइं, पडिमात्रो, उवासम्या संलहणाइं भन्यवच्चाणाइं पावीयमणाइं, देवलोग गमणाई सुकृति च्चाया, पुणावादि लाभो, अंतिकिरियाचो आचिवहविते।

हो श्रीर उपासकद्यांग का 'चेइयाइं' शब्द मी स्वामीजी की मान्यतानुसार मूल पाठ का नहीं ऐसा पाया जाता है, तभी तो स्वामीजी समवायांग के मात्र 'चेइयाइं' शब्दकी श्रोर भपटे हैं ? यद्यपि विजयानन्दकी उपासकद्यांग में 'श्रीरहंत चेइ याइ' शब्द स्पष्ट स्वीकार कहीं करते हैं तथापि इनके उक्ष प्रयास से यह श्रव्यी तरह प्रमाणित हो गया कि उपासकद्यांग में उक्ष पाठ नहीं होने रूप सत्य इनको भी कुछ तो कत्र्ल हैं ही श्रीर इसीसे समवायांग की श्रोट जेने का इनको मिथ्या प्रयास करना पड़ा।

(ई) श्रव समयायांग में चैत्य श्रम्द किस प्रसंग पर श्राया है यह बता कर स्वामीजी के मिथ्या प्रयास का स्कोट किया जाता है।

समयायांग में उवासक दर्शांग की नींघ लेते. हुए, बताया गया है कि उवासक दर्शांग में क्या वर्णन है।

र्तसे—सेहितं, उत्रामगा दमाया ! उत्रामगा दमामृगां उत्रामयाणं, जगराई, उत्र्वाणाई, 'चेड्याइं' वणखंडा, रायाखो, अम्माविषया, ममेमम्हायां, ध्रमायियां, ममेमम्हायां, ध्रमायियां, भमेमम्हायां, ध्रमाद्वायां, ध्रमाद्वायां, ध्रमाद्वायां, ध्रमाद्वायां, प्राप्तव्यय, येर्माणां, प्राप्तव्ययम् इद्विसिमा, उत्रामयाणं, मीलव्यय, येर्माणां, गुण्यव्यक्षायां, पीमहोत्रवाम, पडिविज्ञ्यायां, सुय-विग्यां, त्रवावडाणांई, पडिमायां, उत्रामगा मंत्रेदणायां भन्त्रव्यायां, प्राप्तव्यायां, प्राप्तविग्रं पात्राविग्रं मार्थां प्राप्तविग्रं विग्रं प्राप्तविग्रं विग्रं प्राप्तविग्रं विग्रं व

अर्थात् - उपासक दशांग में क्या है ? उपासक दशांग में उपासकों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखराड, राजा, माता, पिता, समचसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलौकिक पारलो-किक ऋ दि विशेष, उपासकों के शीव वत, वेरमणवत, गुण-पीपघोषवास वत, स्त्रत्रहण, तपोधान, उपासक प्रतिमा उप-सर्ग सल्तेहणा, भक्तपत्याख्यान, पादोपगमन, उच्चकुल में जन्म फिर वोधि (सम्यक्तव) लाभ, श्रन्तिया करना ये सव

इस सूत्र में कहीं भी मूर्ति पूजा का नाम तक नहीं है, न मिन्दर वनवाने या उसके मिन्दर होने का ही लेख है. फिर ये कैसे कहा जाता है कि समवायांग में प्रत्यत्त है ? विचार करने पर मालूम होता है कि 'चेइयाइं' जो नगरी के साथ उद्यान और इसमें रहे हुए 'व्यन्तरायतन' के वर्शन में श्राया है इसीसे उन श्रावकों के मन्दिर होने या मूर्ति पूजने का कहते हैं, किन्तु इनका यह कथन भी एक दम असत्य है। क्योंकि जिस प्रकार उपासक दशांग की सूची यताई गई है उसी प्रकार श्रन्तकृत दशांग श्रवुत्तरोपपातिकदशा, विपाक इन की भी सूचि दी गई है सभी में पक समान पाठ आया है,

श्रंतगडाण गागराई, उज्जागाई, 'चेइपाई' श्रग्राचरी-ाइयाणं गागराइं, उज्जागाईं, 'चेइयाईं' सुद्दविवागाणं पा-राहं, उन्जाणाहं, 'चेंह्याहं' दुहविवागार्यं णगाराहं, उन्जा

श्चर्थात्—श्रंतकतो, श्रनुत्तरोपपपातिकों, सुवातक श्रीर दुःबान्तकरों के नगर, उद्यान, चैत्य थे, इस प्रक श्राये हुए चैत्य शब्द से यह प्रश्न होता है कि— क्या इस सभा के वनाये हुए जिन मन्दिर थे, ऐसा ब्र

माना जायगा ? नहीं, कदापि नहीं ! यहां का निरावाध अ

जहां श्रन्तकृतादि रहते थे वहां व्यन्तरायतनथा यही उपगु श्रीर संगत है। यहां श्राये हुए चैत्य शब्द का श्रर्थ उनके नाये तुर जिन मन्दिर या उनके जिन मन्दिर ऐसा मानने वा से जब यह पूछा जाता है कि ऐसा श्रर्थ मानने पर श्रापक दुःखांत विवाक में विश्वित उन दुष्ट मलेच्छ, श्रनार्य, लोगीं व भी जिन-मन्दिर मानने पड़ेंगे। क्योंकि यह 'चैत्य' शब्द तो वदां भी श्राया है ऐसा मानने पर जिन-मन्दिर का महत्व ही क्या रहेगा? इतना पृछने पर यहां तो चट वे हमारे मूर्ति पूजक बन्धु कह देंगे कि नहीं यहां चेत्य शब्द का अर्थ जिन मन्दिर-जिन मूर्ति नहीं होकर व्यन्तर मन्दिर ही अर्थ होगा इस तरह एक समान वर्णन में एक जगह जिन-मन्दिर व हुमरी जगह स्थन्तरायतन अर्थ कैसे हो सकता है ?

वास्तव में ऐसे वर्गोनों में चैत्य गुब्द का श्रर्थ बर्वतरायतन होता है। इसके लिये उपासगदशांग में नगरियों के साथ व्याये हुए नाम प्रमाण है। जैसे

पुग्यमहे चेहल, कोड्डमे चेहल, गुमासिकाल चेहल प्रारि रेसे वाक्यों में चैत्य गृब्द का श्रर्थ ब्यंतरायतन ही होता दें, स्वयं त्रागमों के दीकाकार भी हमारे इस त्रयं से सह मत हो कर इनके कदे हुए अर्थ का छएडन करते हैं।

चेइएति—चितेर्लेष्यादि चयनस्य भावः कर्म-वेति चैत्यं, संज्ञाराज्दत्वाद् देव विंबं तदाश्रयत्वात् तद्गृहमपि चैत्यं तच्चेह व्यंतरायतनम् नतु भग-वतामहेतामायतनम् ।

वतामहंतामायतनम् ।
इससे सिद्ध हुश्रा कि श्रादरी श्रमणोपासकों को मूर्ति-प् जक ठहराने का कथन एकान्त क्षेठ है । श्रीर साथ ही मूर्ति-प्रा श्रागम सम्मत है ऐसे कहने वालों के इस सिद्धांत को श्रागम प्रमाण हो वह पेसा मिश्या प्रपञ्च क्यों करने लगे ? यह त्रात श्रच्छी तरह समक्ष में श्रा सके पेसी सरल है ।



श्रंबड्-श्रावक (सन्यासी)

प्रश्न- श्रंवड श्रावक ने जिन प्रतिमा वांदी ऐसा स्वर्ष कथन श्रोपपातिक सूत्र में है, यह तो श्रापको मान्य है न्

उत्तर--उक्त कथन भी श्रानन्द श्रावक के श्रधिकार की तरह निस्सार है, यहां भी श्राप प्रसंग को छोड़ कर ही छार उथर भटकते हैं, क्योंकि श्रंवड़ परिवाजक ने निम्न प्रकारसें प्रतिवा की है—

णोकप्पद्व श्रम्णउत्थिएवा, श्रम्णउत्थिष दवयाणिवा, श्रम्णउत्थिय परिग्गहियाणि श्रिरि हंत चेइयाणिवा, वंदित्तएवा, समंसित्तएवा, जा वपञ्जवासित्तएवा, समस्य श्रिरहंतेवा, श्रिरहंत चेइयाणिवा, वंदित्तएवा, समस्तितएवा,

नीर-यह पाठ जो यहां दिया गया है सी केवल गुजरावी मित से ही, और गुजराती मित में भी किसी अन्य मित है दिया गया दोगा। किन्तु अभी आगमोदय समिति की मि हा अवलोकत किया तो उसमें अकल्पनीय मितशा है

'श्रिरिहेत' राब्द है ही नहीं, हमारी समाज में अब तक विना हुँढे किसी भी पति का अनुकरण कर अग्रुख पाठ दे दिया जाता है यह प्रथा विचारकों के। भ्रम में डॉल देती है इस-लिये हमें सब्चे शोधक वनना चाहिये, सब्चे अन्वेषक के सामने पूर्व की चालाकियां अधिक समय नहीं उहर सकती श्राशा है समाज के विद्वान इस श्रोर ध्यान देंगे श्रागमोदय विमिति की पित का पाठ इस प्रकार है:—

श्रागमोद्य समिति के श्रीपपातिक सूत्र के चालीलवें स्त्र पृष्ठ ६० पं० ४ से

श्चम्मडस्सणो कप्पई श्चन्नडिथया वा श्रन्नः उत्थिय देवपाणिवा, श्रमणउत्थिय परिग्गहि**-**पाणिवा 'चेइयाईं' वंदित्तएवा णमंसित्तएवा गावपज्जुवासित्तएवा ण्रण्टथ श्रारिहंनेवा श्रारे

इस पर से उपासगदशांग का ऋरिहंत शब्द स्पष्ट प्रज्ञित क सिद्ध होता है, इसके सिवाय कल्पनीय प्रतिसा में जो वंत शब्द है वह भी श्रभी विचारणीय हैं, फिर भी जो ो निःसंकोच मान जिया जाय तो भी इसका परमार्थ रादि से लेकर सामान्य साधुआं के चंदन का ही स्पष्ट है, भ्रन्यथा श्रंवड़ के लिए गण्धरादि के वन्दना सिद्ध मा कोई सम ही नहीं रहेगा। सिवाय श्ररिहंत श्रीर चैत्य (साधु) को वन्दन नमस्कार करनाफल्पता है।

इस पाठ में श्ररिहंत चैत्य शब्द श्राया है, जिसका स श्रथं गुरु गम्य से जाना है। श्रीर वो हे भी उपयुक्त, क्यों यदि श्रारिहंत चैत्य से साधु श्रर्थ नहीं लिया जायगा तोश्र तीर्थी के साधु वन्दन का निषेघ नहीं होना श्रीर जैन माधुत्रों को वन्दन नमस्कार करने की प्रतिक्षा भी नहीं गई एमा मानना पड़गा, श्रतएव सिद्ध हुश्रा कि-श्रीह चेत्य का श्रर्थ श्ररिहंत के साधु भी होता है श्रीर इसी ग स गणवर, पूर्वचर, श्रतघर, तपस्त्री श्रादिमुनियों को क नादि करने की श्रंवड़ ने प्रतिज्ञा की थी। यह हिंगिज न हो सकता कि —श्रिरहंत के जीते जागते 'चैत्यों' (गण्य यावन माधु) को छोड़कर उनकी जड़ मूर्ति को बन्दगा करने की खेवड़ मुखता करें । खनएवं यहां खरिहंत कीत्या यरिहंत के साधु ही समभना उपयुक्त श्रीर प्रकरण संगती यदि अर्दित चीत्य शब्द से अरिइंत की मूर्ति ऐसा अर्थ माना जाय को प्रन्य तीथीं के ब्रह्म कर लेने मात्र से व मृति अवन्दनीय कैसे हो सकती है ? यह तो वड़ी प्रसन्न र्श यात होनी चाहिए कि-तीर्थकर मूर्ति को अन्य तीर्थी में माने और वर्द पुजे ! हां यदि साधु श्रन्य तीथीं में मिल उनके मतावलस्वी दो जाय तब वो तो अवन्दनीय हो सक है, हिन्तु मूर्ति क्यों ? उसमें कीनसा परिवर्तन हुआ ? उस दीन में गुण होड़ कर दोप प्रहण कर लिये ? यह बहुत क मानी गई ? इत्यादि विषयों पर विचार करते यही भी होता है कि--यहां श्रानिहेत चीत्य का मूर्ति अथे असी

都養日

५—''चाररा मुनिः'

परन-जंध चारण विद्याचारण मुनियों ने मूर्ति वांदी है, यह भगवती सूत्र का कथन तो श्रापको मान्य है न ?

उत्तर-तुम्हारा यह कथन भी ठीक नहीं, कारण भग-वती सूत्र में चारण मुनियों ने मूर्ति को वन्दना की ऐसा कथन ही नहीं है, वहां तो श्री गौतमस्वामी ने चारण मुनि-यों की ऊर्च अधोदिशा में गमन करने की जितनी शिवत है ऐसा प्रश्न किया है, जिसके उत्तर में प्रभु ने यह वतलाया है कि—यदि चारण सुनि ऊर्ज्जीदि दिशा में जावें तो इतनी दूर ज्ञा सकते हैं उसमें 'चेश्याई वन्दर' जैत्य वन्दन् यह शब्द त्राया है जिसका मतलव स्तुति होता है, श्रापकेविजयानन्द जी ने भी परोत्त बन्दन (स्तुति) को जैत्य बन्दन कहा है तो यहां परीक्त बन्दन मानने में आपत्ति ही क्या है ? इसके सिवाय यिव इस प्रकार कोई मुनि जावे और उसकी आला-वना नहीं करे तो वह विराधक भी तो कहा गया है ? यह न्या वता रहा है ! आप यहां ईयिपियेकी की आलोचना नहीं सममें, वहां तस्त ठाणस्स'कहकर उस स्थान की यालो-चना लेना कहा है, इससे तो यह कार्य ही अनुगारेय सिन्द होता है फिर इसमें अधिक विचार की वात ही क्या है

^६—'चमरेन्द्र'

धरन-चमरेन्द्र जिन मृति का शरण लेकर स्वर्ग है गया, यह भगवती सूत्र का कथन भी श्रापको मान्य नहीं है क्या ?

उत्तर-भगवती स्य में चमरेन्द्र मृति का शरण लेकर समें में गया ऐसा जिसा यह कथन ही श्रसत्य है, वहीं स्यष्ट वताया गया है कि-चमरेन्द्र छदमस्थावस्था में खे दुर श्री वीर प्रमुका ग्ररण लेकर ही प्रथम स्वर्गमें गया था, श्चनएव परन का श्रायय ही ठीक नहीं है। लेकिन कितने ही मूर्ति पूजर बन्यु यहां पर सफेन्ट्र के विचार करने के प्रसंग का पाठ प्रमाल क्य देकर मूर्ति का शरण जैना बताते हैं उन पाड में यह बताया गया है कि-शकेन्द्र ने विचार किया कि चनरेन्द्र सोचमें स्वर्ग में श्राया किस श्राश्रय से ? इस पर विचार दस्ते करने २ उसने तीन शरण जाने, तद्यया— 'बारिहंत, बारिहंत चैत्य, मावितातमा ब्रणुगार', इन वीन रहलों में मू० पू० यन्यु 'यदित चेत्य' राज्य से मूर्ति यर्थ

तेत्र है दिन्तु यह योग्य नहीं है। क्योंकि श्ररिहन्त रुष्ट् से

(35) केवलज्ञान।दि भावगुण्युक्त श्रारिहन्त श्रीर श्रारिहन्त चैत्य से छद्मस्थ अवस्था में रहे हुए द्रव्य श्रारहन्त अर्थ होना चाहिसे यहां यही श्रर्थ प्रकरण संगत इसलिए हैं कि-चमरेन्द्र छुद्-मस्थ महावीर प्रभुका ही शरण लेकर गया था, श्रीर इसी लिए यह दूसरा अरिहन्त चैत्य शब्द लेना पड़ा। यदि अरि-हन्त चेत्य से मूर्ति अर्थ करे। गे ती चमरेन्द्र पास ही प्रथम स्वर्ग की मूर्तियां छोड़कर व अपने जीवन के। संकट में डाल कर इतनी दूर तिरछे लोक में क्यों आता ? वहां तो यह भयाकुल वना हुआ था इसलिए समीप के आथय को छोड़ कर इतनी दूर आने की जरूरत नहीं थी, किन्तु अब मूर्ति का शरण ही नहीं तो क्या करें ? चार मांगलिक चार उत्तम शरणों में भी मूर्ति का कोई शरणा नहीं है, फिर यह न्यर्थ का लिखांत कहां से निकाला गया ? जब कि मूर्ति स्वयं दूसरे के आश्रय में रही हुई है। श्रीर उसकी खुद की रचा भी रूसरे द्वारा दोती है, फिर भी मौका पाकर श्राततायी लोग र्ह्ति का श्रातिष्ट कर डालते हैं तो फिर ऐसी जड़ मूर्ति दूसरों ां लिए क्या शरस भूत होगी ?

आरचर्य दोता है कि—ये लोग खाली शब्दों की जींच तान करके ही अपना पत्त दूसरों के सिर लादने की केाशिप करते हें और यही इनकी असत्यता का प्रधान लत्त्रण है, इस प्रकार किसी धार्मिक व सर्वमान्य, आप्तकधित कहे जाने बाले सिद्धांत की सिद्धि नहीं हो सकती, उसके लिए तो आप्तकधित विधि विधान ही होना चाहिये।

रे—'चमरेन्द्र'

भरन-चमरेन्द्र जिन मूर्ति का शरण लेकर स्वर्ग निया, यह भगवती सूत्र का कथन भी श्रापको मान्य नहीं है

उत्तर-भगवती स्त्र में चमरेन्द्र मृति का शरण लेकर स्वर्ग में गया ऐसा जिला यह कथन ही श्रसत्य है, वहां स्पष्ट बताया गया है कि—चमरेन्द्र छदमस्थावस्था में रहे हुए श्री बीर प्रभु का शरण जेकर ही प्रथम स्वर्ग में गया था, श्रत्य प्रश्न का श्राश्य ही ठीक नहीं है। जेकिन कितने ही

मृति प्रक्र वन्धु यहां पर सकेन्द्र के विचार करने के प्रसंग का पाठ प्रमाण कप देकर मृति का शरण लेना वताते हैं उम पाठ में पर वताया गया है कि-शकेन्द्र ने विचार किया कि चमरेन्द्र सीचमें स्वर्ग में श्राया किस शाश्य से ? इस पर विचार करते करते २ उसने तीन शरण जाने, तदाथा—

'श्रिटिहंत, श्रिटिहंत चेत्य, मायितात्मा श्रणगार', इन तीन यरणों में मू० प्० वन्यु 'श्रिटिहंत चेत्य' शब्द से मृति श्रथं सेत्रे हैं किन्तु यह योग्य नहीं है। क्योंकि श्रिटिहन्त शब्द से

केवलज्ञान।दि भावगुण्युक्त श्ररिहन्त श्रीर श्ररिहन्त चैत्य से छद्मस्थ श्रवस्था में रहे हुए द्रव्य श्ररिहन्त श्रर्थ होना चाहिये यहां यही श्रर्थ प्रकरण संगत इसलिए हैं कि-चमरेन्द्र छुद-मस्थ महावीर प्रभु का ही शरण लेकर गया था, श्रीर इसी लिए यह दूसरा श्ररिहन्त चैत्य शब्द लेना पड़ा। यदि श्ररि-इन्त चैत्य से मूर्ति श्रर्थ करे।गे ती चमरेन्द्र पास ही प्रथम स्वर्ग की मूर्तियां छोड़कर व श्वपने जीवन का संकट में डाल कर इतनी दूर तिरछे लोक में क्यों आता ? वहां तो यह भयाकुल वना हुआ था इसलिए समीप के आथय को छोड़ कर इतनी दूर श्राने की जरूरत नहीं थी, किन्तु अब मूर्ति का शरण ही नहीं तो क्या करें ? चार मांगलिक चार उत्तम शरणों में भी मृति का केाई शरणा नहीं है, फिर यह ब्यर्ध का सिद्धांत कहां से निकाला गया ? जय कि मूर्ति स्वयं दूसरे के आश्रय में रही हुई है। और उसकी खुद की रज्ञा भी दूसरे द्वारा होती है, फिर भी मौका पाकर श्राततायी लोग मूर्ति का श्रनिष्ट कर डालते हैं तो फिर ऐसी जड़ मूर्ति दूसरों के लिए क्या शरण भूत होगी?

आश्चर्य होता है कि—ये लोग खाली शब्दों की खींच-तान करके ही अपना पत्त दूसरों के सिर लादने की केाशिप करते हैं और यही इनकी असत्यता का प्रधान तत्त्वण है, इस प्रकार किसी धार्मिक व सर्वमान्य, आतक्षित कहे जाने वाले सिद्धांत की सिद्धि नहीं हो सकती, उसके लिए तो आतक्षित विधि विधान ही होना चाहिये।

हे—'चमरेन्द्रः

प्रश्न-चमरेन्द्र जिन मृति का शरण लेकर स्वर्ग निया, यह भगवती सूत्र का कथन भी श्रापको मान्य नहीं है

उत्तर-भगवती सूत्र में चमरेन्द्र मृर्ति का शरण लेकर स्वर्ग में गया ऐसा लिखा यह कथन ही असत्य है, वहीं स्वष्ट बताया गया है कि—चमरेन्द्र छदमस्थावस्था में रहें हुए श्री बीर बसु का शरण लेकर ही प्रथम स्वर्ग में गया था, अत्वय्व प्रश्त का आशय ही ठीक नहीं है। लेकिन कितने हैं मृर्ति पूजक बन्धु यहां पर सकेन्द्र के विचार करने के प्रसंग का पाठ प्रमाण क्य देकर मृर्ति का शरण लेना बताते हैं उस

पाट में यद बताया गया है कि-गुकेन्द्र ने विचार किया कि चमरेन्द्र सीचमें स्वर्ग में त्राया किस त्राश्रय से ? इस पर विचार करते करते २ उसने तीन शरण जाने, तद्यथा—

'श्रित्हित, श्रीरहित चेत्य, मायितातमा श्रणगार', इन तीर शरणों में मू० प्० यन्यु 'श्रीरहित चेत्य' शब्द से मृति श्रथ होते हैं हिन्तु यह योग्य नहीं है। क्योंकि श्रीरहन्त शब्द से केवलज्ञानादि भावगुण्युक्त श्ररिहन्त श्रीर श्ररिहन्त चेत्य से लुदमस्थ अवस्था में रहे हुए द्रव्य अरिहन्त अर्थ होता चाहिये यहां यही अर्थ प्रकरण संगत इसलिए हैं कि-चमरेन्द्र छद मस्थ महावीर प्रसु का ही शरण लेकर गया था, श्रीर इसी लिए यह दूसरा अरिहन्त चेत्य शब्द लेना पड़ा। यदि अरि-हन्त चेत्य से मुर्ति अर्था करे। गे ती चमरेन्द्र पास ही प्रधम स्वर्ग की मूर्तियां छोड़कर व श्वपने जीवन का संकट में डाल कर इतनी दूर तिरहे लोक में क्यों आता ? वहां तो यह भय।कुल बना हुआ था इसलिए समीप के आथय को छोड़ कर इतनी दूर आने की जरूरत नहीं थी, किन्तु अब मूर्ति का शरण ही नहीं तो पया करें ? चार मांगलिक चार उत्तम शरणों में भी मूर्ति का के।ई शरणा नहीं है, फिर यह ज्यर्थ ा सिखांत कहां से निकाला गया ? जब कि मूर्ति स्वयं दूसरे ह आअय में रही हुई है। और उसकी खुद की रूवा भी दूसरे द्वारा होती है, किर भी मौका पाकर आततायी लोग मूर्ति का अतिए कर डालते हैं तो फिर ऐसी जड़ मूर्ति दूसरों के लिए क्या शरण भूत होगी ?

आश्वर्य होता है कि —ये लोग खाली शब्दों की खींच. तान करके ही अपना पत्त दूसरों के सिर लादने की काशिप करते हैं और यही इनकी असत्यता का प्रधान तक्षण है, इस प्रकार किसी धार्भिक व सर्वमान्य, आप्तकथित कहे जाने वाले सिद्धांत की सिद्धि नहीं हो सकती, उसके लिए तो आप्तकथित विधि विधान ही होना चाहिये।

25-41

री—'चमरेन्द्रं'

शरन-चमरेन्द्र जिन मृति का शरण लेकर स्वर्ग में गया, यह भगवती सूत्र का कथन भी श्रापको मान्य नहीं है क्या ?

उत्तर-भगवती स्त्र में चमरेन्द्र मृतिका शरण लेकर स्वा में गया ऐसा जिला यह कथन ही श्रसत्य है, वह स्वाप्ट बताया गया है कि-चमरेन्द्र छदमस्थायस्था में एर हुए श्री बीर वसु का शरण जेकर ही प्रथम स्वामें गया था, श्रत्य वश्त का श्राशय ही ठीक नहीं है। जेकिन कितने हैं मृति युक्तक बन्धु यहां पर सकेन्द्र के विचार करने के प्रसंग का पाट प्रमाण रूप देकर मृति का शरण जेना बताते हैं उस पाट में यह बताया गया है कि-शकेन्द्र ने विचार किया कि

चमरेन्द्र मीचमे स्वर्ग में श्राया किस श्राध्य से ? इस पर विचार करते करते २ उसने तीन शरण जाने, तद्यथा— 'श्रीरद्धेत, श्रीरद्धेत चैत्य, मावितातमा श्रणगार', इन तीन सर्गों में मू० पू० वन्यु 'श्रीरद्धेत चैत्य' शब्द से मृति अर्थ जैते हैं दिन्तु यह योग्य नहीं है। क्योंकि श्रीरहन्त शब्द से केवलज्ञान।दि भावगुण्युक्त श्ररिहन्त श्रीर श्ररिहन्त चैत्य से छुदमस्थ श्रवस्था में रहे हुए द्रव्य श्ररिहन्त श्रर्थ होना चाहिये यहां यही श्रर्थ प्रकरण संगत इसलिए हैं कि-चमरेन्द्र छद-मस्थ महावीर प्रभु का ही शरण लेकर गया था, श्रीर इसी लिए यह दूसरा श्ररिहन्त चैत्य शब्द लेना पड़ा। यदि श्ररि-इन्त चैत्य से मूर्ति अर्थ करे। गे ती चमरेन्द्र पास ही प्रथम स्वर्ग की मूर्तियां छोड़कर व श्वपने जीवन का संकट में डाल कर इतनी टूर तिरछे लोक में क्यों आता ? वहां तो यह भयाकुल वना हुआ था इसलिए समीप के आथय को छोड़ कर इतनी दूर श्राने की जरूरत नहीं थी, किन्तु अब मूर्ति का शरण ही नहीं तो क्या करें ? चार मांगलिक चार उत्तम शरणों में भी मृति का कोई शरणा नहीं है, फिर यह व्यर्थ का सिद्धांत कहां से निकाला गया ? जब कि मूर्ति स्वयं दूसरे के आश्रय में रही हुई है। श्रौर उसकी खुद की रत्ता भी दूसरे द्वारा होती है, फिर भी मौका पाकर त्याततायी लोग मूर्ति का श्रनिष्ट कर डालते हैं तो फिर ऐसी जड़ मूर्ति दूसरों के लिए क्या शरण भूत होगी ?

आश्चर्य होता है कि—ये लोग खाली शब्दों की खींच-तान करके ही अपना पत्त दूसरों के सिर लादने की के।शिप करते हैं और यही इनकी असत्यता का प्रधान लच्च है, इस प्रकार किसी धार्भिक व सर्वमान्य, आतक्षित कहे जाने वाले सिद्धांत की सिद्धि नहीं हो सकती, उसके लिए तो आतक्षित विधि विधान ही होना चाहिये।

७—तुगिया के श्रावक

परन-भगवती सूत्र में कहा गया है कि तुंगिया नाएं के धातकों ने जिन-मूर्ति-पूजा की है, इसके मानने में ना यात्रा है ?

उत्तर-उक्त कथन भी एकान्त श्रसत्य है, भगवती मं जन्त श्रावकों के वर्णन में मृति-पूजा का नाम निशान के नी नहीं है! किन्तु सिर्फ मृति-पूजक लोगों ने उस स्थत में श्राये हुए 'कयवित कम्मा' शब्द का श्रथं मृति पूजाकर एसा है यही तो श्रथेहैं, क्योंकि—यह शब्द जहां सार का संजय वर्णन किया गया है ऐसे जगह में श्रथं के श्रथं में श्राया है उसे धार्मिकता का की हमा निवान्त पत्तपात है श्रीर जहां स्नान का विस्तार गुरु हमा है । (रेखो उपवाद जंनुई। प्रधित में भी यह वित्तक में श्रथं का लिस्तार में भी यह वित्तक में श्रथं का लिस्तार में भी यह वित्तक में श्रथं का लिस्तार में की स्थान है अवस्थ हम स्थान है अवस्थ हम सुनि पूजा करना सिद्ध नहीं है अवस्थ हम सुनि पूजा करना सिद्ध नहीं है सहत्या

टीकाकार इस शब्द का 'गृहदेव पूजा' श्रथं करते हैं, यहां गृहदेव से मतलव गोत्र देवता है, श्रन्य नहीं। श्रीमद् रायचन्द्र जिनागम संग्रह में प्रकाशित भगवती सूत्र के प्रथम खंड में श्रज्ञवाद कर्ता एं० वेचरदासजी जो स्वयं मूर्ति-पूजक हैं इस शब्द का श्रथं 'गौत्रदेवी जुं पुजन करी' करते हैं (देखो पृष्ठ २७६) श्रीर इस खग्ड के शब्द कोय में भी इस शब्द का श्रथं 'गृह गौत्र देवी जुं पूजन' ऐसा किया है (देखो पृष्ठ २०६) श्रीर इस खग्ड के शब्द कोय में भी इस शब्द का श्रथं 'गृह गौत्र देवी जुं पूजन' ऐसा किया है (देखो पृष्ठ ३८३ की दूसरी कालम) इस पर से सिद्ध हुआ है कि मूर्ति-पूजक विद्वान यद्यपि वित्तकर्म का श्रथं 'गृहदेवी की पूजा' करते हैं तो भी तीर्थंकर मूर्ति पूजा ऐसा श्रथं करनातो उन्हें भी मान्य नहीं है।

इस विषय में मृर्ति-पूजक श्राचार्य विजयानन्द स्रिशादि ऐसी कुतर्क करते हैं कि-ने श्रावक देवादि की सहायता चाह ने वाले नहीं थे, इसलिए यहां 'गृहदेव पूजा' से मतलव घरमें रहे हुए तीर्थं कर मन्दिर । घर देरासर) से हैं, क्यों कि वे तीर्थं कर सिवाय श्रन्य देव का पूजन नहीं करते थे किन्तु यह तर्क भी श्रसत्य है । क्यों कि भगवती सूत्र में इन श्रावकों के विषय में यह कहा गया है कि जिनको निर्यंथ प्रचचन से डिगाने में देव दानव भी समर्थ नहीं थे, श्रापत्ति के समय किसी भी देवता की सहाय नहीं इच्छुकर स्वकृत कर्म फल के ही कारण समभते थे, किन्तु इससे यह नहीं समभ लेना कि वे धायक लौकिक कार्यं के लिये कुल परम्परानुसार लौकिक देवों को नहीं पूजते थे, प्योंकि वे भी संसार में वेठे थे, श्रतप्व सांसारिक श्रीर कुल परंपरागत रिगाजों का पालन करते थे । प्रमाण के लिये देखिये—

- (१) भरतेश्वर चक्रवर्ती सम्राट ने, चकरत्न, गुक्ता, श्रादि की पूजा की लीकिक देवों के श्राराधना के लिये किया। (जंबुद्वीप प्रवृत्ति)
- (२) शांति आदि तीन तीर्थं करों ने भी चक्रवर्ती असर में भरतेश्वर की तरह चक्रस्तादि लौकिक देवों की पूजा थी। (विशव्ध शखाका पुरुत विश
- (३) घरदन्तक-श्रमणोपासक ने नायापूजन किया, है यसवाकुल दिये। (ज्ञाताधर्मकथा)
- (४) अनयकुमार ने घारिणी का दोहद पूर्ण करने । अप्रमनक तप कर देवाराधन किया। (ज्ञाताधर्मकथा)
- (2) कृष्ण वासुदेव ने श्रापने छोटे भाई के लिये श्रहन है पहर देवाराधन दिया। (श्रंतकत दर्शांग)
- (६) देमचन्द्राचाये ने पद्मनी रानी को नग्न रह कर उर्ष दे सामने विद्या सिद्ध की।(योगशास्त्र भाषान्तर प्रस्तावर्ष
- (३) नृति प्रक सन्वदाय के जिनद्त्त सूरि आहि आहे यों ने भी द्वी देवताओं का प्राराचन किया (सृति-पृत्रक्र)
- (न) मृति पुत्रक सायु अतिक्रमण में देवी देवताओं। मार्थना इसने हैं जो बत्यन है।

जब हि खुद सूर्ति पुत्रक सायु ही सुनि धमें से िं डोडर लोडिड देशाओं का शारायन श्रादि करते हैं लेखार में रहे हुए एडस्स आवक लोकिक कार्य और जार से जीडिक देशाओं हो पुत्रे इसमें प्रार्विय श्री वात है १ अतपच सिद्ध हुआ कि अमणोपासक वंशपरंपरा

नुसार लोकिक देवों का पूजन कर सकते हैं। ग्रगर इसको धर्म नहीं मानने की चुद्धि है तो इतने पर

श्रीर 'कयवालिक स्मा' शब्द का श्रर्थ एकान्त 'देव पूजा' से सम्यक्त्व चला नहीं जाता।

(क) प्रथम तो यह शब्द स्तान के विस्तार को संकोच भी तो नहीं हो सकता, क्योंकि

ृकर रक्खा गया है।

(ख दूसरा जाता धर्म कथांग के द वे शध्ययन में मिलन-। । य के स्तानाधिकार में भी यह शब्द आया है। इसितिये इसका देव पूजा अर्थ नहीं होकर स्नान विशेष ही हो सकता है। क्योंकि गृहस्थावस्था में रहे हुए तीर्थकर प्रमु भी चक ग्तीपन के सिवाय, माता पिता के श्रालावा श्रीर किसी को वन्दन, नमन, पूजा नहींकरते श्रतप्य यहां देवप्जा अर्थ नहीं होकर स्तान विशेष ही माना जायगा। इस तरह विले कर्म का अर्थ जिन मूर्ति प्जा मानना विलक्त अनुचित और

जो कार्य आश्रव वृद्धि का तथा मृहस्थों के करने का प्रमाण शुन्य दिखाता है। वितानुवाद का है उसमें धार्मिकता मान कर उसमें धार्मि क विधि कह डालने वाले वास्तव में अपनी क्ट नीति का

प्योंकि शावकी के धार्मिक जीवन का जहां वर्णन है वहां इसी भगवती सूत्र के तुंगिया के श्रावकीं के वर्णन में यह परिचय देते हैं।

_____ } फि—

- (१) भरतेश्वर चक्रवर्ती सम्राट ने, चक्ररत्न, गुफा, श्रादि की पूजा की लौकिक देवों के श्राराधना के लिये किया। (जंबुद्वीप प्रज्ञति)
- (२) शांति श्रादि तीन तीर्थंकरों ने भी चक्रवर्ती अवस् में भरतेश्वर की तरह चक्ररत्नादि लौकिक देवों की पूजा थी। (विशव्ध शताका पुरुष चीर
- (३) घरदन्नक-श्रमणोपासक ने नावा पूजत किया, श्री यलवाकुल दिये। (ज्ञाताधर्मकथा)
- (४) अनयकुमार ने घारिणी का दोहद पूर्ण करने व अप्रमनक तप कर देवाराधन किया। (बाताधर्मकथा)
- (४) छ प्ण वामुदेव ने अपने छोटे भाई के लिये अड्म र पकर देवाराचन किया। (श्रंतछत दशांग)
- (६) देमचन्द्राचार्य ने पद्मनी रानी को नग्न रख कर ग्रं के मानने विद्या सिद्ध की।(योगशास्त्र नापान्तर प्रस्ताक्त्री
- (२ नृति-पुतक सम्प्रदाय के जिनदत्त सृदि श्रादि श्राक्ष यों ने भी देवी देवताओं का श्राराधन किया (सृदि-पुतक्षंत्री
- (न) मृति पुत्रक लाखु मतिक्रमण में देवी देवता को है मार्थना करने हैं जो मन्यज्ञ है।

वर दि खुद मृति प्वक साधु ही मुनि धर्म से ें दो इन लोकिस देशताओं का प्राराधन श्रादि करते हैं है तंसार ने रहे हुए गुइस्य श्रावक लोकिक कार्य और वार से लेकिक देवताओं को पुत्र इसमें प्रार्थ्य की

८—चैत्य-शब्दार्थ



प्रश्न-चैत्य शब्द का श्रर्ध जित-मिन्दर श्रीर जित-प्रतिमा नहीं तो दूसरा क्या है ?

उत्तर-चैत्ये शब्द श्रनेकार्थ वाची है, प्रसंगोपात प्रकरणानुकूल ही इसका श्रर्थ किया जाता है, जिनागमों में चैत्य शब्द के निम्न श्रर्थ करने में आये हैं।

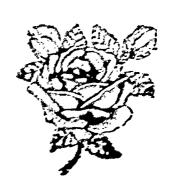
व्यंतरायतन, वाग, चिता पर वना हुआ स्मारक, साधु, जान, गति विशेष, वनाना, (चुनना) वृत्त, विशेष इत्यादि ।

(१) नगरी के वर्शन के साथ आये हुए चैत्य शब्द का अर्थ व्यंतरायतन होता है, स्वंय टीकाकार भी यही कहते हैं देखिये—

चेइएति चितेलेप्यादि चयनस्य भावः
कर्मवेति चैत्यं, संज्ञा शब्दत्वाद् देव विम्यं
तदाश्रयत्वात् तद्गृहमपि चैत्यं तच्चेह
च्यतरायतनम् नतुभगवता महितायतनम्

ंचे श्रावक जीवाजीव श्रादि नव पदार्थों के जानियंथ प्रवचन में श्रनुरक्त, दान के लिए खुले द्वार वाले के सएडार श्रीर श्रन्तः पुर में भी विश्वास पात्र हैं, जो श्री स्व पुलात प्रत्याख्यान श्रादि का पटन करते थे श्रष्टमी, चतुर्व पृणिमा, श्रमावश्या के। पौपधोपवास करने वाले साधु सार्व ग्री के। दान देने वाले श्रंका कांचादि दोप रहित, व मृत्र प्रवासकार ऐसे श्रनेक ग्रुण वाले थे, उन्होंने स्थविर भावन से तप संयम श्रादि विषयों पर प्रश्नो चरकीये थे, इत्यादि

जबिक-श्रावकों के धर्म कत्त्वयों के वर्णन करने में मूँ
पूजा की गंध भी नहीं है, तो फिर स्नान करने के स्नाता में मूर्ति पूजा का क्या सम्बन्ध ? श्रतपत्व 'कयबलिकमा' जिन मूर्ति पूजने का मन कल्पित श्रर्थ करके उन मानती श्रावकों को मूर्ति पूजक टहराने की मिथ्या कोशिए न्या संगत नहीं है। ऐसी निर्जीय दलीलों में तो मूर्ति-पूजा इ सिद्धांत एकदम लचर श्रीर पाखगुड युक्त सिद्ध होता है।



८—चैत्य-शब्दार्थं

परन-चैत्य शब्द का श्रर्थ जिन-मन्दिर श्रीर जिन-नितमा नहीं तो दूसरा क्या है ?

उत्तर-वैत्य शब्द अनेकार्थ वाची है, प्रसंगोपात प्रकरणानुकूल ही इसका अर्थ किया जाता है, जिनागमों में चैत्य शब्द के निम्न अर्थ करने में आये हैं।

व्यंतरायतन, वाग, चिता पर वना हुआ स्मारक, साधु, वान, गति विशेष, वनाना, (जुनना) वृत्त, विशेष इत्यादि ।

(१) नगरी के वर्णन के साथ आये हुए चैत्य शब्द का अर्थ व्यंतरायतन दोता है, स्वंय टीकाकार भी यद्दी कहते हें देखिये—

चेइएति चितेलेप्यादि चयनस्य भावः कर्मवेति चैत्यं, संज्ञा शन्दत्वाद् देव विस्थ तदाश्रयत्वात् तद्गृहमपि चैत्यं तज्वेह न्यतरायतनम् नतुभगवता महितायतनम्

इसके सिवाय—

रुक्खंवा चेइश्रकडं, थुवंवाचेइश्रकडं, (श्राचा

(२) वाग-श्रर्थ में भगवती उत्तराध्ययनादि में प्रा जैसे 'पुष्फवत्तिए चेइए' मंडिकुच्छंसि चेइए श्रीर मूर्तिः वीर पुत्र श्री श्रानन्द सागरजी ने श्रपने श्रमुवाद किये 'श्रमुत्तरोपपातिकदशा' 'विपाक सूत्र' में नगरी के

आये हुए सभी चेत्य शब्ददों का अर्थ 'उपवन' किया है वाग के ही श्रर्थ को बताने वाला है। (३) चिता पर वने हुए स्मारक इस श्रर्थ के चेर्य ग

सुवा' त्रादि है।

श्राचारांग श्रीर प्रश्न व्याकरण में श्राते हैं, जैसे 'मडग्वें। (४) चेर्य राष्ट्र का साधु श्रर्थ उपासक दशांग व मार्थ ती में तिया है , श्रीर श्रमयदेव सूरि ने भी स्थानांग ही

की दीका में चेत्य शब्द का श्रर्थ साधु इस प्रकार किया है चैत्यमिवजिनादि प्रतिमेव चैत्यं अमणं

श्रीर गुहद्कला भाष्य बहुशा ६ में श्राहा श्रावाय वर्ने गाथा की व्यास्था में तम की तिम्हि लिखते हैं कि 'वैयोह गिरस्य' यथांत् सामु को उद्देश कर बनाया हुआ श्राहार

इसके विचाय दिगास्यर सम्प्रदाय के पहुणाहुद प्रंथ मा यदी अये दिया है। देखिये

वृद्धतं भोहंती अन्यामां येड्याइँ श्रमणंच। वंच महरवय गुर्वे, णाणमयं जाणचेदिहरं॥ = ।

बोक्लं, दुक्लं, सुक्लंच श्राप्यंतरा मात हुक्काय हिचँ भणियं॥६॥



विजयानन्द स्रिजी सम्यक्त शस्योद्धार हिंदी श्रार्शि ४ पृष्ठ २७४ में चैत्य शब्द का अर्थ करते हैं कि—

'जिन मंदिर, जिन-प्रतिमा को चैत्य कहते हैं श्रीर बॉर्स वंद रुच का नाम चैत्य कहा है इसके उपरान्त श्रीर किली यस्तु का नाम चैत्य नहीं कहा है।

इस प्रकार मनमाने श्रर्थ कर डालना उक्त प्रमाणों के सा मने कोई महत्व नहीं रखता क्योंकि इन तीन के सिवार श्रन्य श्रर्थ नहीं होने में कोई प्रमाण नहीं है। जब श्री बिक्त पानन्दर्जी चेत्य के तीन श्रर्थ करते हैं तो इनके शिष्य मही रूप शांति विजयत्री जिनके लम्बे चीड़े टाईटल इस प्रशां

जनाव, फेजमान, मग्जनेइएम, जैन स्वेतास्वर धर्मांतरेष्ठ विद्यालागर, स्यायरत्न, महाराज शांतिविज्ञयजी अपने गुरू से दो कदम आगे वह कर अपने गुरू के वताय हुए तीन अभी में से एक को उड़ा कर केवल दो ही अर्थ करते हैं बे स्थार दें।

देश महार है।

चित्य ग्रन्थ के मायने जिन-मन्दिर और जिन-मृति यह रें होने हैं, हिसे ज्यादे नहीं? जिन मत पताका पु० ७४ तं० ही हैं। हिम मत पताका पु० ७४ तं० ही हैं। हैं। मन पताका पु० ७४ तं० ही हैं। हैं। मन पताका रो पदां ग्रंद यह को होती है। इंटायह हैं हो होने सम्बद्ध हो देश होना सम्बद्ध हों। इस महान्य हो महान्य हो महान्य पहाला होती हैं। यह साम पहाला पता है यहां प्रविक्ति का पता है कि व्या देश के कारण भने दी महरता है कि यह होते। यह महानुभावों से कहता है कि

** 4

कृपया तस्व निर्णय में तो हठ के। छोड़ दीजिये, और फि निस्न प्रमाण देखिये ज्ञापके ही मान्य प्रनथकार आपकी द श्रीर तीन ही मनमाने अर्थ मानकर श्रन्य का लोप करने की ष्ट्रित के। असत्य प्रमाणित कर रहे हैं—

खेमविजयजी गणि कल्पसूत्र पृ. १६० पंक्तिह में 'वेयावत्त-स्त चेइयस्त' का अर्थ व्यंतर्चुं मन्दिर लिखते हैं, यहां आपके किये अर्थों से यह अधिक अर्थ कहां से आगया?

्यदि श्राप लोग चैत्य शब्द से जिन मन्दिर श्रौर जिन मूर्ति ही अर्थ इत्ते हैं तो समवायांग में दुःख विपाक की नोंघ लोते हुए वताया गया है कि—

दुह विवागाएां ग्एगराई उज्जाग्एाई चेईयाई।

भ्या इस मुल पाठ में आये हुए चैत्य शब्द का भी जिन-मन्दिर या जिन मुर्ति अर्थ करेंगे ! नहीं वहां तो आप अन्य मन्दिर ही अर्थ करेंगे, क्योंकि—यदि वहां आपने उन दुखा-तिविपाकों (अनार्थ, पापी, मलेच्छु, श्रीर हिंसकों) के भी जिन मंदिर होना मान जिया तव तो इन जिन मंदिरों का कोई महत्व ही नहीं रहेगा श्रीर मिथ्यात्वी सम्यक्ती का भी मेद नहीं रहेगा, इसितिये वहां तो आप चट से ब्यंतर का मंदिर ही अर्थ करेंने, इससे आएके विजयानन्दजी के माने हुए तीन ही अथीं के सिवाय अन्य चौथा अर्थ भी सिद्ध हुआ। आपके ही 'मूर्ति-मएडन प्रश्नोत्तर'के लेखक पृ० २८२ में परन ब्याकरण के आध्व द्वार में आये हुए चैत्य शब्द का अर्थ (जोकि मनो कल्पित है) इस प्रकार करते हैं कि-

(40)

⁽कोना चैत्य तो के कसाइ, वाघरी, मांछुला पहऱ नार, महाकर कर्मी करनार, इत्यादि घणा मलेन्छ जाति ते सर्वे यवन लोक देवल प्रतिमा वास्ते जीवों ने हणे श्राश्रव द्वार छे। और इसी पृष्ठ पंक्ति १ में--'ते ठेकामी आश्रव द्वार मां तो मलेच्छोंना चेत 'मसिदो' ने गणायेल छे इससे भी चैत्य राव्द का अन्य मंदिर और मस्जिद अध सिद्ध दुश्रा। श्रय बुद्धिमान स्वयं विचार करें कि कहां ते केवल मनःकित्यत दो श्रीर तीन ही श्रथी मानकर वाकी के बिए ग्रन्थ टोक देना, श्रार कहां इन्हीं के मतानुपाइयों दे माने दुए श्रन्य श्रथी बार टीकाकारों तथा सुत्रकारों के श्रथ जो ऊपर बताये गये हैं, क्या श्रव भी इडचर्मीपने में की कुछ बेनेतर विद्वानों के श्रथी भी देखिये— (क) गुव्द स्तोम महानिधि कोप में— यानादि विविद्वे महावृत्ते, देवावासे जनानां, समास्व-वरो, वृद्ध मेरे, यायतने, चिता चिन्हे, जनसमायां, शतः ध्याने, जनानां विश्वाम स्थाने, देवस्थानेच, । (ब) दिनी यन्दायी पारिज्ञान (कोप) में— (पृष्ठ २४२) देवायतन, ममनिद, पित्री, चिता गामका प्रयवृत नकान, यनमाला, विलीकुव, बीद मन्यामी, बीदी हा

(48)

(ग) भागवत पुराण स्कन्ध ३ श्रध्याय २६ में--'महंकार स्तनो रुद्धाइचत्तं चैत्य स्तनोऽमवत्'

अर्थात्— श्रहंकार से रूद्र, रूद्र से चित्त, चित्त से चैत्य त्रथति—श्रात्मा हुत्रा ।

चैत्य शब्द का मंदिर व मूर्ति यह अर्थ पाचीन नहीं किंतु आधुनिक समय का है, ऐसा मूर्ति पूजक विद्वान पं० बेचरदासजी ने अनेक प्रवल प्रमाणों से सिख किया है। ('देखो जैन साहित्यमां विकार थवाथी थयेली हानी' नामक निवन्ध) ये लोग कव से श्रीर किस प्रकार मूर्ति अर्थ करने लगे हैं यह भी पिएडतजी ने स्पष्ट कर दिया है, इस निवन्ध को सम्यक प्रकार से पढ़कर अपने हठ के। छोजना चाहिये। श्रीर यह पका निश्वय कर लेना चाहिये कि-धार्मिक विधि का विधान किसी के कथानक या शब्दों की छोर से नहीं किया जाता किन्तु खास शब्दों में किया जाता है।

इत्यादि प्रमाणों पर से हम इन मूर्ति-पूजक वन्धुत्रों से यही कहते हैं कि - रूपया अभिनिवेश के। छोड़कर शुद्ध इदय से विचार करें और सत्य अर्थ के। प्रहण कर अपना



९-त्र्यावश्यक निर्युक्तित, स्रोर भरतेख

परन-श्रावश्यक निर्युक्ति में लिखा है कि चक्रवर्ती भरतेश्वर ने अष्टापद पर्वत पर चौवीस तीर्थंकरों के मित्र यना कर मूर्ति में स्थापित की इस प्रकार थेणिक श्रादिश्रम आवकों ने भी मिन्दर बना कर मूर्ति-पूजा की है इसे श्राव क्यों नहीं मानते? क्या इसी कारण से श्राप देर सूत्र के िं वाय श्रम्य सूत्रों श्रीर मूल के सिवाय टीका निर्युक्ति श्रार की नहीं मानते हैं?

उत्तर-महाराय? क्या त्राप इसी वल पर मूर्ति पूजा को धर्म का त्रंग त्रीर प्रभु त्राज्ञा युक्त मानते हें? क्या त्राप इसी को प्रमाण कहते हें? त्रापका यह प्रमाण ही प्रमाणि करता है कि मूर्ति पूजा धर्म का त्रंग त्रीर प्रभु त्राज्ञा युक्त को माय दी कहते हैं, वास्तव में तो है त्रापम प्रमाणका दीवाला दी।

दम याप से सानुनय यह पृष्ठते हैं कि श्रापका श्रीर निर्युक्तिकार का यह कथन श्रावश्यक के किस मुल पाउँ

मू० पू० का यह पाठ होने से ही ३२ सूत्रों के क्षिय प्रंथ आदि भी हमको मान्य नहीं ऐसी आपकी शंका भीठी नहीं है। श्रापको स्मरण रहे कि ३२ सूत्रों के सिवाय जो सूत्र, त्रथ, टीका, निर्युक्तित, चुणि, भाष्य, दीपिका, बन चूरि श्रादि वीतराग वचनों को श्रवाधक हो तथा श्रागम त्राराय को पुष्ट करने वाले हों तो हमें उनकी मानने में की याचा नहीं है । किन्तु जो श्रंश सर्वज्ञ वचनों को वावक ग्रीए बनावटी या मित्तित होकर श्रागम वाणी को उँस पहुंचान वाला हो वह श्रनर्थीत्पादक होने से हमें तो क्या पर किसी मी बिज के मानने योग्य नहीं है। इन टीका आदि प्रंथीं में कई स्थान पर भागयाशय रहित भी विवेचन या कथन ही गया है, इसी लिये ये श्रंथ सम्पूर्ण श्रंश में मान्य नहीं है, दोका आदि के बहाने से स्वार्थी लोगों ने बहुत कुछ गोडाला कर उाला है। जिनको कसोटी पर कसने से शीव ही कलाई पुच जाती है, अतएव ऐसे याचक श्रंश तो श्रवश्य श्रमाग 31

नेरा तो यह रह विश्वास है कि ऐसी विना सिर पैर ही
तात मृत निर्युन्तिकार की नहीं होगी, पीछे से किसी महा
रात मृत निर्युन्तिकार की नहीं होगी, पीछे से किसी महा
रात ने यह चतुराई (?) की होगी, ऐसे चतुर महाय्यों ने शुद्ध
रातों में तांचे की तरह मृत में भी वित्रहल वचन कुए पृत्व
विजान की चेट्या की हैं, जो व्यागे चल कर बताई जायगी।
विजान राजा का नित्य १०० स्वर्गा जो से पूजने का क
राज की उनी वकार निर्मृत होने से मिथ्या है, यदि तेखक
राज के बदले एक कोई बाद लाख भी लिख मारते तो उन्हें

यताये। १ नौकारसी प्रत्याख्यान स्वयं करें २ कपलार श्रपने हाथों से मुनि को दान देवे, कालसीरिक कर नित्य ४०० में से मारता है पक दिन के लिये भी हिंसा है वादे, ४ पूणिया श्रावक की एक सामायिय खरीद ले, इ प्रकार चार उपाय बताये, किन्तु इनमें मूर्ति-पूजा कर निवारण का कोई मार्ग नहीं बताया। क्या प्रभु को भी मूर्ण जा का मार्ग नहीं सूभा? वारहवां नहीं तो पहला खाँ सदी। इसे भी जाने दीजिये, पुनः मानव भव ही सदी। इति मी यदि हो सकता तो प्रभु श्रवश्य मूर्ति-पूजा का नाम इ चार उपायों में, या पृथक पांचवां उपाय ही वतलाकर स्वित करते किन्तु जब मूर्ति-पूजा उपादेय ही नहीं तो बतलां कहां से, श्रवएव स्पष्ट सिद्ध हो गया कि निर्मुक्ति के नाम से यह कथन केवल काव्यनिक ही है।

मनेशी राजा ने श्रापने भंयकरपापों का नाश केवल, द्या दान त्याम वैराग्य, तपरचर्या श्रादि द्वारा ही किया है, उसने भी श्रापने स्थमें ममन के लिये किसि मन्दिर का निर्माण नहीं क राया, न मूर्ति ही स्थापित की, न कभी पूजा श्रादि भी भी

छुमुख गाथापित केयल मुनिदान से ही मानवपव प्राप्त कर मोश माम के सम्मुख हुआ, मेघकुँवर ने दया से ही संसार परिमित कर दिया, रसी प्रकार मेताये मुनि, मेघरव राजा श्रादि के उदाहरण जगत प्रसिद्ध ही है, तपश्चर्या से व्याप्रणुगार श्रादि श्रानेक महान् श्रातमाश्रों ने सुगति लागे की है, यहां तक कि श्रानेक निरुपराच नरनारियों की राश्मी दिसा कर इलिने वाला श्रानुन माली भी केवल का माह में (५७)

ही उपार्जित पापीं का नाश कर मोच जैसे अलभ्य और शास्त्रत सुख के। प्राप्त कर जेता है, भव भयहारिए ग्रस भावना से भरतेश्वर सन्नाट ने सर्वज्ञता प्राप्त करली, ऐसे रमें के चार मुख्य एवं प्रधान श्रंगों का श्राराधन कर श्रनेक आतमाश्रों ने आतम कल्याण किया है किन्तु मूर्ति-प्जा से भी किसी की मुक्ति हुई हो ऐसा एक भी उदाहरण उभयमान्य साहित्य में नहीं मिलता, यदि कोई दावा रखता हो तो

इस स्वर्ण जो की कहानी से तो महानिशीध का फल विधान असत्य ही उहरता है, क्योंकि—महानिशीथकार तो सामान्य पूजा से भी स्वर्ग प्राप्ति का फल विधान करते हैं श्रीर स्वर्ण जी से नित्य पूजने वाला श्रेणिक राजा जाता है नर्क में, यह गड़बड़ाध्याय नहीं तो क्या है ? अतएव भरते वर और श्रेिषिक के मूर्ति-पूजन सम्बन्धी कल्पित कथानक का ममाण देने वाले वास्तव में अपने हाथों अपनी पोल खुली करते हैं, ऐसे प्रमाण फ़टी कोड़ी की भी कीमत नहीं रखते।



महानिशीथ के ऋशील नामक तीसरे श्रध्ययन में लिखा

ं द्रव्यस्तव जिन-पूजा आरंभिक है और भावस्तव (भानपूना) अनारंभिक है, भले ही मेरू पर्वेत समान र्द्धस्वर्थ प्राप्ताद बनावे, भले प्रतिमा बनावे, भले ही ध्वजा, कलश, दंड, घंटा, तीरण श्रादि बनावे, किन्तु ये मावस्तव मुनिवत के अनन्तवे भाग में भी नहीं आ सकते हैं। श्रागे चलकर लिखा है कि—

'जिन मन्दिर, जिन प्रतिमा स्रादि स्रारम्भिक कार्यो भावस्तव वाले मुनिराज खड़े भी नहीं रहे, यदि खड़े रहे वो अनंत संसारी वने।

पुनः स्राने लिखा है कि--

'जिसने समभाव से कल्याण के लिए दीना जी फिर धनित्रत छोड़कर न तो साधु में भीर न शावक में ऐसा उभय ऋष्ट नामधारी कहे कि मैं तो तीर्धकर भगवान की प्रतिमा की जल, चन्दन, अक्षत, घृष, दीष, फ़ल, नैवेद्य मादि से पूजा कर तीथों की स्थापना कर रहा हूँ तो ऐसा इने वाला अष्ट अम्ण कहलाता है, क्योंकिवह अनैतकाल त चतुर्गति रूप संसार में परिअपण करेगा'।

इतना कहने के परचात् पांचवें अध्ययन में लिखा है कि—



ं सब ग्रास्त्रों की टीका लिखी थी वो सबे विच्छेद होग

(३) महानिर्शीथ के विषय में मूर्ति मएडन प्रश्नोत्तर पृ रेन्ड में लिखा है कि—

ते सूत्र नो पाछलनो भाग लोप थई जवाधी पोताने जेट-लुं मली आन्युं तेटलुं जिनाज्ञा मुजय लखी दीधुं।

सिवाय इसके महानिशीथ की भाषा शैली व वीच में शाये हुए त्राचार्यों के नाम भी इसकी अर्वाचीनता सिद्ध क

इत्यादि पर से स्पष्ट होता है कि श्रागमविरुद्ध वीतराग ानों का वाधक श्रंश शुद्धि तथा पूर्ण करने के वहाने से या अपनी मान्यता रूप स्वार्थ पोपण की इच्छासे कई महा-बुमावों ने सूत्रों में घुलाकर वास्तविकता को विगाद डाला है, यही अधम कार्य आज भंयकर रूप धारण कर जैन समाज को छिन्न भिन्न कर विरोध कलह आदि का घर यना रहा

जव कि आगमों में मूर्ति पूजा करने का विधिविधान ताने वाली आप्त आज्ञा के लिये विन्दु विसर्ग तक भी नहीं तब ऐसे स्वाधियों के अपाटे में आये हुए प्रन्थों में फल विद्यान का उल्लेख मिले तो इससे सत्यान्वेपी श्रौर प्रायित्वः त जनता पर कोई असर नहीं हो सकता। किसी भी समाज को देखिय उनका जो भी धर्म रुत्य है वे सभी विधि रूप से वर्णन किये हुए मिलगे, जिस प्रवृत्ति का विधि वाक्य दीनहीं वह धर्म कैसा ? श्रीर उसके नहीं करने पर प्रायरिचत भी क्यों ?

ंसोचिये कि—एक राजा श्रपनी प्रजाको राजकीय नि तथा कायदे नहीं बताबे और उसके पालन करने की वि से भी श्रनभित्र रक्खे किर प्रजा को वैसा नियम पालन न करने के श्रपराध में कारावास में हूंस कर कठोर यातना रे तो यह कहां का न्याय है ? क्या ऐसे राजा को कोई न्या कड सकता है ? नहीं ! वस इसी प्रकार तीर्थंकर प्रभू मूर्ति पू करने की श्राज्ञा नहीं दे, श्रीर न विधि विधान ही बतावे किर भी नहीं पूजने पर दएड विधान करें ? यह हास्यासक

वात समभंदार तो कभी भी मान नहीं सकता। श्रतएव महाकरण के दिये हुए प्रमाण की करिएतता में

कोई संदेह नदीं, श्रीर इसीसे श्रमान्य है।

×

इस प्रकार हमारे मृति-पृत्तक वन्तु यो द्वारा दिये जाने वाने ज्ञामम प्रमाणीं पर विचार करने के पश्चात् इनकी पु

क्तियों की परीचा करने के पूर्व निवेदन किया जाता है कि-किसी भी वस्तु की सब्बी परीचा उसके परिणाम पर विचार करने से दी होती दें, जिल प्रदृत्ति से जन-समाज की दिन और उत्थान हो, यह तो श्रादरणीय है, श्रीर जोप्रवृति

विदिन, पतन वेसे ही दुःवदाना हो यह तत्काल त्यागरे वर्तेन विषय (मृति प्ता) पर विचार करने से यह

देवपदांत ही लिंद दीता है। आज यदि मृति-पूजा की भंग हरता पर्नाचार हिया जाय तो रोमांच हुए विना नहीं F. 711 ;

भावह विदेश समय में हेंग की प्रपार सम्पत्ति का हास रत मृतित्वा द्वारा हा हुआ है, मृति के प्राम्यण परिवर



े सोचिये कि—एक राजा श्रपनी प्रजाको राजकीय वि तथा कायदे नहीं बताबे और उसके पालन करने की वि से भी श्रनभिश रक्खे फिर प्रजा को वैसा नियम पालन गर करने के श्रपराध में कारावास में दूंस कर कठोर यातगारे तो यह कहां का न्याय है ? क्या ऐसे राजा को कोई न्या कह सकता है ? नहीं ! वस इसी प्रकार तीर्थंकर प्रभू मूर्ति पृत्र करने की श्राह्मा नहीं दे, श्रीर न विधि विधान ही बताबे फिर भी नहीं पूजने पर दएड विधान करें ? यह हास्यासाई वात समभादार तो कभी भी मान नहीं सकता।

अतपत्र महाकल्प के दिये हुए प्रमाण की कल्पितता में कोई संदेह नहीं, श्रीर इसीसे श्रमान्य है।

इस प्रकार हमारे मृति-पूजक वन्धु यो द्वारा दिये जाने वाले आसम ममाणों पर विचार करने के पश्चात् इनकी यु ितयों की परिचा करने के पूर्व नित्रेदन किया जाता है कि किसी भी वस्तु की सद्वी परीचा उसके परिणाम पर

विचार करने से बी होती हैं, जिस महत्ति से जन-समाज की ित और उत्थान हो, यह तो श्रादरणीय है, श्रीर जोप्रयृति प्रदित, पतन वसे वी दुःध्वताना ही वह तत्काल त्यागरे

महीत विषय (भृतिप्ता) पर विचार करने से यह हराय देल की लिंद की में हैं। आज यदि मृतिन्यूजा की संय हरता पर विचार हिया जाय तो रोमांच हुए विना नहीं * 411 ;

भा कहा विहार अन्य वे त्या की श्राम सम्मिन का द्वास हत वृतिक्षा हारा या द्वा है, वृति के बान्यम मन्दिर

निर्माण, प्रतिष्ठा, यात्रा संघ निकालना, ऋदि कार्यों में अर-वों रुपयों का व्यर्थ व्यय हुआ है और प्रति वर्ष लाखों का होता रहता है, ऐसे ही लाखों रुपये जैन समाज के इन म-न्दिर मूर्ति और पहाड़ आदि की आपसी लड़ाई में भी हर वर्ष स्वाहा हो रहे हैं। प्रति वर्ष साठ हजार रुपये तो श्रकेले पालीताने के पहाड़ के कर के ही देने पड़ते हैं, भाई भाई का दुश्मन वनता है, भाई भाई की खून खराबी कर डालता है, यहां तक कि इन मन्दिर मूर्तियों के अधिकार के लिये भाई ने भाई का रक्तपात भी करवा दिया है जिसके लिये केशरिया ्हत्याकांड का काला कलंक मू० पू० समाज पर श्रमिट रूप से लगा हुआ है। इन मन्दिरों श्रीर मृतियों के लिये इनके आगमोद्धारक आचार्य देवरफ्त से मन्दिर को घोकर पवित्र कर डालने की उपदेश घारा वहा कर जैनागम रहस्य ज्ञाता होने का नीत (१) परिचय देते हैं। ऐसी सुरत में येमन्दिर श्रीर मूर्तियं देश का क्या उत्थान श्रीर कल्याण करेंने ???

जहां देश के अगिएत वन्धु भूखे मरते हें श्रीर तड़फ २ कर श्रन श्रीर वस्त्र के लिये प्राण को देते हैं वहां इन रहर वीरों को लाखों रुपये खर्च कर संघ निकालने में ही श्रात्म कल्याण दिखाई देता है, यह कहां की बुद्धिमत्ता है?

इस देश में गुलामी का आगमन प्रायः मूर्ति पूजा की अधिकता से ही हुआ है और हुई है करोड़ों हरिजनों की पशु से भी वदतर दशा ? ऐसी स्थिति में यह मूर्ति पृजा त्यागने योग्य ही टहरती है।

कितने ही महानुभाव यह कहते हैं कि—हम मृति प्जा नहीं करते किन्तु मूर्ति द्वारा प्रभु प्जा करते हैं। किन्तु यह

सोचिये कि—एक राजा श्रपनी प्रजाको राजकीय नि तथा कायदे नहीं बताबे ख्रीर उसके पालन करने की वि से मा श्रनभिन रक्खे फिर प्रजा को वैसा नियम पालन ग करने के श्रवराध में कारावास में हूंस कर कठोर यातना है तो यह कहां का न्याय है ? क्या ऐसे राजा को कोई न्या कड सकता है ? नहीं ! वस इसी प्रकार तीर्थकर प्रभू मूर्ति गृ करने की श्राज्ञा नहीं दे, श्रोर न विधि विधान ही बतावे फिर भी नहीं पूजने पर दएड विधान करें ? यह हास्यास्य वात समसंदार तो कभी भी मान नहीं सकता।

अतएय महाकल्प के दिये हुए प्रमाण की कलितता ग

होडे संदेह नहीं, श्रीर इसीसे श्रमान्य है।

×

इस प्रकार हमारे मृति-पुजक बन्धु गों द्वारा दिये जाने वाले द्यागम प्रमाणां पर विचार करने के पश्चात् इनकी शु

िनतयों की परीक्षा करने के पूर्व नियेदन किया जाता है कि किसी भी वस्तु की सच्ची परीचा उसके परिणाम पर

विचार करने से दी होती है, जिस प्रवृत्ति से जन-समाज ही िन और उत्थान हो, बद्द नो आदरगीय है, और जोप्रवृति अदित, पतन वेसे ही दुःष्ट्रताता हो यह तत्काल त्यानी योग्य है।

वस्तुत विषय (मृति पुत्रा) पर विचार करने से यह र्ययद्भात ही भिन्न होती है। यात्र यदि पृतिन्तूना की मंग हरता पर विचार हिया आय तो रोमांच हुए विना नहीं * 5-11 1

वा बहा । इंड समय वे इंग की खपार सम्पत्ति का द्वास इल मूर्ति हुआ झारा हा हुआ है, मृति ह आस्पण मन्दिर

निर्माण, प्रतिष्ठा, यात्रा संघ निकालना, आदि कार्यों में अर-चों रुपयों का व्यर्थ व्यय हुआ है और प्रति वर्ष लाखों का होता रहता है, ऐसे ही लाखों रुपये जैन समाज के इन म-न्दिर मूर्ति श्रौर पहाड़ श्रादि की श्रापसी लड़ाई में भी हर वर्ष स्वाहा हो रहे हैं।प्रति वर्ष साठ हजार रुपये तो अकेले पालीताने के पहाड़ के कर के ही देने पड़ते हैं, भाई भाई का दुश्मन वनता है, भाई भाई की खून खरावी कर डालता है, यहां तक कि इन मन्दिर मूर्तियों के श्रधिकार के लिये भाई ने भाई का रक्तपात भी करवा दिया है जिसके लिये केशरिया हत्याकांड का काला कलंक मू० प्० समाज पर श्रमिट रूप ्से लगा दुश्रा है। इन मन्दिरों श्रीर मूर्तियों के लिये इनके श्रागमोद्धारक श्राचार्थ देवरक्त से मन्दिर को धोकर पवित्र कर डालने की उपदेश धारा वहां कर जैनागम रहस्य ज्ञाता होने का नीत (१) परिचय देते हैं। ऐसी सूरत में येमन्दिर श्रीर मूर्तियें देश का क्या उत्थान श्रीर कल्याण करेंगे ???

जहां देश के अगिषात वन्धु भूखे मरते हैं और तड़फ २ कर अन और वस्त्र के लिये प्राण खो देते हैं वहां इन गर वीरों को लाखों रुपये खर्च कर संघ निकालने में ही आतम करवाण दिखाई देता है, यह कहां की वुद्धिमत्ता है?

इस देश में गुलामी का आगमन प्रायः मृर्ति प्जा की श्र-धिकता से ही हुआ है और हुई है करोड़ों हरिजनों की पशु से भी बहतर दशा १ ऐसी स्थित में यह मृर्ति प्जा त्यागने योग्य ही ठहरती है।

कितने ही महानुभाव यह कहते हैं कि —हम मूर्ति प्जा नहीं करते किन्तु मूर्ति द्वारा प्रभु प्जा करते हैं। किन्तु यह

कथन भी सत्य से दूर है। वास्तव में तो ये लोग मूर्नि की पूजा करते हैं, श्रीर साथ ही करते हैं वैभव हा सह यदि आप देखेंगे तो माल्म होगा कि जहां मूर्ति के मु कुएडलादि श्राभूषण बहुमूल्य होंगे, जहां के मंदिर विक श्रीर भव्य महलों को भी मात करने वाले ढोंगे उड़ां। सजाई मनोहर श्रीर श्राकरीक होगी वहां दर्शन पूजन हा वाले श्रधिक संख्या में जायंगे, श्रथवा जहां के मंदिर ग्र के चमत्कार की भृंठी कथाणं श्रीर महातम्य श्रिधिक क सुके होंगे वहां के ही दर्शक पूजक श्रधिकाधिक मिलेंगेएं ही मंदिरों मूर्तियों की यात्रा के लिए लोग अधिक अति संय भी ऐसे ही तीथों के जिए निक्लोंगे, किन्तु बहां मान् कोंप में श्राभूपण रदित मृति होगी, जहां चित्रशाला के सजाई नहीं होगी, जहां की किएत चमत्कारिक किंवईहिंदै नहीं फेली होगी, जहां के मंदिरों की व मूर्ति की बतिष्ठा नहीं हुँ होगी ऐसी मृतियों व मंदिरों के। के हैं देखेगा भी नहीं देखना तो दूर रहा बदां की मृतिये श्रप्त्य रह जायगी, वहां के तांत्रे भी कभी र नीकर लोग छोल लिया करें तो भते हैं हिन्तु उस मध्य में एहने याने पूजक भी अन्य सज सजने श्राह्येक मंदिरों की श्रंपत्ता कर इन गरीय और इंगा मीरमें के बनि उपना दी रखने हैं ऐसे मेरिसें की दाल जिस यहार दिनी धनाइत के सामने निधन बीर मुंग रांद्रों के होती है वस स्मी प्रकार की होती है। जिसके धादान प्रमाण प्राप्त भी भारत में एक तरफ तो कोड़ी ही सम्बोन वात, यह र विनाम स्थन और रंग महत की मी भारत इ.स्त वाल जन मेरिस, बार दूसरी बोर कई स्वाली ह अपूज रहा ने रहे दूर क्रती तीर्यक्रों की मृतियी बाहे

ान्धु वास्तव में मूर्ति पूजक ही हैं, श्रीर मूर्ति के साथ वैभव वेलास के भी पूजक हैं। यदि इनके कहे श्रनुसार ये मूर्ति-जि़क नहीं होकर मूर्ति द्वारा प्रभु पूजक होते तो दनके लिए भव सजाई श्रादि की अपेता और उपादेयता पर्यो होती ? तिष्ठा की दुई और अप्रतिष्ठित का भेद भाव पर्थो होता ! rया श्रवितिष्ठत सूर्ति द्वारा ये श्रवनी प्रभु पूजा नहीं कर नकते ? किन्तु यह सभी भूठा बवाल है। मूर्ति के जरिये से ी पूजा होने का कहना भी भूंठ है प्रभु पूजा में मृर्ति फोटो प्रादि की त्राघश्यकता ही नहीं है, वहां तो केवल शुद्धान्तः रण तथा सम्यग्दान की भावश्यकता है जिसको सम्यग्रान ., यह सम्यक् किया द्वारा छात्मा छौर परमात्माकी परमो-रुष्ट पूजा कर सकता है। मृति पूजा कर उसके द्वारा प्रभु ते पुत्रा पहुंचाने वाले वास्तव में लकड़ी या पापाण के घोड़े र वैठकर दुर्गम मार्ग को पार कर इष्ट पर पहुंचने की वि-त्त चेए। करने वाले मूर्खराज की के।टि से भिन्न नहीं है। इतने कथन पर से पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि मूर्ति

नेर्धन जैन मंदिर है । श्रतएव सिद्ध हुश्रा कि− ये मूर्ति-पूजक

इतन कथन पर से पाठक स्वयं साच सकत है कि मूति जा वास्तव में श्रात्म फल्याण में साधक नहीं किन्तु वाधक है, जब कि—यह प्रत्यत्त सिद्ध हो चुका कि मूर्ति प्जा के हारा एमारा बहुत श्रनिष्ट हुवा और होता जारहा है किर रेसे नग्न सत्य के सम्मुख कोई फुतक ठएर भी नहीं सकती केन्तु प्रकरण की विशेष पुष्टि और शंका को निर्मूल करने के लेप कुछ प्रचलित खास २ शंकाश्रों का भरनोत्तर द्वारा समाधान किया जाता है, पाठक धैर्य एवं शान्ति से श्रयलो-कन करें।

११-क्या शास्त्रों का उपयोग करन भी मू० पू० है ?

परन —शास्त्र को जिनवाणी श्रीर ईश्वर वास्य ग कर उनको सिर पर चढाने वाले श्राप मूर्ति-पृता का विगे कैसे कर सकते हैं ?

उत्तर—यह प्रश्न भी सस्तुस्थिति की अमीना का पारिस्य देने वाला है, क्यों कि कोई भी समझतार माण काना और स्थाई के बने हुए शास्त्रों को ही जिनवाणी में देखर वाल्य नहीं मामता, न पुस्तक एम्ने ही सबेब बना है, तो पुस्तक हम में जिले हुए शास्त्र पढ़ने या भूने दुए में दिले हुए शास्त्र पढ़ने या भूने दुए में उपने के की साथन हम खबर्य होते हैं बीर उन्हें अपने की स्थाना भी पड़ने पढ़ाने नक ही है किन्तु अमो का जिनवाणी मान हम बन्दन समन करना या सिर पर अस्ति सम्हार बीनहान खाड़िस कर्ने के किया बादमा का दी किया जाना है। उन्हें से सम्हार बीनहान है अनुसार हमारे स्थित क्या जाना है। उन्हें से सम्बन्ध है अनुसार हमारे स्थित-पुनक अन्तु श्री थी

मूर्ति को मूर्ति दृष्टि से देखने मात्र तक ही सीमित रक्खें तो फिर भी उतनी मूर्खता से क्या वच सकते हैं, यह समरख ग्हे कि-जिस प्रकार शास्त्रों का पठन पाठन रूप उपयोग शान वृद्धि में आवश्यक है इस प्रकार मूर्ति आवश्यक नहीं ्यास्त्र द्वारा अनेकों का उपकार हो सकता है क्योंकि सा-हित्य द्वारा ही श्रजैन जनता में भारत के भिच २ प्रांतों श्रौर विदेशों में रहने वालों में जैनत्व का प्रचार प्रचूरता से हो सकता है। मनुष्य चाहे किसी भी समाज या धर्म का अनुः यायी हो, किन्तु उसकी भाषा में प्रकाशित साहित्य जब उस के पास पहुंच कर पठन पाठन में आता है तो उससे उसे जैनत्व के उदार एवं प्राणी मात्र के हितैपी सिद्धान्तों की स-च्ची श्रद्धा हो जाती है इस से जैन सिद्धान्तों का श्रच्छा प्रभाव होता है, आज भारत या विदेशों के जैनेतर विद्वान जो जैन धर्म पर श्रद्धा की दृष्टि रखते हैं यह सब साहित्य प्रचार (जो स्वल्प मात्रा में हुआ है) से ही हुआ है इसितिये जड़ होते हुए भी सभी को एक समान विचारोत्पादक शास्त्र जितने उपकारी हो सकते हैं उनकी श्रपेत्ता मूर्ति तो किञ्चित मात्रभी उपकारक नहीं हो सकती, आप ही वताईये कि अजैनों में मृति किस प्रकार जैनत्व का प्रचार कर सकती है? ग्राज तक केवल मृति से ही किञ्चित् मात्र भी प्रचार हुआ हो तो वताईये।

प्रचार जो होता है वह या तो उपदेशकों द्वारा या सा-हित्य प्रचार से ही मृति को नहीं मानने वालों की आज सं-सार में यही भारी संख्या है वैसे साहित्य प्रचार को नहीं

मानने वालों की कितनी संख्या है ? कहना नहीं होगा साहित्य प्रचार को नहीं मानने वाली श्रमाणी समाज गण ही कोई विश्व में अपना अस्तित्व रखती हो। आज पुरा द्वारा दूर देश में रहा हुआ कोई ब्यक्ति अपने से भिन्न स माज,मत, धर्म के नियमादि सरलता से जान सकता हैपए यह कार्य मृति छारा दोना श्रसंभन को भी संभव वना सद्य है, जिस मकार अनपढ़ के लिये शास्त्र इपर्थ है औ मकार मूर्ति पूजा श्रजैनों के लिये ही नहीं किन्तु श्रुतवान रदित सूर्ति प्रकारों के लिये भी व्यर्थ है। सूर्ति-प्रकार वेशु औ मूर्ति को देखने से ही प्रभु का याद आना कहते हैं, यह भी मिथ्या कल्पना है, यदि विना मूर्ति देखे प्रभु यद नहीं श्रात हों तो मूर्ति पुत्र ह लोग कभी मन्दिर को जा ही नहीं सकते क्योंकि मूर्ति तो मिन्हि में रहती है और घरमें या सर्वे चलने फ़िरेने तो दिलाई देवी नहीं जब दिखाई दी नहीं देवी तव उन्हें याद कैसे प्रासके ? वास्तव में इन्हें याद तो प्रपने प्र पर दी आजाती है जिससे ये लोग नान्द्रन आदि लेकर मिन् हो जाने हैं। अत्यय उक्त कथन भी अनुपादेय है।

हा जान है। शतप्य उक्त कथन भी श्रमुपादेय है।

जिनको तीर्थकर यम के शरीर या मुणी का ध्यान करना
हो उन है लिये नो मृति श्रपूर्ण और उथ्ये हैं ध्याना की
ध्यान दहव से मृति हो हटाकर श्रीपातिक मृत्र में धनाये
दूर नार्थकर स्वस्त का योग शास्त्र में धनाय श्रमुसार ध्यान
हरता वार्धित, मृति के सामने ध्यान करने से मृति ध्यान
धी का ने से ह स्वनी दें, श्रवे से श्रामे नेदी बहुने देती,
या श्रम ज ही है सहती।

ता गुरुश्चात मां मनने खुग्न राखनार छे, पछी प्रभु महावीर ती पगथी ते मस्तक पर्यंत सर्व श्राकृति एक चितारों जेम चितरतो होय तेम हलवे हलवे ते श्राकृति तुं चित्र तमारा हर्य पर पर चितरों, श्रालेखों, श्रानुभवों श्राकृति ने तमे स्वप्त पण्णे देखता हो तेटली प्रवल कल्पना थी मनमां श्रालेखी तेना उपर तमारा मनने स्थिर करी राखों मुहूर्त पर्यंत ते उपर स्थिर थथां खरेखर एकाग्रता थशें।

े इसके सिधाय इसी योग शास्त्र के नवम प्रकाश में वपस्थ ध्यान के वर्णन में प्रारम्भ के सात श्लोकों द्वारा पृ० ३०१ में ध्यान करने की विधि इस प्रकार वताई गई है।

माक्ष श्रीसंमुखीनस्य, विध्वस्ताखिल कर्भणः।
चतुर्मुखस्य निःशेप, भुगनामयदायिनः॥ १॥
इन्दु मगडल शंकाशच्छत्र त्रितय शालिनः॥
लमद् मामगडला भोग विडंपित विवस्ततः॥ २॥
दिव्य दुंदुभि निर्घोष गीत साम्राज्यसम्पदः
सगद् द्विरेफ कंकार मुखराशोकशोभिनः॥ ३॥
सिद्दासन निपरणस्य वीज्य मानस्य चामरेः॥
सुरासुर शिरोत्न, दीप्तपदनखद्यतेः॥।।॥
दिव्य पुष्पोत्कराञ्कीणे, संकीणेपरिष्दभुवः।
उत्कंघरेमृगकुलैः पीयमानकलध्वनैः॥।॥
शांत वेरेम सिद्दादि, समुपासित संनिधः।

प्रभोः समनमगा, स्थितस्य परमेष्ठिनः॥६॥ सर्वेतिमय युक्त^{स्}न केवल ज्ञान भास्ततः। प्रहेतं। रुपमालन्य, ध्यानं रूपस्य मुस्यते।७॥

दन सात रलोकों में बताए अगुसार सातात् समवताः में जिगाजे दए सम्पूर्ण अतिशय वाले नरेग्द्र, देवेग्द्र तथ पशु पत्ती मनुष्य आदि से सिवित तीर्थेकर मभु का ही अब लंबन कर जो ध्यान किया जाता है उसे ऋषस्य ध्यान कहते हैं।

उक्क प्रकार से मच्ची आकृति को लक्ष्य कर उत्तम ध्यान किया जासकता है। ऐसे ध्यान में मृति की तनिक भी औ प्रकार कता नहीं, स्वय चारों निरोप की मात्र आकृति ही औ त्रेशन पन जातों है, ऐसे ध्यान कतों को कोई बुरा नहीं कहें सकता।

तो भूति हा आलंपन लेहर ध्यान करने का करते हैं। बे ध्यान नहीं हर ह लस्य चूक पन जाने हैं, क्योफि ध्याता हा ध्यान नो भूति पर दी रहता हैं, यह भूति ध्याता को अपने ने आगे नहीं पहले देती, ध्याना के सम्मूथ भूति होते से ध्यान ने नी पड़ी पापाण की भूति हत्या में स्थान पा केतो हैं, इनसे पर ध्येप में और पन कर उसको यहां तह पहुंचने हा नहीं दत्ता, तेसे एक नियाने पान किसी पम्लू को अध्य हर नियाना करता है तो अहन को वेध सकता है। अध्येद इसहा नियाना जीवत प्रस्तु तह पहुंच सहता है।

११--- त्रावलम्बन

प्रश्न — विना श्रवलम्यन के ध्यान नहीं हो सकता इस लिए श्रवलंबन रूप मृति रखी जाती है, मृति को नहीं मानने पाले ध्यान किस तरह कर सकते हैं ?

उत्तर—ध्यान करने में मूर्ति की कुछ भी आवश्यकता नहीं, जिन्हें तीर्थंकर के शरीर और वाह्य अतिशय का ध्यान करना है वे सूत्रों से उनके शरीर और अतिशय का धर्णन करना है वे सूत्रों से उनके शरीर और अतिशय का धर्णन जान कर अपने विचारों से मनमें कल्पना करे और फिर जान कर अपने विचारों से मनमें कल्पना करे और फिर तीर्थंकरों के भाव गुणों का चिन्तन करे बिना अनन्तज्ञानादि भाव गुणों का चिन्तन किये, अतिशयादि वाह्य वस्तुओं का भाव गुणों का चिन्तन किये, अतिशयादि वाह्य वस्तुओं का चिन्तन अधिक लाभकारी नहीं हो सकता। ध्यान में यह चिन्तन अधिक लाभकारी नहीं हो सकता। ध्यान में यह चिन्तन अधिक लाभकारी नहीं हो सकता। ध्यान में यह मिना अधिक लाभकारी नहीं हो सकता। ध्यान में यह सामना कर वीरता पूर्वंक उनको सहन किये, और समभाय पुक्त चारित्र का पालन कर जानादि अनन्त चतुष्ट्य रूप गुण प्रक्त चारित्र का पालन कर जानादि अनन्त चतुष्ट्य रूप गुण प्रक्त चारित्र का पालन कर जानादि अनन्त चतुष्ट्य रूप गुण प्रक्त चारित्र का पालन कर जानादि अनन्त चतुष्ट्य रूप गुण प्रक्त चारित्र का पालन कर जानादि अनन्त चतुष्ट्य रूप गुण



११—ग्रवलम्बन

प्रश्न — विना श्रवलम्यन के ध्यान नहीं हो सकता इस जेए श्रवलंगन रूप मृि रखी जाती है, मृित को नहीं मानने बोले ध्यान किस सरह कर सकते हैं ?

उत्तर—ध्यान करने में मृति की फुछ भी आवश्यकता
गहीं, जिन्हें तीर्थकर के शरीर और वाह्य अतिशय का ध्यान
करना है वे स्वों से उनके शरीर और अतिशय का ध्यान
करना है वे स्वों से उनके शरीर और अतिशय का धर्णन
जान कर अपने विचारों से मनमें करपना करे और फिर
तीर्थकरों के भाव गुणों का चिन्तन करे बिना अनन्तदानादि
साव गुणों का चिन्तन किये, अतिशयादि बाह्य वस्तुओं का
भाव गुणों का चिन्तन किये, अतिशयादि बाह्य वस्तुओं का
बिन्तन अधिक लाभकारी नहीं हो सकता। ध्यान में यह
बिन्तन अधिक लाभकारी नहीं हो सकता। ध्यान में यह
बिन्तन अधिक लाभकारी नहीं हो सकता। ध्यान में यह
बिन्तन अधिक लाभकारी नहीं हो सकता। ध्यान में यह
विचार करे कि प्रभु ने किस प्रकार घोर एवं भयंकर कष्टोंका
सामना कर बीरता पूर्वक उनको सहन किये, और समभाव
सामना कर बीरता पूर्वक उनको सहन किये, और समभाव
ग्राह चारित्र का पालन कर ज्ञानादि अनन्त चतुष्टय रूप गुण
प्राह चारित्र का पालन कर ज्ञानादि अनन्त चतुष्टय रूप गुण
प्राह चारित्र का पालन कर ज्ञानादि अनन्त चतुष्टय रूप गुण
प्राह चारित्र का पालन कर ज्ञानादि अनन्त चतुष्टय रूप गुण

प्रने।: सम्बन्धमा, स्थितस्य परमेष्टिनः॥श॥ सन्तितित्राय युक्त^{स्}व केवल ज्ञान भास्वतः। अनुत्ती स्वमालन्य, ध्यानं रूषस्य गुच्यते।॥॥

दम मात रलो हो में यताप श्रमुसार सातात् समयसण् में दिगाने हप सम्पूर्ण श्रतिराय याले नरेन्द्र, देवेन्द्र तय पश्च पत्ती मनुष्य आदि से सेविन तीर्वेकर प्रभु का ही अब लेवन कर नो ध्यान किया जाता है उसे ऋषस्य ध्यान करते हैं।

उक्क प्रकार से मञ्जी आज्ञति को लक्ष्य कर उत्तम ध्यान किया जामकता है। ऐसे ध्यान में मृति की तनिक भी आ प्रश्यकता नहीं, स्वय चारों निवाप की मात्र आज्ञति ही औ तक्त उन जाती हैं, ऐसे ध्यान कती को कोई बुरा नहीं कह सकता।

तो मृति का शानेयन ते हर ध्यान करने का करते हैं। के ध्यान नहीं हर है जरव चूक यन जाते हैं, पर्योक्ति ध्याना का ध्यान तो मृति पर ता रहता है, यह मृति ध्याना को ध्यान से धाने नी यहने देती, ध्याना के सम्मृत्त मृति होते से ध्यान में नो पर्वा पाणाण की मृति हरव में क्यान गा तेनी हैं, इससे पर ध्येय में श्रीष्ट पन कर प्रम्ता यहां तक एड्रेयने ता नहीं देता, प्रेसे एक निगाने बान किया करना है। प्रधान कर निगाना महता है तो उद्या की नेश सबता है। प्रधान दसका निगाना शहता है तो उद्या की नेश सबता है।

१२--- त्रवलम्बन

प्रश्न — विना अवलम्यन के ध्यान नहीं हो सकता इस लिए अवलंबन रूप मूर्नि रखी जाती है, मूर्ति को नहीं मानने पाले ध्यान किस तरह कर सकते हैं ?

उत्तर—ध्यान करने में मृति की फुछ भी श्रावश्यकता नहीं, जिन्हें तीर्धंकर के शरीर श्रीर याहा श्रातश्य का ध्यान करना है वे सूत्रों से उनके शरीर श्रीर श्रातश्य का धर्णन कर श्रपने विचारों से मनमें कल्पना करे श्रीर फिर जीन कर श्रपने विचारों से मनमें कल्पना करे श्रीर फिर तिथंकरों के भाव गुणों का चिन्तन करे िना श्रनन्तश्चादि भाव गुणों का चिन्तन किये, श्रतिश्यादि याहा वस्तुश्रों का मान गुणों का चिन्तन किये, श्रतिश्यादि याहा वस्तुश्रों का चिन्तन श्रिषक लाभकारी नहीं हो सकता। ध्यान में यह चिन्तन श्रिषक लाभकारी नहीं हो सकता। ध्यान में यह चिन्तन श्रिषक लाभकारी नहीं हो सकता। ध्यान में यह माना कर वीरता पूर्वक उनको सहन किये, श्रीर समभाव सामना कर चीरता पूर्वक उनको सहन किये, श्रीर समभाव युक्त चारित्र का पालन कर शानादि श्रनन्त चतुष्य रूप गुण श्रात किये, शानावरणीयादि कमों की प्रकृति, उनकी भेयकरता श्रात किये, शानावरणीयादि कमों की प्रकृति, उनकी भेयकरता श्राद पर विचार कर श्रम गुणों को प्राप्त करने की भावना

करे, ज्ञानी पुरुषों की स्तुति करे, इस प्रकार सद्दज ही ध्यान हो सकता है, और स्वयं ध्येय ही श्रालंबन बन जाता किसी अन्य आलंबन की आवश्यकता नहीं रहती। इस सिवाय त्र्यनित्यादि वारह प्रकार की भावनापं, प्रमोदादि व अन्य भावनाएं, प्राणी मात्र का ग्रुभ एवं हितचिन्तक, स्व त्म निन्दा, स्वदोप निरीचण श्रादि किसी एक ही विषय क तेकर यथायक्य मनन करने का प्रयत्न किया जाय श्रीरपे प्रयतन में सद्देव उतरोत्तर वृद्धि की जाय तो अपूर्व श्रामन मास हो कर जीव का उत्थान एवं कल्याग हो सकता है। ऐसी एक २ भावना से कितने ही प्राणी संसारसमुद्र से पार होक यनन्त मुख के मोक्षा वन चुके हैं। ऐसे धर्म ध्यानों में मूर्वि री हिचित् मात्र भी त्यावश्य हता नहीं, ध्येय स्वयं त्यालं भ बन जाता है। शरीर को लदय कर ध्यान करने याने की श्री देशस्थित्रपत्ती गणिकृत गुजराती मापांतर वाली चौथी श्रापृ ित हे योग शास्य पु० ३४३ में 'श्राकृति ऊपर एकाग्रता' विषय≸ लंकन नेत्व को पत्रना चारिये,—

"होई पण पूरा पृष्ठ उपर महित वाला माणामी वर्णी महेलाई ची एकामना करी शके हैं चारों के तमारी खीं महिलाई ची एकामना करी शके हैं चारों के तमारी खीं मिलत नी लागणी नगयान महातीर देव उपर हैं तेथी तमें ली हमां करा करा मां राजपूरीनी पासे मादिला विचार गिरि नी पार्ट की को है मादिला महिता ना क्यां की प्राह्म ना है मादिला महिता ना प्रवार्ट की चीच भाई महिता ना प्रवार्ट की चीच भाई की ना है सिता ना प्रवार्ट की चीच भाई की ना है सिता ना प्रवार्ट की चीच भाई की ना है सिता ना प्रवार्ट की चीच भाई की ना हो सिता ना प्रवार्ट की चीच भाई की ना हो सिता ना महिता मादिला की महिता ना सिता मादिला मादिला मादिला भाई की की पार्ट में हैं ना है सिता मादिला मादिला

११—ग्रवलभ्वन

प्रश्न — विना श्रवलम्यन के ध्यान नहीं हो सकता इस लिए अवलंबन रूप मूर्ति रखी जाती है, मूर्ति को नहीं मानने पाले ध्यान किस तरह कर सकते हैं?

उत्तर—ध्यान करने में मृति की कुछ भी आवश्यकता
नहीं, जिन्हें तीर्थंकर के शरीर और वाह्य शतिशय का ध्यान
करना है वे स्त्रों से उनके शरीर और अतिशय का ध्यान
करना है वे स्त्रों से उनके शरीर और अतिशय का वर्णन
जान कर अपने विचारों से मनमें करणना करे और फिर
जीर्थकरों के भाव गुणों का चिन्तन करे विना अनन्तज्ञानादि
तीर्थंकरों के भाव गुणों का चिन्तन करे विना अनन्तज्ञानादि
भाव गुणों का चिन्तन किथे, अतिश्यादि वाह्य वस्तुओं का
भाव गुणों का चिन्तन किथे, अतिश्यादि वाह्य वस्तुओं का
चिन्तन अधिक लाभकारी नहीं हो सकता। ध्यान में यह
चिन्तन अधिक लाभकारी नहीं हो सकता। ध्यान में यह
चिन्तन अधिक लाभकारी नहीं हो सकता। ध्यान में यह
सिन्तन अधिक लाभकारी नहीं हो सकता। ध्यान में यह
सिन्तन अधिक लाभकारी नहीं हो सकता। ध्यान में यह
सिन्तन अधिक लाभकारी नहीं हो सकता।
प्राप्त कर वीरता पूर्वंक उनको सहन किये, और समभाव
गुक्त चारित्र का पालन कर जानादि अनन्त चतुष्ट्य हुए गुण
प्रक्त चारित्र का पालन कर जानादि अनन्त चतुष्ट्य हुए गुण
प्रक्त चारित्र का पालन कर जानादि अनन्त चतुष्ट्य हुए गुण
प्रक्त चारित्र का पालन कर जानादि अनन्त चतुष्ट्य हुए गुण
प्रक्त चारित्र का पालन कर जानादि अनन्त चतुष्ट्य हुए गुण
प्रक्त चारित्र का पालन कर जानादि अनन्त चतुष्ट्य हुए गुण
प्रक्त चारित्र का पालन कर जानादि अनन्त चतुष्ट्य हुए गुण
प्रक्त चारित्र का पालन कर जानादि अनन्त चतुष्ट्य हुए गुण
प्रक्त चारित्र का पालन कर गुणों को प्राप्त करने की भावना

करे, ज्ञानी पुरुषों की स्तृति करे, इस प्रकार सहज है। ध्यान हो सकता है, और स्वयं ध्येय ही आलंबन बन जाता है ित्ती अन्य आलंबन की आवश्यकता नहीं रहती। (सं तिवाय अनित्यादि वारह प्रकार की सावनाएं, प्रमोदादि 📲 प्रस्य भावनापं, प्राणी मात्र का ग्रुभ एवं हितचिस्तक, स्वा त्म निन्दा, स्वदोप निरीदाण आदि किसी एक ही विषय को बे हर यथाशक्य मनन करने का प्रयत्न किया जाय औरऐसे प्रयत्न में सद्य उतरोत्तर बुद्धि की जाय तो अपूर्व अनम प्राप्त हो कर जीव का उत्थान एवं कल्याम हो सकता है। मेती एक २ भावना से कितने ही प्राणी संसारसमुद्र से पार होत्र अनन्त गुध्व के मोक्षा वन तुके हैं। ऐसे धर्म ध्वानों में मूर्ति हो चिनिन् मात्र भी श्रावश्यहता नहीं, ध्येय स्वयं श्रालंग वन जाता है। शरीर को लक्ष्य कर ध्यान करने वाले को औ देशस्त्रि उप की गाँग इत गुजराती प्रापांतर वाली. चौथी ऋष्ट्र ित हे योग शास्त्रपुर ३४३ में 'श्राकृति ऊपरएक।श्रता' विषयण भिम्न बेल हो पड़ना चाहिये.—

ें कोई पण पूर्य पृथ्य उपर भिन्न वाला मालांसी धर्णी लाई नाई यो ए कालवा करी शहे हें आरों के लमारी सार्थी किंदन की नामशी सार्थी के हमारी सार्थी के हमार्थी के कालवा के माला सार्थी लांची लांची कालां के कालां के कालां के कालां के कालां के कालां कालां के कालां के कालां के कालां के कालां के कालां के कालां कालां कालां कालां के कालां क

ा गुरुत्रात मां मनने खुग्न राखनार छे, पछी प्रभु महावीर गि पाधी ते मस्तक पर्यंत सर्व आरुति एक चितारो जेम वितरतो होय तेम हलवे हलवे ते आरुति तुं चित्र तमारा वितरतो होय तेम हलवे हलवे ते आरुति तुं चित्र तमारा हत्य पट पर चितरो, आलेखो, अनुभवो आरुति ने तमे स्वाय पट पर चितरो, आलेखो, अनुभवो आरुति ने तमे स्वाय पर प्राये ते ते ते ते प्रायं कल्पना थी मनमां आलेखी स्वाय पर्यो ते ते ते उपर तेना उपर तमारा मनने स्थिर करी राखो मुहुत पर्यंत ते उपर तिमार थयां खरेखर एकाग्रता थशें।

्रसके सिवाय इसी योग शास्त्र के नवम प्रकाश में कपस्थ त्यान के वर्गान में प्रारम्भ के सात श्लोकों द्वारा ए० ३७१ में ध्यान करने की विधि इस प्रकार वताई गई है।

मोक्ष श्रीसंमुखीनस्य, विध्वस्ताखिल कभेषाः। चतुर्मु हस्य निःशेष, मुवनामयदायिनः ॥ १ ॥ इन्दु भगडल शंकाशच्छत्र त्रितय शालिनः ॥ लमद् मामगडला भोग विडंगित विवस्वतः ॥ २ ॥ दिव्य दुंदुमि निचीप गीत साम्राज्यसम्पदः रणद् द्विरेफ भंकार मुखराशोकशोभिनः ॥ ३ ॥ सिहासन निष्यणस्य वीज्य मानस्य चानरे: ॥ मुरामुर शिरोरत्न, दीप्तपादनखद्युते: ।।४॥ दिच्य पुष्पोत्कराङकीर्ण, संकीर्णेशियद्भुवः। उत्कंघरेमृगकुलैः पीयमानकलध्वनैः ॥४॥ शांत वैरेम सिहादि, समुवासित संनिधः । त्रमोः समवसरमा, स्थितस्य परमेष्ठिनः ॥६॥ सर्वातित्राय युक्तस्य केवल ज्ञान भास्वतः । त्रहेतो रुपमालन्य, ध्यानं रूपस्य मुच्यते । ७॥

इन सात रलोकों में यताए अनुसार साद्वात् समयसर में विराजे इए सम्पूर्ण अतिराय याने नरेग्द्र, देवेग्द्र त परा पत्ती मनुष्य आदि से सेचित तीर्थकर प्रभु का ही अ लंबन कर जो ध्यान किया जाता है उसे ऋषस्य ध्यान कर्त

उक्त मकार से सब्बी आद्यति को लक्ष्य कर उत्तम प्यान किया जासकता है। ऐसे ध्यान में मृति की तिनक भी आ वस्यकता नहीं, स्वयं चारों निवाप की मात्र आकृति ही आ जेवन वन जाती है, ऐसे प्यान कर्ता को कोई बुरा मही कई महता।

भे मूर्ति का यालंबन जे कर क्यान करने का करने हैं। वे ज्यान भी कर के क्ष्य चूक वन जाते हैं, क्योंकि क्यान का ज्यान तो मूर्ति पर श्री रहता है, वह मूर्ति ज्याना को अपने से असी नहीं वहने हेती, क्याता के सम्मुख मूर्ति होने वे ज्यान में ना बदा पायाण की मूर्ति हृदय में क्यान पा के ता है, इससे पर खेय में और यन कर उसकी वहां तक उद्धार हा नहीं क्ष्म, असे एक निशान वाल किसी बन्तु को अपहेंद् इसका निशाना भारता है तो अदय को वेख सकता है। अपहेंद् इसका निशाना जीवन बन्तु तक पहुंच सकता है। किन्तु वही निशानेवाज लिंत वस्तु को वेधने के लिये निशाना मारते समय अपने व लह्य के वीच में छुछ दूसरी यस्तु ओट की तरह रख कर उसीकां ओर निशाना मारेया वस्तु ओट की तरह रख कर उसीकां ओर निशाना मारेया वीच में दिवाल खड़ी कर फिर निशाना चलावे तो उसका निशाना वह दिवाल रोक लेती है जिससे वह लह्य भ्रष्ट हो जाता है, नावह दिवाल रोक लेती है जिससे वह लह्य भ्रष्ट हो जाता है, सी प्रकार मूर्ति को सामने रख कर ध्यान करने वाले के सी प्रकार मूर्ति को सामने रख कर ध्यान करने वाले के लिये मूर्ति, दिवाल (ओट) का काम करके ध्याता का लिये मूर्ति, दिवाल (ओट) का वाम करके ध्याता का यान अपने से आगे नहीं वढ़ने देती। विना मूर्ति के किया इन्ना ध्यान ही अर्हत् सिद्ध रूप लह्य तक पहुंच कर चित्त हुआ ध्यान ही अर्हत् सिद्ध रूप लह्य तक पहुंच कर चित्त

की श्रावश्यकता नहीं है।
शास्त्रों में भरतेश्वर, निमराज, समुद्रपाल श्रादि महापुरुषों का वर्णन श्राता है, वहां यह वताया गया है कि उन्होंपुरुषों का वर्णन श्राता है, वहां यह वताया गया है कि उन्होंपुरुषों का वर्णन श्राता है, वहां यह वताया गया है से संसार
ने विना इस प्रचलित जड़ मूर्ति के मात्र भावना से ही संसार
होड़ा श्रीर चारित्र स्वीकार कर श्रात्म कल्याण किया है,
छोड़ा श्रीर चारित्र स्वीकार कर श्रात्म कल्याण किया किन्तु
भरतेश्वर ने श्रातित्य भावना से केवलहान प्राप्त किया किन्तु
भरतेश्वर के श्रात्य मावना से केवलहान प्राप्त आवश्यकता
उन्हें किसी मूर्ति विशेष के श्रात्यन स्तेने में मूर्ति की श्रायनहीं हुई, श्रत्यव ध्याता को ध्यान करने में मूर्ति की श्रायस्वता है ऐसे कथन एक दम निस्सार होने से वुर्द्ध गम्य
नहीं है।



प्रनोः सम्बमस्या, स्थितस्य परमेष्ठिनः ॥६॥ सर्वे।तिशय युक्तस्य केवल ज्ञान भास्ततः । प्रदेतो रुपमालन्य, ध्यानं रूपस्य मुख्यते । ७॥

रन सात श्लोकों में यताए अनुसार साक्षात् समनतः में विराजे दृए सम्पूर्ण अतिशय याने नरेग्द्र, वेत्रेग्द्र त परा पत्ती मनुष्य आदि से सेविन तीर्थकर प्रभु का ही अर् लंबन कर जो ध्यान किया जाता है उसे ऋपस्थ ध्यान कर्षे हैं।

उक्त महार से सच्ची आइति को लक्ष्य कर उश्वम शास किया जासकता है। ऐसे ध्यान में मूर्ति की तिक भी शा यखकता नहीं, स्वयं चारों निराय की मात्र आश्वति से शा नंतन पन जाती है, ऐसं ध्यान कती को कोई शुरा गर्ही का सकता।

वो भृति हा आले भ हो हर ध्यान हरने का अपने हैं।

पे ध्यान नहीं हर हे हरण खुह उम जाने हैं, क्योंकि ध्यान हा त्यान नो भृति पर दो रहता है, यह भृति ध्याना को ध्याने हो आगे नहीं पहने देता, ध्याना के सम्मूक्ष भृति होने हें पान के ध्यान के सम्मूक्ष भृति होने हें पान के ध्यान के ध्यान मृति होने हें पान के ध्यान के ध्यान पान है। इससे पर ध्येप में ध्याद पन हर उसको नहीं तक हो के पान के ध्यान के ध्य

किन्तु वही निशानेवाज लिंदत वस्तु को वेधने के लिये निशाना मारते समय अपने व लह्य के वीच में कुछ दूसरी
वस्तु ग्रोट की तरह रख कर उसीकी ग्रोर निशाना मारे या
वस्तु ग्रोट की तरह रख कर उसीकी ग्रोर निशाना मारे या
वीच में दिवाल खड़ी कर फिर निशाना चलावे तो उसका निशानावह दिवाल रोक लेती है जिससे वह लह्य भ्रष्ट हो जाता है,
इसी प्रकार मूर्ति को सामने रख कर ध्यान करने वाले के
इसी प्रकार मूर्ति को सामने रख कर ध्यान करने वाले के
लिये मूर्ति, दिवाल (श्रोट) का काम करके ध्याता का
लिये मूर्ति, दिवाल (श्रोट) का काम करके ध्याता का
हिशा ध्यान श्रोने से आगे नहीं वढ़ने देती। विना मूर्ति के किया
हुआ ध्यान ही श्रदेत सिद्ध रूप लह्य तक पहुंच कर विच
हुआ ध्यान ही श्रदेत सिद्ध रूप लह्य तक पहुंच कर विच
हुआ ध्यान ही श्रदेत सिद्ध रूप लह्य तक पहुंच कर विच
हुआ श्यान ही श्रदेत सिद्ध रूप लह्य तक पहुंच कर विच
हुआ श्यान ही श्रदेत सिद्ध रूप लह्य तक पहुंच कर विच
हुआ श्यान ही श्रदेत सिद्ध रूप लह्य तक पहुंच कर विच

का श्रावश्यकता नहा है।
शास्त्रों में भरतेश्वर, निमराज, समुद्रपाल श्रादि महापुरुषों का वर्णान श्राता है, वहां यह वताया गया है कि उन्होंपुरुषों का वर्णान श्राता है, वहां यह वताया गया है कि उन्होंने विना इस प्रचित्र जंद मूर्ति के मात्र भावना से ही संसार
ने विना इस प्रचित्र स्वीकार कर श्रात्म कल्याण किया है,
छोड़ा श्रीर चारित्र स्वीकार कर श्रात्म कल्याण किया है,
भरतेश्वर ने श्रनित्य भावना से केवलझान प्राप्त किया किन्तु
भरतेश्वर ने श्रनित्य भावना से केवलझान प्राप्त किया किन्तु
उन्हें किसी मूर्ति विशेष के श्रालंयन लेने की श्रावश्यकता
नहीं हुई, श्रतप्य ध्याता को ध्यान करने में मूर्ति की श्रावगर्सा हुई, श्रतप्य ध्याता को ध्यान करने में वुद्धि गम्य
श्यकता है ऐसे कथन एक दम निस्सार होने से वुद्धि गम्य
नहीं है।



१३—'नामस्मरण ऋौर मृतिं-पूजा'

प्ररन-जिस प्रकार आप नामस्मरण करते हैं उती मकार हम मृति-पूजा करते हैं, यदि मृति-पूजा से लाग नहीं

तो नामस्मरण से क्या लाम ? जैसे "मृति मण्डन प्रश्नोत्तर" पु॰ ४० पर विधा है कि— ''नेन कोई पुरुष है गाय दूध दे, एन केवल मुखेयी उच्चारण करं तो तेने द्ध मले के नहीं ? तमे कहेगी के नडीं, त्यारे परमंधर ना नाम थी के जाप थी पण कांद्रे कार्य भिद्ध नहीं धाय तो पद्धी तमारे परमारमा नुं नाम पण न

इसका च्या मनाचान है ?

44 447 1

उत्तर—यह तो बल्बहनी की कुलक है और ऐसी ही इन है जीकान प्रतिकारी को के जी की की जो कि "कैन स्व वेष्णा वे बहुत हो भूति है। इन महातुनावी की यह ती while will fix which the extreme arms - - -

रटन रूप नाम स्मरण को उच्च फल प्रद नहीं मानता, भाव युक्त स्मरण ही उत्तम कोटि का फलदाता है। किन्तु भाव युक्त भजन के आगे तोते की तरह किया हुवा नामस्मरण किंचित् मात्र होते हुए भी मूर्ति पूजा से तो अच्छा ही है, क्योंकि केवल वाणी द्वारा किया हुआ नामस्मरण भी वाणी-सुप्रणिधान' तो श्रवश्य है, श्रीर 'वाणीसुप्रणिधान' किसी २ समय 'मनः सुप्रणिघान' का कारण वन जाता है, श्रीर मूर्ति पुजा तो प्रत्यत्त में 'कायन्दुष्प्रिधान' प्रत्यत्त है, साथ ही मनःदुष्प्रियान की कारण वन सकती है, क्योंकि-पूजा में श्राये हुए पुष्पादि घाणेन्द्रिय के विषय का पोषण करने वाले हैं, मनोहर सजाई, आकर्षक दीवराशी और नृत्यादिनेत्रेन्द्रिय को पोपण दे ही देते हैं, वाजिन्त्र श्रोर सुरीले तान टप्पे कर्ण-न्द्रिय को लुभाने में पर्याप्त है, स्नान शरीर विकार वढ़ाने का प्रथम श्रृंगार ही है, इस प्रकार जिस मृति पूजा में पांचों इन्द्रियों के विषय का पोषण सुलभ है वहां मनदुष्पणिधान हो तो आश्चर्य ही क्या है ? वहां हिंसा भी प्रत्यत्त है, प्रत-पच मूर्ति-पूजा शरीर और मन दोनों को बुरे मार्ग में लगाने वाली है, कर्म वंघन में विशेष जकड़ने घाली है, इससे तो केवल वाणी द्वारा किया हुआ नामस्मरण ही अच्छा श्रीर वचन दुष्पणिघान का अवरोधक है, और कभी २ मनःसुम-णिधान का भी कारण हो जाता है, अतएव मूर्ति-पूजा से नामस्मरण श्रवश्य उत्तम है।

यदि यह कहा जाय कि—'हमारी यह द्रव्य-पूजा काय दुष्पणिधान होते ग्रुप भी मनःसुपणिधान (भाव पूजा) की कारण है' तो यह भी उचित नहीं, क्योंकि—मनःसुप्रणिधान में शरीर तुष्पिण्यान की आवश्यकता नहीं रहती, द्रथ्यपूर से भाव-पूजा जिलकुल प्रथक् है, भाव-पूजा में किसी जीव क मारना तो दूर रहा सताने की भी आवश्यकता नहीं रहती न किसी अन्य याद्य वस्तुओं की ही आवश्यकता रहती है भाव-पूजा तो प्रधानत मन, वचन, और शरीर द्वारा ही के जाती है। अन्यव द्वव्य पूजा को भाव-पूजा का कारण कहता असत्य है।

रायं द्विभद्रप्रि त्रावश्यक में लिखते हैं कि---

'नावलव में द्रायस्तव की आवश्यकता नदी।

भीर जो गाय का उदाहरण दिया गया है वह भी उछा वरनकार के दी विषय जाता है, क्योंकि—

जिस प्रधार गाय के नाम रहन मात्र से दुध नहीं मिल स्व ना, उसी प्रधार परणर, मिट्टी, या कामज़ पर नती सुं नाय में नो दुध पात नहीं हो सकता यदि हमारे मुलिपूजक म्रू इस उदादरण में नी शिजा पात करता चाहें ता सहज दा ने मृति पूजा का यह फरना जनसे दुर हो सकता है। दिल्लू ये नहें ऐसे मीने नहीं, जो मान जाय, ये तो नाम में दूध भीतन हों महिंगी, पर गाय की मृति से दूध प्राम् करन की तरह मूर्ति पूजा तो करेंगे ही।

भागित् नाव निजेप सप यन की आरावना साजान गाय क कर्नन का प्रकार होती है, हिस्तु मृति से रिव्युत साथ कार कर्न की प्रकार क्या नी पत्थर की गाय से दूध आह करने के वर्गवर की राज्याक्यर है। अत्यय सेसमाबी सी कोई कर कर्म नाने की प्रदेश करना चाहिय।

१४— भौगोलिक नक्शे

प्रश्न — जिस प्रकार द्वीप. समुद्र, पृथ्वी आदि का ज्ञान नक्शे द्वारा सहज ही में होता है, भूगोल के चित्र पर से ग्राम, नगर, देश, नदी समुद्र रेट्वे ग्रादि का ज्ञानना सुग-म होता है, उसी प्रकार मृति से भी साजात का ज्ञान होता है ऐसी स्पष्ट यात को भी श्राप क्यों नहीं मानते?

उत्तर—मात्र मृति ही साज्ञात् का ज्ञान कराने वाली है यह वात श्रसत्य हैं। क्यों कि श्रनपढ़ मनुष्य तो नभ्यों को सामन्य रही कागज़ से श्रधिक नहीं ज्ञान सकता, किसी सामन्य रही कागज़ से श्रधिक नहीं ज्ञान सकता, किसी श्रनपढ़ या वालक के सामने कोई उच्च धार्मिक पुस्तक श्रनपढ़ या वालक के सामने कोई उच्च धार्मिक पुस्तक रख दी जाय तो वह मात्र पुढ़िया वान्धने के श्रन्य किसी भी काम में नहीं ले सकता। श्रनसमक्त लोगों की वह वात सभी काम में नहीं ले सकता। श्रनसमक्त लोगों की वह वात सभी जानते हैं कि जब भारत में रेलगाड़ी का चलना प्रारम्भ जानते हैं कि जब भारत में रेलगाड़ी का चलना प्रारम्भ जानते हैं कि जब भारत में रेलगाड़ी का चलना प्रारम्भ जानते हैं कि जब भारत में रेलगाड़ी का चलना प्रारम्भ जानते हैं कि जब भारत में रेलगाड़ी का चलना प्रारम्भ जानते हैं कि जब भारत में रेलगाड़ी का चलना प्रारम्भ हात्र वेश जानते हैं सामक कर देवी जानते हैं श्रा तथ वे लोग उसे वाहन नहीं समक्त कर देवी जानते थे। साज्ञात् वीर प्रमु को देखकर अनेक युवतियां उनसे थे। साज्ञात् वीर प्रमु को देखकर अनेक युवतियां उनसे

रतिद्दान की प्रार्थना करती थी, वब्चे उसके मारे से से भागते थे, अनार्थ लोग प्रभू को चोर समक्त कर ताइना करते थे, जब मूर्ति से ही ज्ञान प्राप्त होता है, तो साज्ञात के विशेष पर ज्ञान के वदले अज्ञान विषसित ज्ञानक्यों हुआ के विशेष पर प्राप्त के वदले अज्ञान विषसित ज्ञानक्यों हुआ के व्यक्त के वस के विस्तार प्राप्त के वदले साम, प्रश्ने देश भाव क्ये जाएत (विदा) हुए?

यह दीक है कि जिस प्रकार पढ़े लिखे मनुष्य भन्छ रेशकर रिटड़न स्वान अथया रेखेंने लाईन सम्प्रक्शी आनहा से कर लेने हैं। यानी मन्या आदि पुस्तक की तरह अल पाय करने में सहायक हो सकते हैं। किन्तु यदि कोई विद्राल न क्या रेश कर इंटिड़न स्वान पर पहुंचने के लिये उसी मन्थे पर रीड़ पूर भनावे, विश्वनय सरोबर में जल विद्यार करने का रच्या से हुई पड़े, विश्वनय साथ से दूध पास करने की कोंक्य करे, नव नो मृति भी साजान की तरह पूजनीय र वेंदनाय से सकते हैं, पर इस प्रकार की मृतिना कोई में समस्कार न से प्रना तह मृति की असल की मृतिना कोई में

िवस प्रहार वस्ते हो नदशा मानहर उसकी सीम उनके माप तह ता है उसी प्रहार मृति भी देखने माप तह डा (अनावश्वह डोने इंड मा) मोमिन रिस्ते, तब तो आप उन्हें कई आप से हा दिया हुआ उदाहरण आपनी मृति इंग के स्वह दिया हुआ। अनस्त माणको प्रशासन उस्ते में अव्हें कई सत्त माणे हो बहुण हरना चाहिते।

१५—स्थापना सत्य

प्रश्न —शास्त्र में स्थापना सत्य कहा गया है उसे श्राप मानते हैं या नहीं ?

उत्तर-हां स्थापना सत्य को हम अवश्य मानते हैं
उसका सच्चा आश्य यही है कि स्थापना को स्थापना मूर्ति
को मूर्ति चित्र को चित्र मानना। इसके अनुसार हम मूर्ति
को मूर्ति चित्र को चित्र मानना। इसके अनुसार हम मूर्ति
को मूर्ति मानते हैं, किन्तु स्थापना सत्य का जो आप समकाना चाहते हैं, कि स्थापना मूर्ति ही को सासात् मानकर
माना चाहते हैं, कि स्थापना मूर्ति ही को सासात् मानकर
वन्दन पूजन आदि किये जांय यह अर्थ नहीं होता। इस प्रकार
वन्दन पूजन आदि किये जांय यह अर्थ नहीं होता। इस प्रकार
वन्दन पूजन आदि किये जांय यह अर्थ नहीं होता। इस प्रकार
वन्दन पूजन आदि किये जांय यह अर्थ नहीं होता। इस तरह
देना चाहिये जो मूर्ति को मूर्ति ही नहीं मानता हो। इस तरह
यहां आपकी उक्ष दलील भी मनोरध सिद्ध करने में असफल
ही रही।



रितिदान की प्रार्थना करती थी, वच्चे उरके मारे रो रो कामने थे, अनार्थ लोग प्रभू को चोर समक्त कर ताइना रते थे, जब मृति से ही ज्ञान प्राप्त होता है, तो साक्षात के वेदले अज्ञान विपरीत ज्ञानक्षों हुआ? स्वाल् धर्म के नायक और परम योगीराज प्रभु महाधीर के ते पर भी वेरास्य के बदले राम, प्रवं देश भाव की जायुन (पीडा) हुए?

पद जीक है कि जिस प्रकार पढ़े लिखे मनुष्य नक्ष

देगकर इच्डित स्थान श्रवचा रेत्वे लाईन सम्बन्धी जानका से कर लेते हैं। यानी मन्या श्रादि पुस्तक की तरह अल वात करने में सदायक तो सकते हैं। किन्तु यदि कोई विज्ञान क्या देख कर इच्डित स्थान पर पहुंचने के लिये उसी तकों पर दीत जा मचाने, जियमय मरोबर में जल विहार काने के इच्छा मचाने, जियमय माय से दुध बात करने की की रचता करें, तब तो मृति भी साजात् की तरह पुत्रनीय हो वेदनीय हो सकती है, यर इस ब हार की मृतिया कोई में सम्बद्धार नहीं करता तर पृति दी समल की मृतिया की ने में प्राप्त की सहते हैं। दिन प्रमुख की महती हैं।

इत्वन नाय तह सं है इसी यहार मृति भी देवक भाव तह हो (अनावस्व ह होने दूर भी) भी भित रिखिय, तन तो बार हा इत्यासन यदीन से बहुन हुई बच सहसे हैं। भी दह पह अप हो का दिया हुआ उदाहरण आपकी मृति है। ने नावह लेट हुआ। अनवन भावही अरासहब हुद्देव से अनाव हर पत्य माने को यहण हरना चाहिया।

१५—स्थापना सत्य

प्रश्न —शास्त्र में स्थापना सत्य कहा गया है उसे

थ्राप मानते हैं या नहीं ?

उत्तर--हां स्थापना सत्य को हम ग्रवश्य मानते हैं उसका सच्चा त्राशय यही है कि स्थापना को स्थापना मूर्ति को मूर्ति चित्र को चित्र मानना। इसके अनुसार हम मूर्ति को मृति मानते हैं, किन्तु स्थापना सत्य का जो श्राप सम-भागा चाहते हैं, कि स्थापना मूर्ति ही को साद्वात् मानकर वन्दन पूजन श्रादि किये जांय यह अर्थ नहीं होता। इस प्रकार का मानने वाला सत्य से परे हैं, आपको यह प्रमाण तो वहां देना चाहिये जो मूर्ति को मूर्ति ही नहीं मानता हो। इस तरह यहां श्रापकी उक्ष दलील भी मनोरध सिद्ध करने में श्रसफल ही रही।



१९-नाम नित्तेष वन्दनीय क्यों १

प्रश्त—भाव निद्येष को ही बम्दनीय मानकर अन् निद्येश को अवन्दनीय कहने वाले नाम स्मरण यानामनिद्येश को बंदनीय सिद्य करते हैं या नहीं?

उत्तर—गह परम भी खज्ञानता से खोत पीत हैं, इन नाम तिंतप को वन्दनीय मानते ही नदी, यदि हमनाम निंता को दा वन्दनीय मानते तो खुराम,नेमि, पाश्ये, महाधीर खादि नाम बाजे मनुष्यों को जो कि तीर्यकरों के नाम निर्देश में दें उनको वन्दना नमस्कार खादि करते, किन्तु गुण्यस्य नाम

निजय को इम वा कोई भी युद्धियाली मनुष्य या स्वयं भूति (बह दा वस्त्रीय, प्तरीय नदी मानते, प्रमी म्हरत में गृण इन्द स्वावना निजय को वस्त्रीय प्रानीय मानते वाले दिस बहदर हो दमान हहे जा सकते है।

दम तो नाम जेकर पहला नमस्कार एवं किया कार्न है. बंद प्रनम्न आतो हमें पुन्ह के देवस जगद्यकारी, गुक्छणान में अला एमें नोपंकर बनु की नया उनके गुणी की मंद्र इस पत्ते विल्वपूष्ट्य प्रमुखा स्थान कर्तन है तम दूमगी कल्पनानुसार प्रभु हमारे नेत्रों के सम्मुख दिखाई देते हैं, हम श्रतिशय गुण्युक्त प्रभु के चरणों में श्रपने को समर्पण कर देते हैं, भक्ति से हमारा मस्तक प्रभु चरणों में भुक जाता है श्रीर यह सभी किया भाव नित्तप में है, ऐसे भाव युक्त नाम समरण को नाम नित्तेष में गिना श्रीर इस श्रोट से मूर्ति पूजा को उपादेय कहना यह स्पष्ट श्रद्धता है।



१९-नाम नित्त्व वन्दनीय क्यों !

भरन—भाव निदेश को ही वस्त्रतीय मानकर अन् निदेश को अवस्त्रनीय कहने वाले नाम स्मरण यानाम निकेश को वंदनीय सिंव करते हैं या नहीं?

उत्तर—गह परम भी श्रद्धानता से श्रोत प्रोत है, इन नाम निशेष को वन्दनीय मानते ही नहीं, यदि हमनाम निशेष को हो वन्दनीय मानते तो श्रद्धपम, नेमि, पाश्ये, महाशीर शाहि नाम बाते मनुष्यों को श्रो कि तीयकरों के नाम निशेष में हैं इन को वन्दना नमस्कार श्रादि करते, किन्तु गुणशून्य नाम

निश्वप को इम या कोई मी पुरिशाली मगुष्य या स्थयं भी पिक्स हो वन्दनीय, पूजनीय मही मानते, एमी महूरत में गुण्ड इन्द क्यायना निश्वप को वन्दनीय पूजनीय मानते वाले कि व इन्द क्यायना निश्वप को वन्दनीय पूजनीय मानते वाले कि व

दम को नाम तेकर वस्ता नमस्कार स्व किया करते हैं। धर अवस्वकानी कमें कुछ के देवच जगतुपकारी, कुक्तामार के सन्त वसे तोचेकर अनु की तथा उनके गुणी की कर इन दल जिल्लाहुत्य अनु का स्थान करते हैं। तब हमारी कह्यनानुसार प्रभु हमारे नेत्रों के सम्मुख दिखाई देते हैं,हम ग्रतिशय गुण्युक्त प्रभु के चरणों में अपने को समर्थण कर देते हैं, भिन्त से हमारा मस्तक प्रभु चरणों में भुक जाता है श्रीर यह सभी किया भाव निच्च में है, ऐसे भाव युक्त नाम स्मरण को नाम निच्च में गिना श्रीर इस श्रोट से मूर्ति पुजा को उपादेय कहना यह स्पष्ट श्रश्वता है।



१७—'शकर के खिलीने'

प्रस्त--राज्यार के यने हुए खिलीने-हाथी, वीर्षेत्र गाय, मेंस, ऊंट, कयूनर प्रादि को घाय खाते हैं या नहीं यदि उनमें स्वायमा दोने से नहीं खाने दो नो स्वायमा भित्रेष सन्दर्भाय सिद्ध दुया, या नहीं ?

उरार—दम गाय मेल जादि की आहति के बने दुर्ग सनकर के जिलोन नहीं लाने, क्योंकि यह स्थापना निजा है, स्थापना निजाप को मानने याला, उस स्थापना को न ती नेड़ना है और न स्थापना की सीमा से अधिक महत्य में दग है। यदि पंते स्थापना निजाप युक्क शिलीने की की बाँ बाँ या तोड़ नेट यह स्थापना निजाप का भड़कनो ठकरता है। और नो को है इन स्थापना को सीमातीन महत्य देकर, उनके साउन जिलान पिजान के सीमातीन महत्य देकर, उनके साउन जिलान पिजान के सीमातीन महत्य देकर, इनके की जान करादि, से दूच प्राप्त करने का ययन करें, हांची की जान करादी करने जो तो यह सबे साधारण के मानने जो का स्थापन ही की साजान नानकर जी वस्ता, पुणा, कर्म काशिद करते हैं वे भी तीन वर्ष के तत्त्तु के छोटे भाई के समान ही वुद्धिमान (१) है ।

हमारे सामने तो ऐसी दलील ध्यर्थ है, यह युक्ति तो वहां देनी चाहिए कि जो स्थापना नित्तेप को ही नहीं मानकर ऐसे खिलीने को भी नहीं खाते हो, किन्तु श्राश्चर्य तो तय होता है कि—जब यह दलील मू० पू० श्राचार्य विजयलिध-स्रिती जैसे विद्वान के कर कमलों से लिखी जाकर प्रकाश

में शाई हुई देखते हैं।

नक्शे को नक्शा, चित्र को चित्र मानना तथा आवश्यकता पर देखने मात्र तक ही उसकी सीमा रखना यह स्थाकता पर देखने मात्र तक ही उसकी सीमा रखना यह स्थाकता पर देखने मात्र तक ही उसकी सीमा रखना यह स्थापना सत्य मानने की शुद्ध श्रद्धा है, नक्शे चित्र श्रादि को
पना सत्य मानने की शुद्ध श्रद्धा है, नक्शे चित्र श्रादि को पत्थर ही
केवल कागज का डुकड़ा या पापाण मय मूर्ति को पत्थर ही
केवल कागज का डुकड़ा या पापाण मय मूर्ति के साथ
कहना ठीक नहीं, इसी प्रकार नक्शे चित्र या मूर्ति के साथ
साज्ञात् की तरह बतीव कर लड़कपन दिखाना भी उचित
नहीं।

जम्बुद्धीप के नक्शे को श्रीर उसमें रहे हुए मेरू पर्वत को केवल कागज का दुकड़ा भी नहीं कहना, श्रीर न उसको जम्बुद्धीप या सुदर्शन पर्वत समभक्तर दीव मचाना, चढ़ाई करना। इसके विपरीत चित्र श्रादि के साथ सात्तात् का सा व्यवहार कर श्रपनी श्रवता जाहिर करना सुद्धों का कार्य नहीं है।

नहीं है।

हम मूर्ति पूजक वंधुओं से ही पूछते हैं कि—जिस प्रकार

हम मूर्ति पूजक वंधुओं से ही पूछते हैं कि—जिस प्रकार

हम मूर्ति को साज्ञात् रूप समक्त के वन्दन पूजन करते हैं,

हम मूर्ति को साज्ञात् रूप समक्त के वन्दन पूजन करते हैं,

हमी प्रकार क्या, कागज या मिट्टी की वनी हुई रोटी तथा

उसी प्रकार क्या, कागज या मिट्टी की वादाम, खारक आदि

शिल्पकारों द्वारा वनी हुई पापाण की वादाम, खारक आदि

१७—'शकर के खिलोने'

परन-- एक्कर के पने हुए खिलीने - हाबी, धोरे गाय, मेंस, फंट, कब्तर प्रादि को प्राप खाते हैं या नहीं यदि उनमें स्थापना होने से नहीं खाते हो तो स्थापना बिहें बन्दमीय सिद्ध हुआ. या नहीं ?

उत्तर—दम गाय मेंस आदि की आछित के स्ने स्व रा कार है शिलीन नदीं खाने, क्योंकि यह स्थापना जिला है, स्वापना निर्माण की मानने याला, उस स्थापना की तर्ग वाइना है और न स्थापना की मीमा से अधिक महत्व की दश है। यदि एसे सापना निर्माण युक्त सिलीने की की को को या ने हे ने यह स्थापना निर्माण का महक्तनी उद्दरता है, और को कोई उस स्थापना को मीमातीन महत्त्व देवह, अके धीर गाय, मेंशादि, से दूध मान करने का प्रयस्त करे, हाली यो पह स्वाहर हरने लगे नो यह सबे साधारण के मानने

नात हो है बातह से अधिक तुत्र नहीं कथा जा सकता। इस्ते बहार नृति को सामान् नातहर को वस्ता, पुत्रा, सह स्कारादि करते हैं वे भी तीन वर्ष के तल्लु के छोटे भाई के समान ही वुद्धिमान (?) है।

इमारे सामने तो ऐसी दलीलं व्यर्थ है, यह युक्ति तो वहां देनी चाहिए कि जो स्थापना निच्चेप को ही नहीं मानकर ऐसे खिलौने को भी नहीं खाते हो, किन्तु आर्च्य तो तय होता है कि-जब यह दलील मू० पू० आचार्य विजयलिंध-सूरिजी जैसे विद्वान के कर कमलों से लिखी जाकर प्रकाश

नक्शे को नक्शा, चित्र को चित्र मानना तथा आवश्य-में गाई हुई देखते हैं। कता पर देखने मात्र तक ही उसकी सीमा रखना यह स्था-पना सत्य मानने की शुद्ध श्रद्धा है, नक्शे चित्र श्रादि को केवल कागज का दुकड़ा या पाषाण मय मूर्ति को पत्थर ही कहना ठीक नहीं, इसी प्रकार नक्यों चित्र या मूर्ति के साथ साजात् की तरह बर्ताव कर लड़कपन दिखाना भी उचित

जम्बुद्वीप के नक्यों को और उसमें रहे हुए मेरू पर्वत को केवल कागज का दुकड़ा भी नहीं कहना, और न उसको नहीं । जम्बुद्धीप या सुदर्शन पर्वत समभाकर दोड़ मचाना, चढ़ाई करना। इसके विपरीत वित्र आदि के साथ साचात् का सा च्यवहार कर अपनी अवता जाहिर करना सुद्धों का कार्य

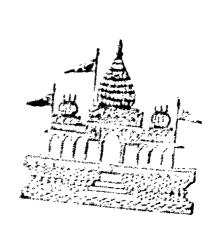
हम मूर्ति पूजक वंधुश्रों से ही पृछ्ते हैं कि-जिस प्रकार श्राप मूर्ति को साझात रूप समभ के वन्दन पूजन करते हैं, उसी प्रकार क्या, कागज या मिट्टी की बनी पुर्व रोटी तथा उसा प्रकार क्या वनी हुई पाषाण की वादाम, खारक आदि

(=8)

वस्तुषं सा लेंगे ? नहीं, यह तो नहीं करेंगे। फिर तो आप मूर्ति पूजकता अधूरी ही रह गई ?

निय वंशुब्रों ? सोचो, ब्रीर हुउ के। बोड़कर सत्य स कार करो इसीमें सच्चा हित है। अन्यथा परचात्ताव कर

पहुंगा।

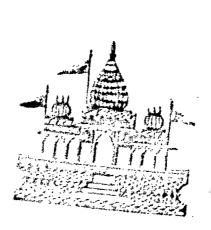


१८—पति का चित्र

प्रश्न-जिसका भाव वन्दनीय है उसकी स्थापना भी वन्दनीय है, जिस प्रकार पतिवता स्त्री अपने पति की अनु-पस्थित में पति के चित्र को देख कर आनन्द मानती है, पति मिलन समान सुखानुभव करती है, उसी प्रकार प्रभु मूर्ति भी हदय का आनन्दित कर देती है, अतएव वन्दनीय है, इसमें आपका क्या समाधान है ?

उत्तर-यह तो हम पहले ही बता चुके हैं कि—चित्र की मर्यादा देखने मात्र तक ही है इससे श्रधिक नहीं। इसी प्रकार पति मूर्ति भी देखने मात्र तक ही कार्य साधक है, इससे श्रधिक प्रेमालाप, या सहवास श्रादि खुख जो साज्ञात् से मिल सकता है मूर्ति से नहीं। पतित्रता स्त्री के पति की, मजुपस्थिति में यदि चित्र से ही प्रेमालाप श्रादि करते देखते. हो या चित्र से विधवाएं सधवापन का श्रजुभव करती हों तब तो मूर्ति पूजा भी माननीय हो सकती है, किन्तु ऐसा कहीं भी नहीं होता फिर मूर्ति ही साज्ञात् की तरह पूजनीय कैसे हो सकती है ! श्रतप्य जिसका भाव पूज्य उसकी स्था यस्तुवं सा लेंगे ? नहीं, यह तो नहीं करेंगे। फिर तो आपही मृति प्रकता अध्रो ही रह गई ?

निय वंशुओं ? सोचो, और द्वड के। होड़कर सत्य औं कार करो इसीमें सच्चा दित है। अन्यथा पश्चात्ताप करता





पना पूज्य मानने का सिद्धान्त भी प्रमाण एवं युक्ति से वि चित्त सिद्ध होता है।

यहां फिलने दो अनिमद्मवन्तु यह प्रश्न का थेउले हैं कि-'जव पतिचित्र से मिलन सुष नहीं पा सकती तो कंवल पित्रः' रम प्रकार नामस्मरण करने से दी क्या सुख पा सकती । इससे तो नाम स्मारण भी अनुचित उद्देगा ? " इम निप्र में इन भांब भाइयों से कहता हूं कि-जिस प्रकार चित्र लान नहीं उमी बकार मात्र वाणी द्वारा नामांचारण करे नी नहीं। हों नाव द्वारा जो पति की मौजूदगी के माग स्थिति पदना, एवं परस्पर इविद्यत सुमानुगवका सा मनं पर वह स्त्री उप समय प्रपति विध्यापत भूलकर पूर्व भववापन की स्थिति का अनुगत । लगती है, उस समय उसके सामने भूत कालीन मुसानु सी यदनाएँ चड़ी ही जाती हैं, और उनका साम वद मधने की उभी गये सुझहे जमाने में हमक का ही वरुषता वात करवेती है। इसीलियं ती प्रक्रवारी की प्र काम नीवी हा समरण नहीं करने का आदेश देकर प्रभु ने ह बाई बनादी है। बनएव यह समित्रवे कि जी कुछ भी ब कार्त है यह नाथ निर्वाप से ही है। स्थापना से नहीं। निर्म ने में निषय से राग नाय होते का कहका मुं० प् इरता बाइन हो, तो उसका समाचान उद्योगने (पाले) King a stage

१६--स्त्री-चित्र स्रौर साधु

प्रश्न जैसे श्ली चित्र देखने सेकाम जागृत होता है और इसी से ऐसे चित्रमय मकान में साधु को उतरने की मनाई की गई है, वैसे प्रभु चित्र या मूर्ति से भी वैराग्य प्राप्त होता है, फिर आप सूर्ति पूजा क्यों नहीं मानते?

उत्तर क्यां चित्र से काम जागृत हो उसी प्रकार प्रभु मूर्ति से वैराग्य उत्पन्न होने का कहना यह भी असंगत है। क्योंकि क्यां चित्र से विकार उत्पन्न होना तो स्वतः सिद्ध और प्रत्यत्त है।

सुन्दरी युवती का चित्र देखकर मोहित होने वाल तो पति शत ६६ निन्याणवे मिलंगे, वैसे ही साचात् सुन्दरी को देखकर भी मोहित होने वाल वहुत से मिल जायँगे। किन्तु साचात् त्यागी वीतरागी प्रभु-या मुनि महात्मा को देखकर वैराग्य पाने बाले कितने मिलंगे ? क्या प्रतिशत एक भी मिल सकेंगा ?

संसार में जितनी राग भाव की प्रचुरता है उसके लतांश में भी वीतराग भाव नहीं है, और इसका खास कारण यह है कि—जीव मनादि काल से मोहनीय कर्ममें रंगा हुआ है, संसार पना पूज्य मानने का सिद्धान्त भी प्रमाण पर्व युक्ति से अधित सिद्ध होता है।

यहां कितने दी मननिदाबन्दु यह प्रश्न का धैउते हैं कि-'त्र^{त क्री} पतिचित्र से मिलन सुख नहीं पा सकती तो कंवल पति, पति रम प्रकार नामस्मरण करने से दी क्या सुख पा सकता 👫 इमसे तो नाम समारण भी अनुचित ठहरेगा ? " इस विवर में इन भाले भारयों से कहता है कि—जिस प्रकार चित्र में लान नहीं उसी प्रकार मात्र वाणी द्वारा नामोंचारण करंते है मां नहीं। हां नाव द्वारा जो पति की मोजूदगी के समय ह स्थिति घटना, एवं परस्पर इच्छित सुखानुभव का साल सर्व पर वह भी उस समय प्रपत विधवापत है न्त्रकर पुत्रे स्थयापन की स्थिति का अनुनव हार लगती है, उस समय उसके मामने भृत कालीन गुधानुतर ही घडनाय खड़ी हो जाती है, और उनका समरन है वद अपने को उसी गये गुजरे जमाने में रूमक का की यस्यता याच सरवेती है। इसीलिये ती ब्रह्मयारी से प्री भान नामी हा भारण नदी करने का आदेश देकर यानु ने % भार बनादी है। अनापन पड समितिय कि जो कुछ भी भी वर्षत है पर भाव निर्राण से ही है। स्थापना से नहीं। तिस् नी जो वित्र से गांग नाव होते का कद कर मुं० पे० विने श्रमा बार्त हो, तो उपका प्रमाधान उन्नासर्वे (माले) । & sme it that

१६--स्त्री-चित्र और साधु

प्रश्न जैसे स्नी चित्र देखने सेकाम जागृतहोता है और इसी से ऐसे चित्रमय मकान में साधु को उतरने की मनाई की गई है, वैसे प्रभु चित्र या मृति से भी वैराग्य प्राप्त होता है, फिर आप मृति पूजा क्यों नहीं मानते?

उत्तर को चित्र से काम जागृत हो उसी प्रकार प्रभु मूर्ति से वैराग्य उत्पन्न होने का कहना यह भी असंगत है। क्योंकि की चित्र से विकार उत्पन्न होना तो स्वतः सिद्ध और प्रत्यत्त है।

सुन्दरी युवती का चित्र देखकर मोहित होने वाले तो प्रति शत ६६ निन्याणवे मिलंगे, वैसे ही सात्तात् सुन्दरी को देखकर भी मोहित होने वाले वहुत से मिल जायँगे। किन्तु सात्तात् त्यागी वीतरागी प्रसु-या मुनि महात्मा को देखकर वैराग्य पाने वाले कितने मिलंगे? क्या प्रतिशत एक भी मिल सकेगा?

संसार में जितनो राग भाव की प्रचुरता है उसके लग्नांश में भी बीतराग भाव नहीं है, और इसका खास कारण यह है कि जीव मनादि काल से मोहनीय कर्म में रंगा हुआ है, संसार पना पूज्य मानने का सिद्धान्त भी प्रमाण एवं गुनित से व धित सिद्ध होता है।

यहां फितने हो अनिमन्न बन्ध यह प्रश्न का बैठते हैं कि-'जब क पतिस्त्रिय से मिलन सुख नदी पा सकती तो कंवल पनि पि इम प्रकार नामसमरण करने से दी क्या सुख गा सकती है इमसे तो नाम स्मारण भी अनुचित ठढरेगा ? " इस विका में इन भाज गाइयों से कहता है कि-जिस प्रकार विव लान नहीं उमी प्रकार मात्र वाणी द्वारा नामोधारण करने। मी नहीं। हो मात्र द्वारा जो पति की मीजूत्मी के समा स्थिति घटना, एवं परस्पर इच्छित सुझानुमव का सा मने पर वर्ष औ उस समय प्रपति विधवापत न्तमर पूर्व संभवापन की स्थिति का अनुसर है। त्राता है, इस एमय उगके मामने भूत कालीन गुवानुन ध्ये यदनाय स्वज्ञी हो जाती है, और उनका सारने ह वड अपने की उनी गये गुजरे जमाने में हमक कर ही वरुवना वात धरवनी है। इसीलियं ती ब्रह्मचारी की पूर्व काम नेत्यों का समरण नहीं करने का आदेश देकर प्रमुत्रे औ का इ बनाइंट है। प्रतापन यह समिति कि जो दुर्ध भी नी छोन है १९ मध्य निश्चय से दी है स्थापना से नहीं । विस् नी भी विश्व की गाम नाच होने का कद कर मुर पुर विशे करना चारते हो, तो उसका समाधान द्रशास्त्र (मार्च) रहे d inthe finite

१६--स्री-चित्र स्रोर साधु

परन जैसे स्ना चित्र देखने सेकाम जागृतहोता है और इसी से ऐसे चित्रमय मकान में साधु को उतरने की मनाई की गई है, वैसे प्रभु चित्र या मूर्ति से भी वैराग्य पाप्त होता है, फिर आप मूर्ति पूजा क्यों नहीं मानते?

उत्तर - र्ह्मा चित्र से काम जागृत हो उसी प्रकार प्रभु मूर्ति से वैराग्य उत्पन्न होने का कहना यह भी असंगत है। प्योंकि - स्त्री चित्र से विकार उत्पन्न होना तो स्वतः सिद्ध और पत्यच है।

सुन्दरी युवती का चित्र देखकर मोहित होने वाले तो प्रति शत ६६ निन्याणवे मिलेंगे, वैसे ही साचात् सुन्दरी को देखकर भी मोहित होने वाले वहुत से मिल जायँगे। किन्तु साचात् त्यागी वीतरागी प्रभु-या मुनि महात्मा को देखकर वेराग्य पाने वाले कितने मिलेंगे ? क्या प्रतिशत एक भी मिल सकेंगा ?

संसार में जितनी राग भाव की प्रचुरता है उसके लक्षांश में भी बीतराग भाव नहीं है, और इसका खास कारण यह है कि—जीव मनादि काल से मोहनीय कर्म में रंगा हुआ है, संसार पना पूज्य मानने का सिद्धान्त भी प्रमाण एवं युपित से व धित मिद्ध होता है।

यहां कितने ही अनिमन्न बन्दु यह प्रश्न का बैठते हैं कि^{-134 क} पनिचित्र से मिलन सुख नहीं पा सकती तो कंवल पनि, पी रम प्रकार नामस्मरण करने से ही क्या सुख्र गा सकती है इमसे तो नाम स्मारण भी अनुचित उद्दरेगा ? " इस विका में इन माल माइयों से कहता है कि-जिस प्रकार विश्व लान नहीं उसी प्रकार मात्र वाणी द्वारा नामांचारण करते। नो नहीं। हो नाव बाग जो पति की मोजूतगी के समय । स्थिति घटना, एवं परस्पर इडिझत मुखानुगव का सा हरने पर यह स्था उस समय अपने विधवापत है नुलकर पूर्व मधवापन की स्थिति का अनुनव हा बनता है, उस रामय उमाहे मामने भूत कालीन गुमानुह हो पड़नाए भूत हो जाती है, और उनका सार्थ ह वह भयत का उद्योगय गुजर जमाने में हमक कर औ क अना पान कर नेता है। इस्तिशिय तो ब्रह्मचारी की पूर्व भाज मोगों मा भागा नहीं प्राने का आदेश देका अनु ने औ काइ बनाहा है। मनएव यह समित्य कि जो हुई भी भी राति है भा भाव निशेष में दी है स्वापना से नहीं। जिस नी जो चित्र में गांग नाच होने का कहका मुं० पि धरना चारते हो, तो उसका समाचान उभीसवें (मार्च) अ dint i this

१६--स्नी-चित्र स्रौर साधु

प्रश्न जिसे की चित्र देखने सेकाम जागृतहोता है और इसी से ऐसे चित्रमय मकान में साधु को उतरने की मनाई की गई है, वैसे प्रभु चित्र या मृति से भी वैराग्य पाप्त होता है, फिर आप मृति पूजा क्यों नहीं मानते?

उत्तर — स्त्री चित्रं से काम जागृत हो उसी प्रकार प्रभु मूर्ति से वैराग्य उत्पन्न होने का कहना यह भी असंगत है। प्रयोकि — स्त्री चित्र से विकार उत्पन्न होना तो स्वतः सिद्ध और प्रत्यत्त है।

सुन्दरी युवर्ता का चित्र देखकर मोहित होने वाल तो प्रति शत ध्ध निन्याणवे मिलेंगे, वैसे ही साज्ञात् सुन्दरी को देखकर भी मोहित होने वाल वहुत से मिल जायँगे। किन्तु साज्ञात् त्यागी वीतरागी प्रभु-या मुनि महात्मा को देखकर वैराग्य पाने वाले कितने मिलेंगे ? क्या प्रतिशत एक भी मिल सकेंगा ?

संसार में जितनी राग भाव की पशुरता है उसके लक्षांश में भी वीतराग भाव नहीं है, और इसका खास कारण यह है कि—जीव मनादि काल से मोहनीय कर्म में रंगा हुआ है, संसार

वेठे हैं, किन्तु उसी समय कोई सुन्दरी युवित वह्नाभूपण से रूज हो नूपुर का भङ्कार करती हुई उस व्याख्यान सभा के समीप होकर निकल जाय तब आप ही वताइये, कि उस युवती का उधर निकलना मात्र ही उन त्यागी महातमा के घंटे यो घन्टे तक के किये परिश्रम पर तत्काल पानी फिरादेगा या नहीं ? अधिक नहीं तो कुछ चण के लिए तो सुन्दरी श्रोतागण का ध्यान धारा प्रवाह से चलती हुई वैराग्यमय व्याख्यान धारा से हटा कर अपनी ओर खींच ही लेगी, और इस तरह श्रोताओं के हृदय से बढ़ती हुई वैराग्य धारा को एक बार तो अवश्य खिडत कर देगी। और धो डालेगी महातमा के उपदेश जन्य पवित्र असर को। भले ही वह साचात स्त्री नहीं होकर स्त्री वेप धारी वह स्तिपया ही एयों न हो ?

(२) आप अपना ही उदाहरण लीजिए, आप मिन्द्रर में मूर्ति की पूजा कर रहे हैं, आप का मुंद त्यागी की मूर्ति की मूर्ति की पूजा कर रहे हैं, आप का मुंद त्यागी की मूर्ति की ओर होकर प्रवेश द्वार की तरफ पीठ है। आप वाहर से आने ओर होकर प्रवेश द्वार की तरफ पीठ है। आप वाहर से आने वाले को नहीं देख सकते, किन्तु जब आपकी कर्णेन्द्रिय में दर्शनार्थ आई हुई स्त्री (भले ही वह सुन्द्ररी और युवती न हो) दर्शनार्थ आई हुई स्त्री (भले ही वह सुन्द्ररी और युवती न हो) के चरणाभूपण की आवाज सुनाई देगी, तव आप शीव ही अपने मन के साथ शरीर को भी वीतराग मूर्ति से मोड़कर प्रकार मान के साथ शरीर को भी वीतराग मूर्ति से मोड़कर परकार आगत स्त्री की तरफ दिएपात तो अवस्य करेंगे। परकार आगत स्त्री की तरफ दिएपात तो अवस्य करेंगे। उस समय आपके हदय और शरीर को अपनी ओर रोक रखने उस समय आपके हदय और शरीर को अपनी ओर रोक रखने उस मुर्ति एक दम असफल सिद्ध होगी। कहिये, मोहराज में वह मूर्ति एक दम असफल सिद्ध होगी। कहिये, मोहराज की विजय में फिर भी कुछ सन्देह हो सकता है क्या ? और लीजिए:—

(३) एक कमरे में तीर्यंकरों महात्मामों, देश नेतामों के सनेक चित्रों के साथ एक श्रुक्तार युक्त युवित का चित्र भी एक



जानकर हलका वस्न नहीं लेंगे. किन्तु नौका विद्यारिणी के सुन्दर और माकर्वक चित्र को लेने की तो आप भी इच्छा करेंगे। माज प्रचार के विचार से वलों पर भद्दे और अश्लील चित्र भी माने लगे हैं और मैंने ऐसे कई मन चले मनुष्यों को देखे हैं जो मोहक चित्र के कारण ही एक दो माने अधिक देकर वस्न खरीद लेते थे।

इस प्रकार संसार में किसी भी समय कामराग की अपेता वैराग्य अधिक संख्या के संख्यक मनुष्यों में नहीं रहा भूतकाल के किसी भी युग में (काल) ऐसा समय नहीं आया कि-जब मोहराग से विराग अधिक प्राणियों में रहा हो।

तीयंकर मूर्ति यदि नियमित रूप से सभी के हृद्य में वेराग्योत्पादक ही हो तो-आये दिन समाचार पत्रों में ऐसे समाचार प्रकाशित नहीं होते कि—"अमुक पाम में अमुक मिन्दर की मूर्ति के आभूषण चोरी में चले गये, धातु की मूर्ति ही चोर ले उड़े अमुक जगह मूर्ति खिणडत करडाली गई, आदि इन पर से सिद्ध हुआ कि वीतराग की मूर्ति से वेराग्य होना नियमित नहीं है। वेराग्य भाव तो दूर रहा पर उल्टा यह भी पाया जाता है कि चोरी और द्वेप जैसे दुष्ट भाव की भी मूर्ति उत्पादिका बन जाती है, क्योंकि—उसके बहुमूल्य आभूषण या स्वयं धातु मूर्ति आदि ही चोर को चोरी करने को परणा करते हैं, बहुमूल्यत्व के लोभ को पदा कर मूर्ति चोरी करवाती है, और द्वेपी आततायी के मनमें मूर्ति तोड़ने के भाव उत्पक्ष कर देती है। इससे तो मूर्ति निन्दनीय भावोत्पादिका भी ठहरी।

सतपव सरत युद्धि से यद्दी समभो कि स्री चित्र से रागी।

व्यव होना स्वानाधिक है। किन्तु मूर्ति से वैराग्योलक हो। नियभित नहीं । क्योंकि-वेरास्य भाव मीह के स्योपक मं उत्पन्न होता है, और दायोपशम भाव बाले महालागी र निज तो संसार के सभी दश्य पदार्थ वेरास्योत्पात्क है पटने हैं, जेसे समुद्रपालजी की चौर, निमराजर्षि की कार् नर्गरचर को मुद्रिका, मादि ऐसे जायोगपामिक माव वाली है िवयं भति हो कोई लारू आवस्पकता नहीं, ओरदर्स की विष म दूर रहा फिल्दु माधान देवांगना भी चलित नहीं कर सकता र तो उलाने नी तरास्य पहण कर जेते हैं और यह भी निधत न इति है । यह वस्तु से सनी के उदय में एक दो प्रकार के बार १२४ व केल हो. धाकाल बोरा प्रभु हो दो लीजिय जो परभ बीतगरी क्लांन्द्रवः वामा महायमा थे, किर भी उनकी वृक्कर युवीत्वी से राज बाज से सब बीट बनावी की चीट एसमेर हो १६ ता ६ इन्द्रज्ञ इर भोर नहार अनी अ हुद्द्य में स्थाम और वं ह वेच हा बचार तेताचा आगे यह मित्र तुमाहित् રહ્યાનું લગા કે દરવાને ગઢ તો વલાર વેંગાવ પ્રમાત્ર પ્રાથ न र न र नहीं है। उप इत्य नाच चान का मानान् प्रनुही इंडाल्फारक नहीं हराल है से पृति विद्या विनर्ता में है ? दूसा ें। र स्थार जा किन इसने सामनाई दें, वेस प्रमुचित्र क्ली र्य भागा रा भरा या नहीं के हत्य नव्य किया क्या विश्व े ४४ ते होत्वे अस्त होता किंग प्रहार गर्वे और घरते हैं। २० करात पहलाने से अराजीताच रामा सहज मही। फिल्ड र इ.स. इ. न्यार्टर प्रत्य आपदा पड अनुसाना और नाम े इस्त्र होड़ा इर होल हमान नी निवा गय तो भी भी र. न नहीं है। क्येरिया रिवास प्रकार और विश्व रू**लने तक हैं** काई का दूरण काल की विकास के शिक्षण किया में

भालिंगन चुम्बनादि कुचेष्टा नहीं करता, उसी प्रकार प्रभु मूर्ति की रुचि वाले के लिये देखने तक ही हो सकती है, ऐसी हालत में मूर्ति की सीमातीत वन्दना पूजनादि रूप भक्ति फ्यों की जाती है। ऐसा करना आप के उक्त उदाहरण से घट सकता है क्या ? अतपव यह उदाहरण भी मूर्ति पूजा में विफल ही रहा।



२०--हुएडी से मूर्तिकी साम्पता

यरम—जब कोई घनी व्यापारी जाननी किसी विशेष स्थित इसान के नाम किसी प्रमुख्य को दूसकी लिखने तन वह प्रमुख उस इस्ती के जिस्से लिखित यपि प्राप्त कर में इसा है, बनावि यह स्थापना निश्चय का प्रमाय नहीं तो स्था है। इस में जितने दस्ये देने हैं लिखे हैं वह स्थान की

इसार — इसन प्रथम स्वापना निज्ञा का रतेयन और नाम है, यह प्रथम यह स्थान में रथना नाष्ट्रिय कि हमाला नि इर लाउन में अनि जिय प्रथम कोई पायाल कार की है है जिल्ली वालाल को स्थापना की गई ही प्रापत की राज ने सालाल को से स्थापना का स्व र प्रापत है, प्रथिक इस्टर स्था नाम निजय में है, दूसरेंग्रे नेन जाने की उनके जिल्ला है राजन प्रथम पर से पास हुई है, और दूसरी को प्रकास है राजन नाम जिल्लोंग्रे कीर शिकार का मोंग्रे करी यदि हुएडी का भाव सत्य नहीं हो, लिखने शिकारने वाले श्रयोग्य हो तो उस हुएडी का मूल्य ही क्या ? यों तो कोई राह चलता ले भग्गु भी लिख डालेगा, तो क्या वह भी स-स्वी नगरी की तरह कार्य साधक हो सकेगी?

च्ची हुएडी की तरह कार्य साधक हो सकेगी ?

हुएडी: की स्थापना हुएडी की नकल याने प्रतिलिपि है,
यदि कोई मनुष्य हुएडी की नकल करके उससे रुपये प्राप्त
करने जाय तो वह निराश होने के साथ ही विश्वासघातकता
करने जाय तो वह निराश होने के साथ ही विश्वासघातकता
के श्रभियोग में कारागृह का श्रतिथि वन जाता है। श्रतप्य
यह सत्य समिनेये कि हुएडी स्वयं भाव नित्तेष में है किन्तु
स्थापना में नहीं, स्थापना में तो हुएडी की नकल है जो हुएडी
के बरावर कार्य साधक नहीं होती।



अधिक प्रकाशमान हैं, सागर से भी श्रंधिक गम्भीर हैं। अहो सिद्ध प्रभो ? मुक्ते सिद्धि प्रदान करो।"

यह स्तुति ही भाव प्रधान जीवन को वता रही है।

श्रव हमारे प्रेमी पाठक जरा शान्त चित्त से विचार करें श्रीर वतावें कि—चतुर्विश्रतिस्तव (लोगस्स) का कौनसा शब्द चतुर्गति में श्रमण करने वाले द्रव्य तीर्थंकरों को वंदना दि करना वतलाता है ? यह पाठ तो स्पष्ट 'सिद्ध' विशेषण लगाकर यह सिद्ध कर रहा है कि—जिन तीर्थंकरों की स्तृति की जा रही है वे सिद्ध हो चुके हैं, जिन्होंने जन्म मरण का श्रम्त कर दिया है, जिनकी श्रात्मा रज, मल रहित श्रयांत विश्वद्ध है श्रादि वाक्य प्रश्नकार की कुयुक्ति का खयं छेदन कर रहे हैं, श्रतप्व यह स्पष्ट हो चुका कि—द्रव्य नित्तेष वंदनीय पूजनीय नहीं है। श्रीर जब द्रव्य नित्तेष (जोकि—भाव का श्रधिकारी किसी समय था, या होगा) भी वंदनीय पूजनीय नहीं तो मनःकिष्यत स्थापना—मूर्ति श्रवंदनीय हो इसमें कहना ही क्या है ? यहां तो शंका को स्थान ही नहीं होना चाहिये।

३३-मरीचि वंदन

प्रश्न — त्रियष्ठिशलाका पुरुप चरित्र में लिखा है कि प्रथम जिनेश्वर ने जब यह कहाकि—"मरीचि इसी अवसिपंणी काल में मंतिम तीर्थंकर होगा" यह सुनकर भरतेश्वर ने उसके पास जाकर उसे बन्दना नमस्कार किया, इतमें तो आपको भी इन्य नित्तेप वंदनीय स्वीकार करना पड़ेगा, क्या इसमें भी कोई वाधा है?

उत्तर—हां, यह मरीचि वन्दन का कथन भी आगमप्रमाण रहित और अन्य प्रमाणों से वाधित होने से अमान्य है।

जंग

पर

ેલા ફે

समव

अव

कर इतना ही कहना चाहते हैं कि-ऐसे पंथों के प्रमाण यहां ङ्ख भी कार्य साथक नहीं हो र कते, जो यंथ उभय मान्य हो वहीं प्रमाण में रक्ष्ये जाने चाहिए अन्यया प्रमाणदाता को विफल मनोरय होना पड़ता है।

अन्तकृतद्शांग में लिखा कि चाइसवें दीर्यंकर प्रभु ने श्री रूप्ण वासुदेव को आगामी चोवीसी में वारहवें तीर्यंकर होने का भविष्य सुनाया, यह सुनकर श्रीकृत्य बहुत 🚁 पर कर-स्कोट कर दिइनाद किया। इससे कि उस समय समव सरण-स्थित चतुर्विष्ट कई योजन,दूर तक यह आवाज़ पहुंची सरण में तो सभी को इसका कारण मालूम ध्वनि श्रीकृष्णने भविष्य कथन सुनकर 👊 जनता भीर प्रभु के साधु साध्वी यह ज भविष्य में प्रभु की तरह ही दीर्थंकर हैं को झौर गृहस्थाँ को चाहिए था कि-चे भी तरह कृत्य को वन्दना नमरकार करते : मरीचि की तरह द्रव्य तीर्यंकर थे ? किन्तु दशांग देखते हैं, तय उसमें सिहनाद आदि पर वन्दनादि के लिए तो विलकुल मौन यही हाल ठाणांग सूत्र के नवमस्थान में कथन का है। जब तीर्थंकर भाषित सूत्रों से भी नहीं मिलती दो अन्य पन्थों में कैसे मीर त्रिपष्टिशलाका पुरुष चरित्र के र ज्ञान द्वारा यह सब जाना ? किसी भी ज़रियं विद्वत्ता पूर्वक रचडालने से ही वह हकती। इस प्रमाण के वाधक कुछ 🔫 ६९

(क) कोई युनकर कपड़ा युनने को यदि सूत लाया है उस सूत से वह कपड़ा दनावेगा, वर्मान में वह कपड़ा नहीं पर सूत हो है। फिर भी वह युनकर यदि सूत को ही कपड़े के मृत्य में देंचता चाहे या खरीदने वाले से उस सूत को देकर कल का मृत्य लेना चाहे तो उसे निराश होना पड़ता है। क्यों कि वह वर्तमान में सूत है उससे वल के दाम नहीं मिल सकते। इसी पकार भविष्य में उत्पन्न होने वाले गुण को लद्य कर वर्तमान में उन उत्तम गुणों से रहित व्यक्ति को वैसा मान

नहीं दिया जा सकता ।

(ख) कोई शिल्प—कार मूर्ति वनाने के लिए एक पापाण (ख) कोई शिल्प—कार मूर्ति वनाने के लिए एक पापाण लएड लाया है उस पापाण की वह मूर्ति वनानेगा उस पर काम भी करने लग गया है किन्तु मनी तक मूर्ति पूर्ण रूप से काम भी करने लग गया है किन्तु मनी तक मूर्ति पूर्ण रूप से मूर्ति नहीं है, इतने में ही कोई मूर्ति-पूजक आकर उससे मूर्ति माँगे, तब वह शिल्पकार यदि कहदे कि-यह अपूर्ण मूर्ति ही ले लो तो क्या वह मूर्ति पूजक उस अपूर्ण मूर्ति को पूरे दाम देकर लो तो क्या वह मूर्ति पूजक उस अपूर्ण मूर्ति को पूरे दाम देकर लगेदिगा ? जहीं यथिए वह भविष्य में पूर्ण रूप से ठीक वन जायगी पर वर्तमान में अपूर्ण है, इस लिए व्यवहार में भी उसका पूराः मूल्य नहीं मिल सकता, तो धर्म कार्य में द्रव्य नित्तेष वन्दनीय पूजनीय कैसे हो सकता है ?

ाजप वन्द्रनाथ पूजनाय करिया के विद्या है, जो भविष्य में (ग) एक गाय की छोटी की विद्या है, जो भविष्य में गाय बन कर दूध देगी, किंतु हमारे मृति पूजक प्रश्नकार के गाय बन कर दूध देगी, किंतु हमारे मृति पूजक प्रश्नकार के मतानुसार उस विद्या से ही जो कोई दूध प्राप्त करने की मतानुसार उस विद्या से ही जो उस जैसा मूर्ख शिरोमणि संसार में इच्छा से किया करे, तो उस जैसा मूर्ख शिरोमणि संसार में और कीन हो हकता है। जब छोटी विद्या यद्यपि गाय के प्राप्त नित्तेष में है किन्तु वर्दमान में दूध देने रूप भाव नित्तेष की कार्य साधक नहीं होती तब गुण श्रन्य द्रव्य नित्तेष वंदनीय पूजनीय किस प्रकार माना जा हकता है।

कर इतना ही कहना चाहते हैं कि—ऐसे यंवाँ के प्रमाए रहीं इन्छ भी कार्य सावक नहीं हो सकते, जो यंव उनव मान्य ही वहीं प्रमाए में रफ्ते जाने चाहिए अन्यवा प्रमाएदाता श्रे विफल मनोरय होना पडता है।

अन्तरुतद्यांग में लिमा कि वाइसवें टीर्यंकर प्रमु ने थ्री छ^{न्छ वासुदेव को ब्रागामी चोवीसी में बारहवें तीर्यंदर होने} का भविष्य सुनाया, यह सुनकर श्रीहरूरा बहुत प्रसब हुए उँघ् पर कर-स्फोट कर सिहनाद किया। इससे अनुमान होता है कि उस समय समव सरल स्थित चतुर्विध संघ टो डाँक पर कई योजन हुर एक यह आवाज़ पहुंची होगी और समृब सरस में तो सभी को इसका कारस मालूम हो गया कि-यह ष्विति श्रीहण्ण ने भविष्य कटन मुनकर इस्वता से की है। उब जनता झौर प्रभुके साधु साध्वी यह जान गये किन्धीकुणु भविष्य में प्रभु की तरह ही तीर्थं कर होंगे। तब सभी क्षेत्रहीं को और गृहस्यों को चाहिए या कि-वे भी आएके नर्तेश्वर की तरह क्र-ए को बन्दना नमरकार करते ? क्योंकि वे भी तो मराचि की तरह द्रव्य तीयंका थे ? किन्तु जब हम झन्तकुटू-द्शांग देखते हैं, तब उसमें सिंहनाद आदि का तो वर्षन हैं। पर वन्द्रनादि के लिए तो दिलकुल मौन ही पाया जाता है। यहीं हाल टार्णांग सूत्र के नदमस्थान में श्रेरिक के भविष्य कयन का है। जब तीर्यंकर मापित सूत्रों में यह दात प्रकरण से भी नहीं मिलती तो अन्य प्रन्यों में बैसे और कहां से बाई ? ब्रौर त्रिपष्टिशलाका पुरुष चरित्र के रचयिता ने किस दिव्य इान द्वारा यह सब जाना? किसी भी बात को कल्पना के जरिये विद्वता पूर्वक रचडालने से ही वह ऐतिहासिक नहीं हो हकती। इस प्रमाण के वायक उद्य उदाहरणभी दिये जाते हैं।

(क) कोई युनकर कपड़ा युनन को यि सूत लाया है उस सूत से वह कपड़ा दनावेगा, या मान में वह कपड़ा नहीं पर सूत ही है। फिर भी वह युनकर यि सूत को ही कपड़े के भूत ही देंचता चाहे या खरीदने वाले से उस सूत को देकर भूत्य में देंचता चाहे तो उसे निराश होना पड़ता है। क्यों वह्म का मृत्य लेना चाहे तो उसे निराश होना पड़ता है। क्यों कि वह वर्तमान में सूत है उससे वह्म के दाम नहीं मिल सकते। इसी प्रकार भविष्य में उत्पन्न होने वाले गुण को लहय कर वर्तमान में उन उत्तम गुणों से रहित व्यक्ति को वैसा मान

नहीं िया जा सकता।
(ख) कोई शिल्प—कार मृति वनाने के लिए एक पापाण (ख) कोई शिल्प—कार मृति वनाने के लिए एक पापाण खएड लाया है उस पापाण की वह मृति वनाने गा उस पर काम भी करने लग गया है किन्तु मनी तक मृति पूर्ण रूप से काम भी करने लग गया है किन्तु मनी तक मृति पूर्ण रूप से काम नहीं है, इतने में ही कोई मृति-पूजक आकर उससे मृति माँगे, तब वह शिल्पकार यदि कहदे कि-यह अपूर्ण मृति को पूरे दाम देकर लो तो क्या वह मृति पूजक उस अपूर्ण मृति को पूरे दाम देकर लो तो क्या वह मृति पूजक उस अपूर्ण मृति को पूरे दाम देकर खरीदेगा शनहीं यद्यपि वह भविष्य में पूर्ण रूप से ठीक वन खरीदेगा शनहीं यद्यपि वह भविष्य में पूर्ण रूप से ठीक वन खरीदेगा शनहीं यद्यपि वह सकता, तो धर्म कार्य में द्रव्य उसका पूरा मृल्य नहीं मिल सकड़ा, तो धर्म कार्य में द्रव्य नित्तेष वन्दनीय पूजनीय कैसे हो सकता है ?

ानत्तप वन्दनाय पूजनाय कल हा लकता व के (ग) एक गाय की छोटी ही विख्या है, जो भविष्य में गाय बन कर दूध देगी, किंतु हमारे मृति पूजक प्रश्नकार के गाय बन कर दूध देगी, किंतु हमारे मृति पूजक प्रश्नकार के मताजुलार उस बिख्या से ही जो कोई दूध प्राप्त करने की मताजुलार उस बिख्या से ही जो कोई दूध प्राप्त करने की इच्छा से किया करे, तो उल जैसा मूर्ज शिरोमणि संसार में इच्छा से किया करे, तो उल जैसा मूर्ज शिरोमणि संसार में भीर कीन हो हकता है। जब छोटी बिख्या यद्यपि गाय के भीर कीन हो हकता है। जब छोटी बिख्या यद्यपि गाय के प्रव्य नित्रेप में है किन्तु वर्दमान में दूध देने रूप माज नित्रेप की कार्य साधक नहीं होती तब गुण ग्रन्य दृष्य नित्रेप बंदनीय पूजनीय किस प्रकार माना जा हकता है।

(क) कोई बुनकर कपड़ा बुनने को यदि सूत लाया है उस सूत से वह कपड़ा दनावेगा, व मान में वह कपड़ा नहीं पर सूत ही है। फिर भी वह बुनकर यदि सूत को ही कपड़े के मुल्य में वेंचना चाहे या खरीदने वाले से उस सूत को देकर वुल का मृत्य लेना चाहे तो उसे निराश होना पड़ता है। क्यों कि वह वर्तमान में सूत है उससे वस्न के दाम नहीं मिल सकते। इसी प्रकार भविष्य में उत्पन्न होने वाले गुण को लक्ष्य कर वर्तमान में उन उत्तम गुणों से रहित व्यक्ति को वैसा मान

नहीं थिया जा सकता। (ख) कोई शिल्प—कार मूर्ति वनाने के लिए एक पापाण

बएड लाया है उस पापाण की वह मूर्ति वनावेगा उस पर काम भी करने लग गया है किन्तु अभी तक मूर्ति पूर्ण रूप से यनी नहीं है, इतने में ही कोई मूर्ति-पूजक आकर उससे मूर्ति माँगे, तब वह शिल्पकार यदि कहदे कि-यह अपूर्ण मूर्ति ही ले लो तो क्या वह मृतिं पूजक उस अपूर्ण मृतिं को पूरे दाम देकर सरीदेगा ? नहीं यद्यपि वह भविष्य में पूर्ण रूप से ठीक वन जायगी पर वर्तमान में अपूर्ण है, इस लिए ज्यवहार में भी उसका पूरा मूल्य नहीं मिल सकता, तो धर्म कार्य में द्रव्य

नित्तेप वन्दनीय पूजनीय कैसे हो सकता है?

(ग) एक गाय की छोटी सी विख्या है, जो भविष्य में गाय बन कर दूध देगी, किंतु हमारे मूर्ति पूजक प्रशनकार के मतानुसार उस बिह्या से ही जो कोई कूच प्राप्त करने की इच्छा से किया करे, तो उस जैसा मूर्ख शिरोमणि संसार में और कीन हो सकता है। जब छोटी विद्या यद्यपि गाय के द्रव्य निर्दोप में है किन्तु वर्तमान में दूध देने रूप भाव निर्दोप की कार्य साधक नहीं होती तब गुण ग्रन्य द्रव्य निहोप वंदनीय पूजनीय किस प्रकार माना जा सकता है। कर इतना ही कहना चाहते हैं कि—ऐसे यंथा के प्रमाल यहां इन्छ भी कार्य साधक नहीं हो सकते, जो यंथ उभय मान्य हो वहीं प्रमाल में रहन्ते जाने चाहिए अन्यथा प्रमालदाता के विफल मनोरय होना पडता है।

अन्तकृतद्यांग में लिखा कि वाइसवें टीर्थंकर प्रमु ने भी रुण्ण वासुदेव को भागामी चोवीसी में बारहवें तीर्यकर होने का भविष्य सुनाया, यह सुनकर श्रीकृरण बहुत प्रसन्न हुए ब्रह्म पर कर-स्फोट कर सिंहनाद किया। इससे अनुमान होता है कि उस समय समव सरए-स्थित चतुर्विध संघ टो डांक गर कई योजन दूर टक यह आवाज़ पहुंची होगी और समन सरण में तो सभी को इसका कारण मालूम हो गया कि पर ध्वनि श्रीकृप्णने भविष्य कदन सुनकर इसम्रता से की है। उर जनता और प्रभु के साधु साच्ची यह जान गरे कि आहर भविष्य में प्रभु की तरह ही टीर्थंकर होंगे। तब सभी समर्ग को और गृहस्था को चाहिए या कि-वे भी आपके भरतेम्बर के तरह छन्ए को वन्दना नमरकार करते ? क्योंकि वे भीं तो मरोचि की तरह द्रव्य तीर्यकार थे ? किन्तु जब हम अन्तर्भः दशांग देखते हैं, तब उसमें सिंहनाद मादि का तो वर्षन है पर वन्दनादि के लिए तो दिलकुल मौन ही पाया जाता है। यहीं हाल ठाणांग सूत्र के नवमस्थान में श्रेहिक के अविष क्यन का है। जब तीर्यंकर भाषित सूत्रों में यह बात प्रकर से भी नहीं मिलटी ट्रोजन्य दन्यों में देसे और कहां से मार्ट! और त्रिपष्टिशलाका पुरुष चरित्र के रचयिता ने किस रि^{ज्} शान द्वारा यह सब जाना ? किसी भी बात को करपना के जरियं विद्वत्ता पूर्वक रचडालने से ही वह ऐतिहासिक की हकतो। इस प्रमाण के वाधक कुछ उदाहरणभी दिये जाते हैं।

(क) कोई बुनकर कपड़ा बुनने को यदि सूत लाया है उस सूत से वह कपड़ा दनावेगा, व मान में वह कपड़ा नहीं पर सूत ही है। फिर भी वह बुनकर यदि सूत को ही कपड़े के मुल्य में देंचना चाहे या खरीदने वाले से उस सूत को देकर कल का मुल्य लेना चाहे तो उसे निराश होना पड़ता है। क्यों कि वह वर्तमान में सूत है उससे वल के दाम नहीं मिल सकते। इसी प्रकार भविष्य में उत्पन्न होने वाले गुण को लच्य कर वर्तमान में उन उत्तम गुणों से रहित व्यक्ति को वैसा मान नहीं दिया जा सकता।

(ख) कोई शिल्प—कार मृति वनाने के लिए एक पापाण खण्ड लाया है उस पापाण की वह मृति वनावेगा उस पर काम भी करने लग गया है किन्तु अभी तक मृति पूर्ण रूप से बनी नहीं है, इतने में ही कोई मृति-पूजक आकर उससे मृति माँगे, तब वह शिल्पकार यदि कहदे कि-यह अपूर्ण मृति ही ले लो तो क्या वह मृति पूजक उस अपूर्ण मृति को पूरे दाम देकर खरीदेगा ? नहीं यद्यपि वह भविष्य में पूर्ण रूप से ठीक वन जायगी पर वर्तमान में अपूर्ण है, इस लिए व्यवहार में भी उसका पूरा मृत्य नहीं मिल सकता, तो धर्म कार्य में द्रव्य नित्तेप वन्दनीय पूजनीय कैसे हो सकता है ?

(ग) एक गाय की छोटी की विद्या है, जो भविष्य में गाय बन कर दूध देगी, किंतु हमारे मृति पूजक प्रक्रकार के मतानुसार उस बिध्या से ही जो कोई दूध प्राप्त करने की इच्छा से किया करे, तो उस जैसा मूर्ज शिरोमणि संसार में भीर कीन हो हकता है। जब छोटी विद्या यद्यपि गाय के द्रव्य नित्तेप में है किन्तु वर्तमान में दूध देने रूप भाव नित्तेप की कार्य साधक नहीं होती तब गुण शन्य द्रव्य नित्तेप पूजनीय किस प्रकार माना जा हकता है।

कर इतना ही कहना चाहते हैं कि—पेसे यंथा के प्रमाण यहां कुछ भी कार्य साधक नहीं हो र कते, जो यंथ उभय मान्य हो वहीं प्रमाण में रक्त्वे जाने चाहिए अन्यथा प्रमाणदाता भे विफल मनोरथ होना पडता है।

अन्तकृतद्शांग में लिखा कि वाइसवें टीर्थंकर प्रभु,ने भी रुप्ण वासुदेव को आगामी चोवीसी में बारहवें तीर्यंकर होने का भविष्य सुनाया, यह सुनकर श्रीकृ गा बहुत प्रसन्न हुए जंश पर कर-स्फोट कर सिंहनाद किया। इससे अनुमान होता है कि उस समय समव सरए-स्थित चतुर्विध संघ तो आकरण कई योजन दूर तक यह आवाज़ पहुंची होगी और समन सरण में तो सभी को इसका कारण मालूम हो गया कि-यह ध्वनि श्रीकृष्णने भविष्य कथन सुनकर प्रसन्नता से की है। जब जनता और प्रभु के साधु साध्वी यह जान गये कि भीक्षण भविष्य में प्रभु की तरह ही तीर्थंकर होंगे। तब सभी अपनी को और गृहस्था को चाहिए था कि-वे भी आपके भरतेम्बर की तरह कृत्य को वन्दना नमरकार करते ? क्यांकि वे भाँ तो मरीचि की तरह द्रव्य तीर्थंकर थे ? किन्तु जब हम मन्तरहर दशांग देखते हैं, तब उरुमें सिंहनाद आदि का तो वर्षन है, पर वन्दनादि के लिए तो विलकुल मौन ही पाया जाता है। यही हाल ठाणांग सूत्र के नवमस्थान में श्रेणिक के भविष कथन का है। जब तीर्थंकर भाषित सूत्रों में यह बात प्रकर से भी नहीं मिलती तो अन्य पन्थों में कैसे और कहां से मार्! और त्रिपष्टिशलाका पुरुष चरित्र के रचयिता ने किस दिण कान द्वारा यह सब जाना ? किसी भी बात को करणना के जरियं विद्वत्ता पूर्वक रचडालने से ही वह ऐतिहासिड नहीं हकती। इस प्रमाण के वाधक कुछ उदाहरणभी दिये जाते हैं।

(क) कोई युनकर कपड़ा युनने को यदि सूत लाया है उस सूत से वह कपड़ा दनावेगा, व मान में वह कपड़ा नहीं पर सूत ही है। फिर भी वह युनकर यदि सूत को ही कपड़े के मुख्य में वेंचना चाहे या खरीदने वाले से उस सूत को देकर वस्त्र का मुख्य लेना चाहे तो उसे निराश होना पड़ता है। प्यों कि वह वर्तमान में सूत है उससे वस्त्र केंद्राम नहीं मिल सकते। इसी प्रकार भविष्य में उत्पन्न होने वाले गुण को लद्य कर वर्तमान में उन उत्तम गुणों से रहित व्यक्ति को वैसा मान नहीं दिया जा सकता।

(ख) कोई शिल्प—कार मृति वनाने के लिए एक पापाण खएड लाया है उस पापाण की वह मृति वनावेगा उस पर काम भी करने लग गया है किन्तु मनी तक मृति पूर्ण रूप से बनी नहीं है, इतने में ही कोई मृति-पूजक आकर उससे मृति माँगे, तब वह शिल्पकार यदि कहदे कि-यह अपूर्ण मृति ही ले लो तो क्या वह मृति पूजक उस अपूर्ण मृति को पूरे दाम देकर खरीदेगा ! अहीं यद्यपि वह भविष्य में पूर्ण रूप से ठीक वन जायगी पर वर्तमान में अपूर्ण है, इस लिए व्यवहार में भी उसका पूरा मृत्य नहीं मिल सकडा, तो धर्म कार्य में द्रव्य नित्तेप वन्दनीय पूजनीय कैसे हो सकडा है ?

(ग) एक गाँच की छोटी की विख्या है, जो भविष्य में गाय बन कर दूध देगी, किंतु हमारे मूर्ति पूजक प्रश्नकार के मतानुसार उस विख्या से ही जो कोई दूध पात करने की इच्छा से किया करे, तो उस जैसा मुर्ख शिरोमणि संसार में और कीन हो रकता है। जब छोटी विद्या यद्यपि गाय के इच्च नित्तेप में है किन्तु वर्तमान में दूध देने रूप भाव नित्तेप की कार्य साधक नहीं होती तब गुण शन्य द्रव्य नित्तेप वदनीय पूजनीय किस प्रकार माना जा सकता है।

(घ) २४ वें पश्नोत्तर के पांचों उदाहरण भी यहां प्रकरण संगत हैं।

ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, सुझ जनता इन उदाहरणों पर शानत चित्र से विचार करेगी तो मालून होगा कि—द्रव्य निज्ञेष को भाव सदय मानना वास्त्रत में बुद्धिमता नहीं है।

इस तरह सत्य को समभ कर पाठक अपना कट्याल तार्थे यही निवेदन है।



-सिख हुए तीर्थंकर ग्रीर द्रव्य निदाप

प्रश्न-चौवीस तीर्धंकर वर्तमान में सिद्ध हो चुके हैं उनकी आहमा अब आरिहंत या तीर्धकर के द्रव्य निक्प में ही है उन सिद्धों को अब अरिहत या तीर्थकर मानकर बन्दना स्तुति करते हो, क्या यह द्रव्य नित्तिप का वन्दन नहीं है? उत्तर-उक्त कथन के समाधान में यह समभता

जो तीर्थंकर या अरिहंत सिद्ध हो चुके हैं उनकी अभी यन्दना या स्तुति करते हैं वह द्रव्य नित्तप में नहीं है, प्योंकि चाहिये कि-जो श्रात्माथित भाव गुण श्रह्तायस्था में थे वे सिद्धायस्था में भी कायम हैं, सिद्धावस्था में तो और भी गुणवृद्धि ही हुई है। फिर उन्हें सामान्य द्रव्य निच्च से कैसे कह सकते हैं! गुण पूजकों के लिये तो यह प्रश्न ही अनुचित है।

सिद्धावस्था की आत्मा अरिहंत दशा का मूल द्रव्यहोकर भी द्रव्य नित्तेप से विशेषता रखता है, कारण यहां गुणों से सम्बन्ध है जिस प्रकार अगुवत वाला श्रावक जय महावत घारी साधु हो जाता है तय वह श्रावक का द्रव्य निवेष है, फिर भी गुण वृद्धि की श्रपेवा वन्दनीय है, किन्तु वही साधु जो श्रावक से साधु वना था कमों के जोग से संयम मार्ग से पतित हो जाय तो श्रावक पद से भी वन्दनीय नहीं रहेगा क्योंकि वन्दन, नमन का स्थान है गुण, श्रोर उन श्रुत चारित्र कर गुणों की न्यूनता वाला बन जाने से वह श्रातमा वंदनीय नहीं रहा, इससे विषरीत जहां गुण वृद्धि होती है वह भूत श्रीर वर्तमान दोनों काल में वन्दनीय ही होता है।

इस विषय में यदि श्राप सांसारिक उदाहरण भी देखना चाहें तो वहुत मिल सकते हैं श्रिधिक नहीं केवल एक ही उदाहरण यहां दिया जाता है, देखिये—

वर्तमान में जितने पदच्युत राजा और सम्राट हैं वे पहले तो प्रायः युवराज रहे होंगे, और युवराज के वाद राजा या स-म्राट वने जो प्रजा युवराज श्रवस्था में उन्हें मान देती थी, वही राजा होने पर भी मान देती रही, विक पहले से भी श्रिष्ठिक किन्तु काल चक्र के फेर से वे राज्यच्युत हो गयेतो युवराज श्रवस्था वाला श्रादर भी उनके भाग्य में नहीं रहा, श्राज उनकी क्या हालत है यह तो प्रायः सभी जानते

यहां निर्विवाद सिद्ध हुआ कि मान पूजा गुणों की ही अपेता रखती है, इस लिये गुण वृद्धि रूप सिद्धावस्था को लेकर गुण रहित द्रव्य नित्तेप के साथ उसकी तुलना करके सामान्य द्रव्य नित्तेप को वन्दनीय उहराना किसी प्रकार योग्य नहीं है।

२८—साधु के शवका बहुमान

प्रश्न—मृतक साधु के शव की ग्रंतिमिकवाश्राप वहुः मान पूर्वक करते हैं उसमें धन भी खूय खर्च करते हैं तो भी क्या यह द्रव्य निवेष को वन्दन नहीं हुआ?

उत्तर—साधु के शव की श्रंतिमिक्रिया जो हम करते हैं यह धर्म समस कर नहीं किन्तु अपना कर्तेच्य समस कर करते हैं, शव की अंतिमिक्तिया करना अतिवार्थ है, नहीं करने से कई प्रकार के अनर्थ होने कि सम्मावना है। अत्रव्य यह ज्ञाप वर्ष वर्ष वर्ष वर्ष वर्ष वर्ष वर्ष के जाती है इसमें किया आवश्यक और अनिवार्ष होने से की जाती है इसमें

इसके सिवाय जो वहुमान किया जाता है वह शव का धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है। नहीं पर शव होने के पूर्व शरीर में रहने वाले संयमी गुरू की आत्मा का है, और यह किया केवल व्यवहारिक कर्तव्य का पालन करने के लिये ही होती है। संसार में भी जो ह्यक्ति अधिक जन प्रिय, पूज्य या मान्य होगा, यहुतों का नेता होगा उसके मरने पर उसके शब की श्रंतिमिकिया भी वहुमान श्रीर पुष्कल द्रव्य व्यय कर की जायगी उसमें जो वहुमान होगा वह उस शव का ही नहीं किन्तु उस शव का कुछ समय पूर्व जो एक उच्च श्रात्मा से सम्बन्ध रहा था, उस श्रात्मा के ही वहुमान के कारण शरीर से उसके निकल जाने पर भी शव का मान होता है, वस इसी प्रकार हम मी हम।रे गुरू के सृत शरीर की श्रंतिमित्रया करते हैं। श्रीर यही मान्यता रखते हैं कि यह किया व्यवहारिक है किन्तु धार्मिक नहीं। श्रतप्त व्यवहारिक श्रीर श्रावश्यक किया वार्मिक विषय में जोड़ देना श्रनुचित है, इस प्रकार द्रव्य निचेप वन्दनीय नहीं हो सकता।



की श्रिष्ठिकता है क्या श्रव भी श्रनर्थमें कुछ कसर है ? किन् इसका श्रथं जो प्रकरण संगत वह मूल पाठ श्रीर उसका श्रद श्रथं निम्न प्रकार से है देखिये—

कल्लारां, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि

श्रर्थ—श्राप कल्याणकर्ता हैं, मंगल रूप हैं धर्मदेव हैं, झानवंत हैं, में श्राप की सेवा करता है।

यह अर्थ शुद्ध श्रीर प्रकरण संगत है, स्वयं राज प्रश्तीय के टीकाकार श्राचार्य भी उक्त पाठ कीटीका इस प्रकार करते हैं देखिये—क०कल्याण करित्वात् मं० दुरितोपशम कारित्वात् दे० जैलीक्याधि पतित्वात्

चैत्यं सुप्रशस्त मनोहेतुत्वात्

यहां स्वयं प्रभु को वन्दना करने के विषय में उक्त शब्द का टीकाकार ने सुप्रशस्त मन के हेतु कह कर स्वयं सर्वञ्च प्रभु को ही इसका स्वामी माना है और प्रभु अनन्त ज्ञानी है अतः हमारा उक्त अर्थ ही सिद्ध हुआ। इसका प्रतिमा अर्थ इनके माननीय टीकाकार के मन्तन्य से भी वाधित हुआ। अतएव इस युक्ति से जिन प्रतिमा को जिन समान कहना न्यथं ही उहरता है।

जब करलाएां, मंगलं, दो शब्दों का अर्थ तो आपभी क र्याणकारी, मंगलकारी करते हैं, तब देवयं, चेदयं, इन दो शब्दों का देवता सम्बन्धी चैत्य जिन मितमा की तरह ऐसा अघटित अर्थ किस मकार करते हैं ? देवयं, चेद्रयं, भी क स्लाएां, मंगलं की तरह पृथक दो शब्द है वहां दोनों का स्व तन्त्र भिन्न अर्थ करके यहां दोनों को सम्यन्धित करके वाद में उपमावाची वाक्य की तरह लगा देना क्या मत मोह नहीं है? फिर भी अर्थ तो अन्गन ही रहा, टीकाकार के मत से भी वाधित ठहरा। अत्रव्य उक्त मनमाने अर्थ सेप्रश्न को सिद्ध करने की चेष्टा विफल ही है। मूर्ति पूजक समाज के प्रसिद्ध विद्वान पं० वेचरदासजी को भी चैत्य शब्द का किन मूर्ति अर्थ मान्य नहीं, इस अर्थ को पंडिनजी न्तन अर्थ कहते हैं। देखो जैन साहित्य मां विकार थवाथी थयेजी हानि।

इसके सिवाय जिन-मूर्ति को जिन समान मानने वाले बन्धु राजपश्नीय की साची देते हुए कहते हैं कि यहां जिन प्रतिमा को जिन समान कहा है किन्तु यह समक्षना उनका प्रतिमा को जिन समान कहा है किन्तु यह समक्षना उनका मूल से भरा हुआ है, राजपश्नीय में केवल शन्दालंकार है, मूल उसका यह आशय नहीं कि मूर्ति साजात् के समान है।

एक साधारण युद्धि वाला मनुष्य भी यह जानता है कि पत्थर निर्मित गाय सालात् गाय की वरायरी नहीं कर सक सी, सालात् गाय से दूव मिलता है, श्रीर पत्थर की गाय से ती, सालात् गाय से दूव मिलता है, श्रीर पत्थर की गाय से वस पत्थर ही। जब सालात् फ़लों से मोहक सुगन्व मिलती है तव कागज़ के वनाये हुए फ़लों से कुछ भी नहीं। सालात् है तव कागज़ के वनाये हुए फ़लों से कुछ भी नहीं। सालात् सिंह से गजराज भी उरता है किन्तु पत्थर के वनावटी सिंह सिंह से गजराज भी नहीं उरती। असली रोटी को खाकर से मेड़, वकरी भी नहीं उरती। असली रोटी को खाकर से मेड़, वकरी भी नहीं इति किन्तु चित्रनिर्मित कागज की रोटी सभी खुधा शान्त करते हैं किन्तु चित्रनिर्मित कागज की रोटी सभी खुधा शान्त करते हैं किन्तु चित्रनिर्मित कागज की रोटी सभी खुधा शान्त करते। इस को खाने का प्रयत्न तो मूर्ख श्रीर वालक भी नहीं करते। इस प्रकार असल नकल के मेद श्रीर उसमें रहा हुआ महान् प्रकार असल नकल के मेद श्रीर उसमें रहा हुआ महान् अनर स्पष्ट दिखाई देता है, असल की वरापरी नकल कभी अनर स्पष्ट दिखाई वेता है, असल की वरापरी नकल कभी वहीं कर सकती, किर धुरंधर विद्वान् श्रीर शास्त्र कहे जाने वहीं कर सकती, किर धुरंधर विद्वान् श्रीर शास्त्र कहे जाने

वाले सूर्ति को अनंत द्यानी, अनंत गुणी ऐसे तीर्यं हर अपु के समान ही माने और वंदना पूजादि करे, यह कितनी हाल जनक पद्धति है।

जयिक-साज्ञात् हाथी का मूल्य हजारों रुपया है, उसका दैनिक खर्च भी साधारण मनुष्य नहीं उठा सकता, राजा महाराजा ही हाथी रखते हैं, हाथी रखने में बहुत बड़ी श्राधिक शक्ति की श्रावश्यकता है, इससे उल्टा मूर्ति की श्रोर देखिये, एक कुम्झर मिट्टी के हजारों हाथी बनाता है श्रीर वे हाथी पैसे ? में वाजार में वाल कों के खेलने के लिए विकते हैं। इस पर ही यदि विवार किया जाय तो श्रसल व नकल में रही हुई भिन्नता स्पष्ट दिखाई देती है। जब साजात पक हाथी का ही मूल्य हजारों रुपया है, तव हाथी की एक हजार मूर्तियों का मूल्य हजार पैसे भी नहीं। श्रसल हाथी के रखने वाले राजा महाराजा होते हैं, तय मिट्टी के हजारों हाथी रखने वाले कुम्हार को भर पेट श्रन्न झौर पूरे दस्र भी नहीं यदि ऐसे हजारों हाथी वाला कुंभकार राजा मही राजा की बरावरी करने लगे और गर्वेयुक्त कहे कि —'राजा के पास तो एक ही हाथी है किन्तु मेरे पास ऐसे हजारों हाथी हैं इसलिए मैं तो राजाधिराज (सम्राट) से भी ऋविक हूँ" ऐसी स्रत में वह कुंभकार श्रवने मुंह भले ही मियाँ मिट्ठ वनजाय किन्तु सर्व साधारण की दृष्टि में तो वह सिर्फ "रोखचिरली" ही है।

वस यही हालत "जिन प्रतिमा जिन सारखी" कहने वालों की है यद्यपि मूर्ति को साचात् के सदय मानने का कथन ग्रमल ही है, तथापि थे। हे समय के लिए केवल दलील के खातिर इनका यह कथन मान भी लिया जाय तो भी उनकी पूजा पद्धति व्यर्थ ही उहरती है, क्योंकि-प्रमु ने दीनिताव-स्था के वाद कभी भी स्नान नहीं किया, न फूल मालाएं धा-रण की, न छत्र मुकुट कुएडलादि आभूपण पहने, नधूप दीप भादि का सेवन किया, ऐसे एकान्त त्यांगी भगवान के समान ही यदि उनकी मूर्ति मानी जाय तो -उस मूर्ति को सचित्त जल से स्नान कराने, वस्त्राभुषण पहनाने, फूलों के हार पह-नाने, फ़्लों को काट कर उनसे श्रंगियां बनाने, केले के पेड़ों को काटकर कदली घर आदि वनाकर सजाई करने, धूप, दीप द्वारा श्रगणित त्रस स्थावरों की हत्या करने, केशर चन्दन आदि से विलेपन करने आदि की आवश्यकता ही क्या है ? क्या दी ज्ञितावस्था—(धर्मावतार श्रवस्था) में कभी प्रमु ने इन वस्तुओं का उपमोग किया था ? यदि नहीं किया तो अय यह प्रभु विरोधिनी भिनत क्यों की जाती है ? जिन द्यालु प्रभु ने पानी पुष्पादि के जीवों का स्पर्श ही नहीं किया श्रीर अपने श्रमणवंशजों को भी अचित्त पानी, पूष्प, फल, श्रश्चित्र श्रादि के स्पर्श करने की मनाई की, उन्हीं प्रभु पर उनकी निपेध की हुई सचित्त वस्तुओं का प्राण हरण कर चढ़ाना क्या यह भी भिनत है ? नहीं, ऐसी किया को भिनत तो किसी भी प्रकार नहीं कह सकते, वास्तव में यह भिक्त नहीं किन्तु प्रभु का 'महान् अपमान है' प्रभु के सिद्धान्तों का प्रमु पूना के लिए ही प्रमु पूनक दिन दहाड़े मंग करे, यह तो मित्र होकर शत्रुपन के कार्य करने के परावर हैं।

जिन परम दयालु प्रभु ने घमें के लिए की जाने वाली व्यर्थ हिंसा को अनार्थ कमें कहा, श्रहित कारिणी वर्ताई, उन्हीं के भक्त उन्हीं प्रभु के नाम पर निरपराध मूक श्राणियों का अकारण ही नाश कर धमें माने, यह कितने श्रास्वर्यकी वात है ?

जिस त्यागी वर्ग के लिए विकरण, त्रियोग से हिंसा करने, कराने, श्रमुगेदने का निषेत्र किया गया, जिनत्यागी श्रमणों ने स्वयं ईश्वर श्रीर गुरु साली से किसी भी करण-योग से हिंसा नहीं करने की स्पष्ट प्रतिज्ञा ली, वही त्यागी वर्ग पल ब्यामोह में पड़कर श्रपने कर्त्व —श्रपनी प्रतिश्चा को ठोकर मारकर प्रभु की पृजा के नाम पर श्रगणित निर्पराध जीवों की हिंसा करने का गला फाइ २ कर उपदेश श्रादेश दे, यह कितनी लज्जा की वात है?

क्या जिन मृति को साज्ञात् जिन समान मानने वाले श्रपनी प्रभु विरोधिनी पूजा के जरिये होते हुए प्रभु के श्रप-मान को समभ कर सत्यपथ गामी बनेंगे ?

चास्तव में तो मृति साज्ञात् के समान हो ही नहीं सकती जबिक मृतकलेवर भी जीवित की स्थान पूर्ति नहीं कर सकता, इसीलिए जलाकर या पृथ्वी में गाड़ कर नष्ट कर दिया जाता है, तब पत्थर या काष्ट की मृति अथवा चित्र क्या साज्ञात् की समानता करेंगे ? अतएव सरल बुद्धि से विचार कर मान्यता शुद्ध करनी चाहिए ?



एक ही मनुष्य श्रपने ही समान चार पांच रूप श्रीर भी देख कर श्राश्चर्य करने लग जाता है, यह सब द्र्पण के कारण ऐसा दिखाई देता है, जब मनुष्य इत द्र्पण में ही ऐसी कि चित्र दिखाई देती है तब देवइत समवसरण के उद्योत में श्रीर प्रभामगड़ल के प्रकाश तथा तीसरा स्वयं प्रभु का ही देती प्रभान सुर्थ्य के समान तेजस्वी मुखकमल, इसप्रकार तीन प्रकार के उद्योत से प्रभु चतुर्मुख दिखाई दे तो इसमें श्राश्चर्य ही क्या है?

'त्रिशिष्टिशलाका पुरुप चारत्र' में श्रीर जैन रामायण में लिखा है कि रावण श्रपने हार की नो मिण्यों की प्रभा के कारण दशानन (दश मुंह वाला) दिखाई देता था। रावण के मुंह का प्रतिचिंव हार की नव मिण्यों में पड़ने से देखने वालों को रावण दश मुख का दिखाई देता था। इसी प्रकार यदि प्रभामण्डलादि के प्रकाश के कारण यदि प्रभु चतुर्मुख दिखाई दें तो इसमें कोई श्रचरज्ञ नहीं। किन्तु तीन दिशाश्रों में मूर्तियें रखने का कथन तो मूर्ति-पूजक महानुभावों का प्रमाण श्रन्य श्रीर मनःकिष्यत ही पाया जाता है।



३१-क्या पुष्पों से पूजा पुष्पों की दया है ?

प्रश्न—पुष्पों से पूजा करना पुष्पों की दया करना है। क्योंकि यदि उन पुष्पों को वेश्या या अन्य भोगी मनुष्य ले जाते तो उनके हार गजरे आदि वनाते, शैय्या सजा कर अपर सोते, स्ंघते तथा इन तेल आदि वनाने वाले सड़ा गला अपर सोते, स्ंघते तथा इन तेल आदि वनाने वाले सड़ा गला कर भट्टी पर चढाते, इस प्रकार पुष्पों की दुर्दशा होती। इस लिये उक्त दुर्दशा से वचाकर प्रभु की पूजा में लगाना उत्तम लिये उक्त दुर्दशा से वचाकर प्रभु की पूजा में लगाना उत्तम है, इससे वे जीव सार्थक होजाते हैं, यह उनकी द्या ही है है, इससे वे जीव सार्थक होजाते हैं, यह उनकी द्या ही है (सम्यक्त शल्योद्धार) और आवश्यक सूत्र में 'महिया' (सम्यक्त शल्योद्धार) और आवश्यक हो, यह स्पष्ट यात शब्द से फूलों से पूजा करने का भी कहा है, यह स्पष्ट यात तो आप भी मानते होंगे ?

उत्तर—उक्त मान्यता मिध्यात्व पोपक श्रोर धर्म धा-तक है, इस प्रकार भोगियों की श्रोट लेकर मृति-पूजा को सिद्ध करना श्रीर उसमें होती हुई हिंसा को दया कहना यह तो वेद विहित हिंसा का श्रद्धमोदन करने के समान है। जो लोग हिंसा करके उसमें धर्म मानते हैं उन्हें यह में होती हुई हिंसा को हैय (छोड़ने योग्य) कहने का क्या ब्रिधिकार है? वे मी तो उन जीवों को खाने के लिये मारने वालों से बचा कर यझ में होम कर देव पूजा करना चाहते हैं ? ब्रीर उसी प्रकार उन जीवों को मी स्वर्ग में मेजना चाहते हैं ?

महानुभावों ? पत्त व्यामोह के वश होकर क्यों हिंसाकों प्रोत्साह देते हो ? श्रापकी पूष्प पूजा में उक्त दलील को सुन कर जब याज्ञिक लोग श्रापसे पूछेंगें कि महाशय ? हमकों खोटे बताने वाले श्राप खुद देव पूजा के लिए हिंसा करके उसमें धर्म कैसे मानते हो ? मार डालने पर उनजीवों की दया कैसे हो सकती है ? हमारी हिंसा तो हिंसा श्रीर साथ ही निन्दनीय श्रीर श्रापकी हिंसा दया श्रीर सर्राहनीय यह कहां का न्याय है ? तब श्राप क्या उत्तर देंगे ? क्या श्रापको वहां श्रधो दृष्टि नहीं करनी पढ़ेगी ?

क्या कभी सरल बुद्धि से यह भी सोचा कि फूल भले ही भोग के लिये तोड़े जांय या इत्र फुलेलाहि के या भले ही पूजा के लिए, उनकी हत्या तो श्रनिवार्य है, हत्या होने के वाद भले ही उनसे शय्या सजावें, हार बनावें या पूजा के काम में लेवें, उन्हें तो जीवन से हाथ घोना ही पड़ा न? पूजा या भोग के लिये तोड़ने में उन्हें कप्र तो समान ही होता है, दोनों में श्रत्यन्त दुख के साथ मृत्यु निश्चित ही है फिर इस

पुष्पों से प्जा करने का उपदेश और आदेश देने वाले अमण अपने प्रथम और तृतीय महात्रत का स्पष्ट भङ्ग करते हैं। यदि इसमें संदेह होतो पुष्प प्जा में दया मानने वाले आपके विजयानन्दस्रिजी ही हिंदी जैन तत्त्वादर्श पृ० ३२७ में फल, फूल, पत्रादि तोड़ने को जीव श्रदत्त कहते हैं, देखिये—

'दूसरा सचित्त वस्तु अर्थात् जीव वाली वस्तु फूल, फल, वीज, गुच्छा, पत्र, कंद, मुलादिक तथा वकरा, गाय, सुअरादिक इनको तोड़े, छेदे, भेदे, काटे सो जीव अदत्त कहिंगे, क्योंकि फूलादि जीवों ने अपने शरीर के छेदने कहिंगे, क्योंकि फूलादि जीवों ने अपने शरीर के छेदने भेदने की आज्ञा नहीं दीनी है, जो तुम हमको छेदो भेदो, इस वास्ते इसका नाम जीव अदत्त है'।

विजयानन्दस्रिजी के उक्त सत्य कथनानुसार पत्र फूलादि का तो इना जीव अदत्त है और अदत्त ग्रहण तीसरे महावत का भक्तकत्ति है, इसके सिवाय प्राणी हिंसा होने से प्रथम अहिंसा मत का भी नाश होता है, इस प्रकार यह पुष्प पूजा स्पष्ट पत्यक्त) महावतों की घातक है, ऐसी महावतों के मूल में (प्रत्यक्त) महावतों की घातक है, ऐसी महावतों के मूल में कुठाराघात करने वाली पूजा का उपदेश, आदेश और अनु मोदन महावती अमण तो कदापि नहीं कर सकते। न हिंसा मोदन महावती अमण तो कदापि नहीं कर सकते हैं।

इन वेचारे निरपराध पुष्प के जीवों के प्रथम तो भोगी
श्रीर इन तेलादि बनाने वाले ही शतु थे, जिनसे रहा पाने के
लिए इनकी रिए त्यागियों पर थी, क्योंकि जैन के त्यागी
लिए इनकी रिए त्यागियों पर थी, क्योंकि हैं, वे खयं हिंसा
श्रमण छः कायजीवों के रहाक, पीहर होते हैं, वे खयं हिंसा
नहीं करते हैं इतना ही नहीं किन्तु हिंसा करने वालों से भी
नहीं करते हैं इतना ही नहीं किन्तु हिंसा करने वालों से भी
जीवों की रहा करने का प्रयत्न करते हैं, श्रतएव त्यागी म-

हातमा ही भोगियों को उपदेश देकर हमारी रहा का प्रथल करेंगे ऐसी श्राशा थी किन्तु जब स्वयं त्यागी कहाने वाले भी कमर कसकर पुष्पों की श्रिष्टिक र हिंसा करवा कर उममें घम वतावें, तब ने बेचारे कहां जावें? किसकी शरण लें? यह तो दुधारी तलवार चली, पहले तो भोगी लोग ही शरू थे, श्रीर श्रव तो त्यागी कि जिनसे रहा की श्राशा धी-वें भी शत्रु होगये।

भोगी लागों में से बहुत से तो फूलों को तोड़ने में हिंसा ही नहीं मानते, और कितने मानते हों तो वे भी अपने भोगों के लिए तोड़ते हैं, किन्तु उसमें धर्म तो नहीं मानते, पर आर्चर्य तो यह है कि सर्व त्यागी पूर्ण श्रहिंसक कहाने वाले ये त्यागी लोग फूलों को तोड़ने तुड़वाने में ढिसा तो मानते हैं किन्तु इस हिंसा में भी घर्म दया) होने की—विण को श्रमृत कहने रूप-प्ररूपणा करते हैं। इस पर सेतो कोई भी सुझ यह सोच सकता है कि—''श्रधिक पातकी कौन है? ये कहे आने वाले त्यागी या भोगी ? पाप को पाप, फूंठ को भूंठ, खोटे को छोटा कहने वाला तो सच्चा सत्य वक्ना है, किन्तु पाप को पुएय, भूठ को सत्य, स्रोटे को खरा, कहने वाले तो स्पष्ट सतरहवें पाप स्थान का सेवन (जानवूककर माया से भूठ वोलना) करने के साथ श्रन्य जीवों को अठा रहवें पाप स्थान में घके लते हैं, और श्राप भी इसी श्रन्तिम प्रवल पाप स्थान के स्वामी वन जाते हैं। हजारों भद्र लोगों को भ्रम में डालकर मिथ्या युक्तियों द्वारा उनकी श्रद्धा को भ्रष्ट करने व उन्हें उन्मार्ग गामी वनाने वाले संसार में नाम धारी त्यागी लोग जितने हैं, उतने दूसरे नहीं।

श्रय इन लोगों के बताये हुए "बिहिया" शब्द पर विचार

श्रावश्यक हरिमद्रस्रि की वृत्ति वाले में यह स्पष्ट उल्लेख करते हैं:-है कि - "महिया" शब्द पाठान्तर का है, मूल पाठ तो है "महन्ना" जिसका अर्थ होता है 'मेरे द्वारा' (मेरे द्वारा वंदन स्तुति किये हुए) वृत्तिकार लिखते हैं कि—

'मइश्रा-मयका, महिया इतिच पाठान्तरं,'

जगिक मू० पू० समाज के मान्य श्रीर लगभग १२०० सी वर्षों के पूर्व होगये ऐसे आचार्य ही इस 'महिया' शब्द को पाअन्तर मानते हैं, तब ऐसी हालत में इस विषयपर अधिक उहापोह करने की श्रावश्यकता ही नहीं रहती।

जो 'महिया शब्द हरिभद्रसूरि के समय' तक पाठान्तर में माना जाता था वह पीछे के आचार्यों द्वारा 'मइआ' को

मूल से हटाकर स्वयं मूल रूप वन गया।

. फिर भी हम प्रशनकार के संतीप के लिए थोड़ी देर के वास्ते 'महिया' शब्द को मूल का ही मानलें तो भी इस शब्द का अर्थ-पुष्पादि से पूजा करना ऐसा आगम सम्मत नहीं

हो सकता, क्योंकि

क्योंकि यह 'महिमा' शब्द 'चतुर्विशतिस्तव' (लोगस्स) का है, इस स्तव से चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की जाती है, यह संपूर्ण पाठ श्रीर इसका एक २ घाक्य स्तुति से ही भरा है, इसके किसी भी शब्द से किसी अन्य द्रव्य से पूजा करने का अर्ध नहीं निकलता, केवल मन, वाणी, शरीर द्वारा ही भिक्त करने का यह सारा पाठ है। अव यह महिया शब्द जहां आया है उसके पहले के दो शब्द ग्रीर लिखकर इसका सत्य अर्थ वताया जाता है,

कित्तिय वंदिय महिया,

हि॰ बासी झरा कीर्वि (स्टुति) करना वं॰ शरीर झरा बन्दन करना, न॰ नव झरा पृज्ञा करना'

इस प्रकार तीनों शब्दों का मन, वसन, और शरीर द्वारा मिन्न करने का अर्थ होता है, यदि महिया शब्द से ज़्लों ने पृज्ञा करने का कहोने तो मन द्वारा मात्र पृज्ञा करने का कहोने तो मन द्वारा मात्र पृज्ञा करने का दूसरा कीनका शब्द है ? और जब सारा लोगस्स का पह ही अन्य द्वारों से यस मिन्न करने की अपेका नहीं रखता तब अवेला महिया शब्द किस प्रकार अन्य द्वारों को स्थान दे सकता है ? वैसे तो आप पुरमदिनिः के साथ 'क्रका दिनिः' 'चन्दनादिनिः' 'आमृत्यादिनिः के साथ 'क्रका विनिः' 'चन्दनादिनिः' 'आमृत्यादिनिः सुपादिनिः मन्न माना अर्थ लगा सकते हो इसमें आपको रोक ही कीन सकता है ? किन्तु इस प्रकार मनमानी यकाने में कुछ मी हान नहीं है, उत्या व्यथे में हिसा को मोत्साहन निकता है, जिस से हानि अवस्थ है। सर्ल नाव से सोचने पर कात होगा कि दूत में तो मात्र 'महिया' शब्द ही है, जिसका अमें पृज्ञा

ोता है श्रव यह पूजा केसी श्रीर किस प्रकार की होनी चा-हेंगे, इसके लिये जैन को तो अधिक विचार करने की आ म्यकता नहीं रहती. क्योंकि जैनियों के देव वीतराग है वे किसी वाहरी पौद्गलिक वस्तु को श्रात्मा के लिये उपयोगी नहीं मानते, पुद्गलों के त्याग को ही जिन्होंने धर्म कहा है वे स्वयं सुगन्ध सेवन श्रादि के त्यागी हैं, फिर ऐसे वीतराग की पूजा फ़ूलों द्वारा कैसे की जा सके ? ऐसे प्रभु की पूजा तो मन को ग्रुद्ध स्वच्छ निर्धिकार यना कर श्रपने को प्रमुचरणों में भिक्त रूप से अपेग कर देने में ही होती है, किसी वाहरी वस्तु से नहीं। फिर भी हम यहां आप से पूछते हैं कि सके-ले महिया-पूजा शब्द मात्र से फूलों से पूजा होने का किस प्रकार कहा गया? यह फूल शब्द कहां से लाकर वैठाया गया? यदि इसके मूल कारण पर विचार किया जाय तो यह स्पष्ट भाषित होता है कि फूलों से पूजने में फूलों की हिंसा होती है इससे वचने के लिये ही महिया शब्द की श्रोट ली गई है जो सर्वथा अनुपादय है।

(१) यदि महिया शाद से पुष्प से पूजा करने का अर्थ होता तो गणधर देव अंतरुदृशांग सूत्र के छुट्टे वर्ग के तीसरे होता तो गणधर देव अंतरुदृशांग सूत्र के छुट्टे वर्ग के तीसरे अध्ययन के चीदहवें सूत्र में अर्जुन माली के मोगरपाणी यज्ञ अध्ययन के चीदहवें सूत्र में अर्जुन माली के मोगरपाणी यज्ञ आह्य पूजाधिकार में 'पुष्फं चर्ण करेड़' शब्द क्यों लेते ? की पुष्प पूजा कहना आमिए होता कार को लोगस्स के पाठ में पुष्प पूजा कहना आमिए होता कार को लोगस्स के पाठ में पुष्प पूजा कहना आमिए होता तो 'पुष्फं चर्ण करेमि' ऐसा स्पष्ट पाठ क्यों नहीं लेते? महिया तो 'पुष्फं चर्ण करेमि' ऐसा स्पष्ट पाठ क्यों नहीं रखता है शब्द जो कि पुष्प के साथ कुछ भी सम्यन्य नहीं रखता है क्यों लेते?

(२) महिया शब्द चतुर्विशतिस्तव का है और सकती साधु भी करते हैं, वह भी दिन में कम से कम दो का तो अवश्य ही अब हमारे मूर्ति पूजक वन्धु यह वनार्वे कि क्या साधु भी पुष्प से पूजा करे ? आपके मान्य अर्थ से तो मू० पू० साधुओं को भी फूजों से पूजा करना चाहिये, किर आपके साधु क्यों नहीं करते ? इससे तो यही फलित होता है कि आपका यह अर्थ व्यर्थ है तभी तो उसका पालन आप के साधु नहीं करते हैं।

इस विषय में मूर्ति पूजक त्राचार्य विजयानन्दस्रिजी कहते हैं कि—

'सामायिक में साघु तथा श्रावक पूर्वोक्त महिया शब्द से पुष्पादिक द्रव्यपूजा की श्रमुमोदना करते हैं। साघु को द्रव्य पूजा करने का निपेघ है परन्तु उपदेश द्वारा द्रव्य पूजा करवाने का श्रीर उसकी श्रमुमोदना करने का त्याग नहीं है।

(सम्यक्तः शस्योद्धार पृ॰ १८१)

इनके इसप्रकार मनमाने विधान पर पाठक जरा ध्यान से विचार र करें कि जो काम स्वयं साधु के लिये त्याज्य है, वह पाप कार्य खुद तो नहीं करे किन्तु दूसरों से करवावे, यह तीन करण तीन योग के त्याग का पालन करना है क्या? मुनि खुद तो हिंसा नहीं करे, मूंठ नहीं वोले, वोरी नहीं करे, और दूसरों को हत्या करने मूंठ वोलने चोरी करने की आ बादे! यह सरासर अन्येर साता नहीं तो क्या है! अरे स्वयं वीर पिता ने आचारांगादि आगमों में धर्म के लिये यनस्पत्यादि की हिंसा करने का कह फल बना कर अपने अमण भक्तों को उससे दूर रहने की आज्ञा दी है, स्वयं वि- जयानन्दजी ने भी जैनतत्वाद्शे में इसी प्रश्न के उत्तर में प्रा- सम में बताये अनुसार बन स्पत्यादि का तो इना जीव अदत्त ब- ताया है फिर उसी जीव अदत्त की अनुमोदना मुनि करे, यह भी कह डालना श्री विजयानन्दजी का स्ववचन विरोध क्षप दूपण से दूपित नहीं है क्या ? ऐसा जीव अदत्त और उसके अनुमोदन का जघन्य काम मुनि महोदय किस प्रकार करें ? यह समभ में नहीं आता।

इसके सिवाय 'कित्तिय, वंदिय, महिया' इन तीनों शब्दों के लिये करण योगों की भिन्नता नहीं है, तीनों शब्द श्रपेत्ता कि लिये करण योगों की भिन्नता नहीं है, तीनों शब्द श्रपेत्ता रहित है, इनके लिये किसी के लिये एक करण श्रीर किसी के दो तीन करण या योग का कहना मिध्या है। ये तीनों शब्द साधु श्रीर श्रावक को समान ही जागु होते हैं इनमें से यो शब्दों को छोड़ कर केवल एक 'महिया' शब्द के लिये पत्त यात वश कुतके करना यह कैसे सत्य हो सकता है? यदि पात वश कुतके करना यह कैसे सत्य हो सकता है? यदि महिया शब्द से साधु स्वयं पुष्पों से पूजा नहीं करके दूसरे की अनुमोदना करे तो क्या जिकरण साधु त्यागी स्वयं तो की अनुमोदना करे तो क्या जिकरण साधु त्यागी स्वयं तो हिंसा नहीं करे किन्तु दूसरे हिंसा करने वालों की श्रनुमोदना तथा हिसा कारी कार्य का अन्य को उपदेश कर सकते हैं क्या?

ह भया !
हा ! एक पंचमहाव्रतधारी साधु कहाने वाले इस प्रकार
हा ! एक पंचमहाव्रतधारी साधु कहाने वाले इस प्रकार
हिंसा की श्रनुमोदना करने का श्रोर हिंसा करने का उपदेश
हैं, प्रन्थों में वैसा विधान करें, यह तो मूर्ति पूजकों का भारी
पन्न ज्यामोह ही है, ऐसी विरुद्ध प्रक्षपण। शुद्ध साधुमार्ग में
तो नहीं चल सकती।

(२) महिया शब्द चतुर्विशतिस्तव का है और स्व तो साधु भी करते हैं, वह भी दिन में कम से कम दो गा तो अवश्य ही अब हमारे मूर्ति पूजक वन्धु यह बतावें कि क्या साधु भी पुष्प से पूजा करे ? आपके मान्य अर्थ से तो मू० पू० साधुओं को भी फूजों से पूजा करना चाहिये, किर आपके साधु क्यों नहीं करते ? इससे तो यही फलित होता है कि आपका यह अर्थ व्यर्थ है तभी तो उसका पालन आप के साधु नहीं करते हैं।

इस विषय में मूर्ति पूजक श्राचार्य विजयानन्दस्रिजी कहते हैं कि—

'सामायिक में साधु तथा श्रावक पूर्वोक्त महिया शब्द से पुष्पादिक द्रव्यपूजा की श्रनुमोदना करते हैं। साधुको द्रव्य पूजा करने का निषेघ है परन्तु उपदेश द्वारा द्रव्य पूजा करवाने का श्रीर उसकी श्रनुमोदना करने का त्याग नहीं है।

(सम्यक्तव शहयोद्धार पृ॰्।८१)

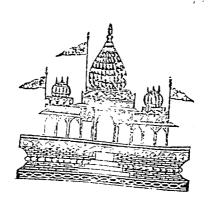
इनके इस प्रकार मनमाने विधान पर पाठक जरा ध्यान से विवार र करें कि जो काम स्वयं साधु के लिये त्याल्य है, वह पाप कार्य खुद तो नहीं करे किन्तु दूसरों से करवावे, यह तीन करण तीन योग के त्याग का पालन करना है क्या? मुनि खुद तो हिंसा नहीं करे, भूंठ नहीं योले, चोरी नहीं करे, श्रीर दूसरों को हत्या करने भूंठ वोलने चोरी करने की श्रार हा दे? यह सरासर श्रन्धेर खाता नहीं तो क्या है? श्ररे स्वयं वीर पिता ने श्राचारांगादि श्रागमों में धर्म के लिये

३२-स्रावश्यक कृत्य स्रीर सूर्ति-पूजा

परन — जिस प्रकार साधु आहार पानी करते हैं, यानी वरसते हुए पानी में स्थंडिल जाते हैं, नदी उतरते हैं, पानी वरसते हुई साध्वी को निकालते हैं, ऐसे अने कों कार्य जैसे में यहती हुई साध्वी को निकालते हैं, ऐसे अने कों कार्य जैसे हिंसा होते हुए किए जाते हैं, उसी प्रकार पूजन में यद्यपि हिंसा होती है, तथापि महान् लाम होने से करणीय है, हिंसा होती है, तथापि महान् लाम होने से करणीय है, ऐसी लाभ दायक पूजा का आपके यहां निषेध क्यों किया जाता है ?

उत्तर — उक्त उदाहरणों से मूर्ति-पूजा करणीय नहीं हो सकती, क्योंकि आहार पानी, स्थंडिन गमन श्रादि कार्य शरीर धारियों के लिये आवश्यक और अनिवार्य है, इस लिये यथाविधि यत्ना पूर्वक उक्त कार्य किये जाने हें इसी प्रकार कभी नदी उतरना भी अनिवार्य हो तो उसे हों सी प्रवारांग में वताई हुई विधि से उतर सकते हैं, अनाव भी आवारांग में वताई हुई विधि से उतर सकते हैं, अनाव श्यकता से नदी उतरने की आज्ञा नहीं है, जेन मुनि यदि श्यकता से नदी उतरने की आज्ञा नहीं है, जेन सुनि यदि को सो का चक्कर वाजा भी रास्ता होगा तो उससे जाने का प्रयत्न करेंगे, किन्तु विना खास आवश्यकता के नदी में नहीं प्रयत्न करेंगे, किन्तु विना खास आवश्यकता के नदी में नहीं उतरेंगे। पानी में वहती हुई साध्वी को भी त्याग मार्ग की उतरेंगे। पानी में वहती हुई साध्वी को भी त्याग मार्ग की

श्राशा है कि - श्रव तो पाठक इस महिया शब्द के श्रवं में होने वाले श्रनर्थ को श्रीर उसके कारण को समक्ष गये होंगे, जबिक - जैनागमों में मूर्ति पूजा श्रीर साज्ञात् की भी सावद्य पूजा का विधान ही नहीं है, फिर ऐसे कुतर्क को स्थान ही कहां से हो सके ? श्रीर पुष्प पूजा सेपुष्पों कीद्या होने का वचन साधु ते। ठीक पर श्रविरति सम्यक्त्वी भी कैसे कह सकें ? नहीं कद।पि नहीं।



(१३४)

यह सरासर श्रज्ञान है, मूर्ति-पृजा श्रनावश्यक है, निरर्थक है प्रमु, श्राज्ञा रहित है, लाम किचिंत भी नहीं है हानि ही है। श्रतपव ऐसी निरर्थक, श्रनावश्यक मूर्ति पृज्ञा को उपा-देय बनाने के लिये व्यर्थ चेष्टा करना वुद्धिमानी नहीं है।



रका के लिये रचा सकते हैं जिसके जीवन से अनेकों का उद्धार श्रीर परस्परा से लाखों के कल्पः ए होने की संपादना है बचना उसको परम बश्यक भी है, एक साबुबत घारिणी मह सिन के पाण बचाने का फल श्रनन्त जीवों की रहा कर ने के समान है, यदि वची हुई सःच्वी ने एक भी मिथ्यात्वी श्रनार्य व कुर ब्यक्ति को मिष्यात्व से हटा कर श्रार्थ श्रौर दयालु बना दिया, सम्यक्त्व प्राप्त कराया तो उस हिंसक के हाथों से श्रनेक प्राणी की हिंसा रुक कर भविष्य में वही दया पालक होकर स्व-पर का कल्याण करने वाला हो सकता है, यदि किसी एक को भी बांब देकर साधु दीना प्रदान क रेगीतो उससे उसकी आत्माका उद्धर होने के साथ ९ श्रनेक प्रकारके परोपकार भी होंगे। इसी उद्दश्य से संयमी महात्रती साधु श्रपने ही समान संयता महाव्रत घारिणी मार्थ्वी की रजा करने हैं। यह सभी कार्य श्रावश्यक श्रीर श्रनिवार्य होने से किये जाने हिं, इनमें प्रभु की परवानगी श्रागमों में बताई गई है, ऐसे श्रपबाद के कार्य श्रनावश्यक-ता की डालत में नहीं किये जाने, यदि ऐसे कार्यविना श्रा-बश्यकता के किये जाय ता करने वाला मुनि द्राउ का भागी होता है। साधु श्राहार पानी स्वंडिल गमन श्रादि कार्य क रते हैं, यही उन्हें शारीरिक वाबाशों के कारण करना पड़ता है, विना वाधाओं के दूर किये रन्नत्रयी का श्राराधन नहीं हो सकता, श्रतएव ऐसे कार्य को यतना प्वेक करने में कोई हानि नहीं है ।

ऐसे ग्रावर्यक ग्रोर श्रनिवार्य कार्यों के उदाहरण देकर ग्रनावर्यक ग्रोर व्यर्थ की मूर्ति पूजा में पाणी हिंसा करना



३३—गृहस्थ सम्बन्धी स्रारंम ^{ग्रीर} मूर्ति-पूजा

प्रस्त — गृहस्थ लोग श्रपने कार्य के लिये फल, फूर्ष पत्र, श्रिन, पानी श्रादि का श्रारम्भ करते हैं, गृहस्य जीव न श्रारम्भ मय जीवन है, इसमें यदि पूजा के लिये थोड़ाल जल श्रीर कुछ फल फूज एक दो दीपक, धूप श्रादि श्रल्पा रम्भ से प्रसु पूजा कर महान् लाभ उपार्जन किया जाय तं। क्या हानि है।

उत्तर—श्रापका उक्त प्रश्न भी विवेक श्रुत्यता का है समक्त शर्म विवेक वान श्रावक जल, फूलादि की भी सचिच वस्तु श्रावश्यकतानुसार ही काम में लेते हैं, ब्रावश्यकता को भी घटाकर थोड़ा श्रारम्भ करने का प्रयत् करते हैं, श्रावश्यकता की सीमा में रहकर श्रारम्भ कर हुए भी श्रारम्भ को श्रारम्भ ही मानते हैं श्रीर सदैव रे गृहस्थाश्रम सम्यन्धी श्रावश्यक श्रारम्भ को भी त्यागने दे

म्नोरथ करते हैं, आवक के तीन मनोरथों में सर्व प्रथम मनोरथ यही है ऐसे श्राद्धवर्य कभी भी आवश्यकता से अ षिक आरम्भ नहीं करते, ऐसी हालत में निरर्थक व्यर्थ का

बारम तो वे विवेशी शावक करें ही कैसे ?

व्यवहारिक कार्यों में जहां द्रव्य व्यय होता है, वहां भी सुत्र मनुष्य आवश्यकतानुसार ही खर्च करता है, निरर्थक एक कौड़ी भी नहीं लगाता। श्रीर ऐसे ही मनुष्य संसार में मार्थिक संकट से भी दूर रहते हैं। जो निरर्थक आंख मूंद कर द्व्य उड़ाते हैं, उनको अन्त में अवश्य पञ्चताना पड़ता 81

इसी प्रकार निर्धक आरम्भ करने वाला भी अंत में

दुः बी दोता है।

मूर्ति पूजा में जो भी आरम्भ होता है वह सब का सब निरर्थक व्यर्थ श्रीर श्रन्त में दुःख दायक है। विवेकी श्रावक मो गृहस्थाश्रम में स्थित होने से श्रारम्भ करता है, वह भी भारम्भ को पाप ही मानता है, और इस प्रकार अपने अद्धान को शुद्ध रखता हुआ ऐसे पाप से पिएड छुडाने की भावना रखता है। किन्तु मूर्ति पूजा में जो आरम्म होता है वह हेय होते हुए भी उपादेय (धर्म) माना जाकर श्रद्धान को बिगाड़-ता है। श्रीर जम शारम्म को उपादेय धर्म ही मानलियातव उसे त्यागने का मनोरथ तो हो ही कैसे ? श्रतपव मूर्ति-पूजा में होने वाला आरम्भ निर्धिक अनावश्यक है तथा अद्धान को अशुद्ध कर सम्यक्त्व से गिराने वाला है अतएव शीव त्यागने योग्य है। 🛴

३३—गृहस्थ सम्बन्धी स्रारंभ ^{ग्रीर} मूर्ति-पूजा

प्रम — गृहस्य लोग अपने कार्य के लिये फल, पूर्व पत्र, अग्नि, पानी आदि का आरम्भ करते हैं, गृहस्य वीन न आरम्भ मय जीवन है, इसमें यदि पूजा के लिये थोड़ाल जल और कुछ फल फूज एक दो दीपक, भूग आदि अल्पा रम्भ से प्रभु पूजा कर महान् लाभ उपार्जन किया जाय तो क्या हानि है।

उत्तर—श्रापका उक्त प्रश्न भी विवेक ग्रन्थता का है।
समसगर और विवेकवान श्रावक जल, फूलादि की भी सचिच वस्तु श्रावश्यकतानुसार ही काम में लेते हैं, श्रावश्यकता को भी घटाकर थोड़ा श्रारम्भ करने का प्रयत्करते हैं, श्रावश्यकता की सीमा में रहकर श्रारम्भ क्षे हुए भी श्रारम्भ को श्रारम्भ ही मानते हैं और सदैव गृहस्थाश्रम सम्यन्धी श्रावश्यक श्रारम्भ को भी त्यागने

नोरथ करते हैं, श्रावक के तीन मनोरथों में सर्व प्रथम नोरथ यही है ऐसे श्राद्धवर्य कभी भी श्रावश्यकता से अ षेक आरम्भ नहीं करते, ऐसी हालत में निरर्थक व्यर्थ का

गारम तो वे विवेशी श्रावक करें ही कैसे ?

व्यवहारिक कार्यों में जहां द्रव्य व्यय होता है, वहां भी पुत्र मनुष्य आवश्यकतानुसार ही खर्च करता है, निरर्थक रक कौड़ी भी नहीं लगाता। श्रीर ऐसे ही मनुष्य संसार में मर्थिक संकट से भी दूर रहते हैं। जो निरर्थक आंख मूंद कर द्रव्य उड़ाते हैं, उनको अन्त में अवश्य पछताना पड़ता है। 🦙

इसी प्रकार निरर्थक आरम्भ करने वाला भी श्रंत में

इःसी होता है।

मूर्ति पूजा में जो भी आरम्भ होता है वह सब का सब निर्धक ब्यर्थ और अन्त में दृःख दायक है। विवेकी श्रावक जो गृहस्थाश्रम में स्थित होने से शारम्भ करता है, वह भी भारम्भ को पाप ही मानता है, और इस प्रकार अपने श्रद्धान को शुद्ध रखता हुआ ऐसे पाप से पिएड छुड़ाने की भावना रखता है। किन्तु मूर्ति-पूजा में जो आरम्भ होता है वह हैय होते हुए भी उपादेय (धर्म) माना जाकर श्रद्धान को विगाद-ता है। श्रीर जब शारम्भ को उपादेय धर्म ही मानलियातव उसे त्यागने का मनोरथ तो हो ही कैसे ? अत्व मूर्ति-पूजा में होने वाला आरम्भ निरर्थक अनावश्यक है तथा श्रद्धान को अग्रुस कर सम्यक्त्व से गिराने वाला है अतएव शीम ्त्यागने योग्य है।

३४-—डाक्टर या ख़ुनी !

परन — जिस प्रकार डाक्टर रोगी की करण दशा वे खकर उसे रोग मुक्त करने के लिए कड़ श्रीपिध देता है, श्रावश्यकता पड़ने पर शस्त्र किया भी करता है, जिससे रोगी को कष्ट तो होता ही है, किन्तु इससे वह रोग मुक्त हो जाता है श्रीर ऐसे रोग हत्ती डाक्टर को श्राशीर्वाद देता है। कदाचित् डाक्टर को श्राशीर्वाद देता है। कदाचित् डाक्टर को श्रापने प्रयत्न में निष्फलता मिले, श्रीर रोगी मर जाय तो भी रोगी के मरने से डाक्टर हत्यारा या खूनी नहीं हो सकता, क्योंकि — डाक्टर तो रोगी को वचाने का ही कामी था। इसी प्रकार द्रव्य पूजा में होने वाली हिंसा उन जीवों की व पूजकों की हितकत्ती ही है, ऐसे परोपकारी कार्य (मृ० पू०) का निषेध क्यों किया जाता है ?

उत्तर—परोपकारी डाक्टर का उदाहरण देकर मूर्ति पूजा को उपादेय बताना एकदम श्रानुचित् है। उक्त उदाहरण तो उल्टा मूर्ति पूजा के बिरोच में खड़ा रहता है। यहां हम डॉक्टर श्रीर रोगी सम्बन्धी कुश्र स्पष्टीकरण करके उदाहर रण की विपरीतता बताते हैं। जो व्यक्ति शरीर के सभी अंगोपाङ्ग श्रीर उसमें रही हुई हिड्डें श्रादि को जानता व उसमें उत्पन्न होते हुए रोगों की पहिचान कर सकता है तथा योग्य उपचार से उनका भितिश्तर करने की योग्यता प्राप्त करने के लिए बहुत समय तक अध्ययन मनन श्रादि कर विद्वानों का संतोप पात्र बना श्रीर प्रमाण पत्र प्राप्त कर सका हो वही व्यक्ति डाक्टर हो- कर रोगी की चिकित्सा करने का श्राविका है।

जो व्यक्ति रोगी है, वह रोग मुक्त होने के लिए उक्त पकार के कार्य कुशल एवं विश्वासपात्र डाक्टर के पास जा-कर श्रपनी हालत का वर्णन तथा निरोग वनाने की प्रार्थना करता है; डाक्टर भी उसके रोग की जांच कर उचित वि-करता है; डाक्टर भी उसके रोग की जांच कर उचित वि-करता है , डाक्टर के उपचार से रोगी को विश्वास कित्सा करता है, डाक्टर के उपचार से रोगी को विश्वास हो जाता है कि—मैं निरोग वन जाऊँगा। यदि डाक्टर को शक्त किया की श्रावश्यकता हो तो वह सब्ध प्रथम रोगी की शक्त किया की श्रावश्यकता हो तो वह सब्ध प्रथम रोगी की श्राजा प्राप्त कर लेता है, ये सभी कार्य डाक्टर रोगी के हित श्राजा प्राप्त कर लेता है, किन्तु भाग्यवशात् डाक्टर अपने परि-के लिए ही करता है, किन्तु भाग्यवशात् डाक्टर अपने परि-श्रम में निष्कल होजाय, श्रीर रोगी रोग मुक्त होते २ प्राण मुक्त ही हो जाय, तो भी परोपकार बुद्धि वाला डाक्टर रोगी स्ति ही हो जाय, तो भी परोपकार बुद्धि वाला डाक्टर रोगी

किन्तु एक चिकित्सा विषय का अनिभेश मनुष्य यदि किसी रोगी का उसकी इंड्डानुसार भी उपचार करें, और उससे रोगी को होनि गहुँचे, तो वह अनाड़ी ऊंट वैध राज्य उससे रोगी को होनि गहुँचे, तो वह अनाड़ी ऊंट वैध राज्य नियमानुसार अपराधी ठहर कर दिख्त होता है।

नियमानुसार श्रवराचा ठहर कर वावडा वाजा है। करना श्रीर जो मनुष्य न तो डाक्टर है, न चिकित्सा ही करना जानता है, किन्तु दुए बुद्धि से किसी मनुष्य की मारडाले, श्रीर गिरफ्तार होने पर कहे कि—मेंने तो उसको रोग मुक्क करने के लिए शस्त्र मारा था, तो ऐसी हास्यजनक बात पर न्यायाधीश ध्यान नहीं देते हुए उसे हत्यारा ठहरा कर या तो प्राण दएड देगा या कठिन कारावास दएड, जो कि उसे भोगना ही पड़ेगा।

हमारे मूर्ति पूनक वंधु पूजा के वहाने बेचारे निरपराध प्राणियों को मार कर उक्क परोपकारी और विश्वासपात्र डाक्टर की श्रेणि में बैठने की इच्छा रखते हैं, यह किस प्रकार उचित हो सकता है ? वास्तव में इनके लिए (डाक्टर-नहीं) किन्तु अन्तिम श्रेगी के खुनी का उदाहरण ही सर्वेशा उण्युक्त है । क्योंकि—जो पृथ्वी, पानी, बनस्पति स्नादि स्थावर श्रीर त्रस काया के जीव श्रपने जीवन में ही झानन्द मानकर मरण दुःख से ही उरते हैं, सभी दीर्घ जीवन की इच्छा करते हैं, ऐसे उन जीवों को उनकी इच्छा के विरूद प्राण हरण करलेने वाले हत्यारे की श्रेणी से कम कभी नहीं हो सकते। रोगी की तरह वे प्राणी इन पूजक यन्धुत्रों के पास प्रार्थना करने नहीं श्राते कि महात्मन् हमारा जीवननष्ट कर हमारे शरीर की विल स्नाप स्रपने माने हुए भगवान को चढ़ाइये श्रीर हमपर उपकार कर हमें मुक्ति दीजिये। किन्त पूजक महाशय स्वेच्छा से ही भ्रम में पड़कर उनका हरा भरा जीवन नष्ट कर उन्हें मृत्यु के घाट उतार देते हैं। इसितिये ये डाक्टर की श्रेणी के योग्य नहीं।

इन जीवों को अपने भोग विलास के लिये कप्ट पहुंचाने वाले भोगी लोग संसार में बहुत हैं, लेकिन वे भी इनकी हिंसा करके उसमें उन जीवों का उपकार दोना तथा स्वयं

श्रीर गिरफ्तार होने पर कहे कि—मैंने तो उसको रोग मुक्क करने के लिए शस्त्र मारा था, तो ऐसी हास्यजनक बात पर न्यायाधीश ध्यान नहीं देते हुए उसे हत्यारा ठहरा कर या तो प्राण दएड देगा या कठिन कारावास दएड, जो कि उसे भोगना ही पड़ेगा।

हमारे मूर्ति पूत्रक वंधु पूजा के वहाने बेचारे निरपराष प्राणियों को मार कर उक्क परोपकारी और विश्वासपात्र डाक्टर की श्रेणि में वैठने की इच्छा रखते हैं, यह किस प्रकार उचित हो सकता है ? वास्तव में इनके लिए (डाक्टर-नहीं) किन्तु अन्तिम श्रेणी के खुनी का उदाहरण ही सर्वेश उण्युक्त है । क्योंकि—जो पृथ्वी, पानी, बनस्पति झादि स्थावर श्रीर त्रस काया के जीव श्रपने जीवन में ही मानन्द मानकर मरण दुःख से ही डरते हैं, सभी दीर्घ जीवन की इच्छा करते हैं, ऐसे उन जीवों को उनकी इच्छा के विरुद्ध व्राण हरण करलेने वाले इत्यारे की श्रेणी से कम कभी नहीं हो सकते। रोगी की तरह वे प्राणी इन पूजक बन्धुकों के पास प्रार्थना करने नहीं त्राते कि महात्मन् हमारा जीवननष्ट कर हमारे शरीर की विल आप अपने माने हुए भगवान को चढ़ाइये श्रीर हमपर उपकार कर हमें मुक्ति दीजिये। किन्तु पूजक महाशय स्वेच्छा से ही भ्रम में पड़कर उनका हरा भरा जीवन नष्ट कर उन्हें मृत्यु के घाट उतार देते 🕻। इसिक्ये ये डाक्टर की श्रेणी के योग्य नहीं।

इन जीवों को ऋपने भोग विलास के लिये कष्ट पहुंचाने वाले भोगी लोग संसार में बहुत हैं, लेकिन वे भी इनकी हिंसा करके उसमें उन जीवों का उपकार होना तथा स्वयं



३५-न्यायाधीश या अन्याय पर्वतक

प्रश्न—जिस प्रकार न्यायाधीश नरहत्या करने वार् को राज्य नियमानुसार प्राणा दएड देता हुन्ना हत्यार नहीं हो सकता उसी प्रकार मृति पूजा में धर्म नियमानुसार होती हुई हिंसा हानि कारक नहीं हो सकती, फिर ऐसी शास्त्र सम्मत पूजा को क्यों उठाई जाती है? यह दृशान एक

मृति पूजक साधु ने मू० पृ० में होती हुई हिंसा से वचने की दिया था।

उत्तर—श्रापका डाक्टरी से निष्कल होने पर न्याया चीश के श्रासन पर बैठने की चेष्टा करना भी निष्कल ही है। यहां भी श्रापके लिये न्यायाचीश के बजाय श्रन्थाय प्रवंतक पद ही घटित होता है।

सर्व प्रथम यह तर्क ही श्रसंगत है क्योंकि राज्य नीति से घमें नीति मिन्न है। राज्य नीति जीवन व्यवहार श्रीर सर्व साघारण में शांति की सुब्यवस्था स्थापित कर सांसा रिक उन्नति की साधना के निये द्रव्य चेत्रादि की श्रपेक्षा से

३५-न्यायाधीश या ऋन्याय प्रवृतक

प्रश्न-जिस प्रकार न्यायाधीश नरहत्या करने वार् को राज्य नियमानुसार प्राणा दगड देता हुन्ना हत्यार नहीं हो सकता उसी प्रकार मृति पूजा में धर्म नियमानुसा होती हुई हिंसा हानि कारक नहीं हो सकती, फिर ऐसी

शास्त्र सम्मत पूजा को क्यों उठाई जाती है? यह दृष्टान्त एक मृति पूजक साधु ने मू० पृ० में होती हुई हिंसा से वचने को दिया था।

उत्तर—श्रापका डाक्टरी से निष्कत होने पर स्याया-धीश के श्रासन पर वैटने की चेष्टा करना भी निष्कत ही है। यहां भी श्रापके लिये न्यायाधीश के वजाय सम्याय प्रवंतक

सर्व प्रथम यह तर्क ही श्रसंगत है क्योंकि राज्य नीति से घमें नीति मिन्न है। राज्य नीति जीवन व्यवहार श्रीर सर्व सावारण में शांति की सुव्यवस्था स्थापित कर सांसा रिक उन्नति की साधना के लिये दृष्य चेत्रादि की श्रपेक्षा से

पद ही घटित होता है।

नरहत्या कर खूनी कहाने वाला किसी दुए बुद्धि से ही स्या करते हैं, उस हत्या का कोई भी अनुमोदन नहीं करता, किन्तु जो मूर्ति-पूजा में केवल धर्म के नामसे सूदम और स्थूत जीवों की हत्या कर फिर भी उसे अच्छा समभा ते हैं और सर्व त्यागी महामुनि कहे जाने वाले उस आरम्भ की मनुमोदना करते हैं, अनुमोदना ही नहीं, कहकर कर्गाते हैं, यह कितने आध्ये की वात हैं? यदि इसे सरासर मन्येर भी कहा जाय तो क्या अतिश्योक्ति हैं!



उचित दएड नहीं दिया जाय तो भविष्य में वह श्रिष्ठिक श्रन्थ पराध कर जन साधारए को कष्टशता होगा। दूसरा श्रन्य लोग भी जय यह नहीं जानेंगे कि श्रपराधों का दएड नहीं मिलता, तो श्रिधिक उत्पात या श्रनर्थ करने लगें ऐसी

सम्भावना है श्रतएव परहित दृष्टि से नियमानुसार द्एड देना भी आवश्यक है। न्यायाधीश और सृनी का उदाहरणमूर्ति पूजा की सिद्धि में नहीं किन्तु विरोध में उपयुक्त है, क्यों के न्यायाधीरा का उदाहरण तो श्रवराधी को सप्रमाण दएड देने का सिद्ध कर ता है। श्रोर हमारे मूर्ति पृज्ञक भाई ईश्वर भक्ति के नाम से स्वेच्छानुसार निरपराच जीवों की इत्या करते हैं। क्या हमारे भाई यह बता सकेंगे कि वे पानी, पुष्प, फल, श्राम त्रादि के जीवों को किस श्रपराध पर प्राणु दगड देते हैं। उन्हें दगड देने का श्रिष्टिकार कय श्रीर किससे प्राप्त हुग्रा है ? वे किम धर्मशास्त्रानुमार उनके प्राण लूटते हैं ? यह तो मामला ही उल्टा है, न्यायाधीश का उदाहरण ब्रपराघी को श्रपराघ का दएड देन। बताता है, श्रीर श्राप करते हैं निरपराधों के प्राणों का संहार ! कोई श्राननायी मार्ग चलते किसी निर्वल की हत्या क-रके पकड़ जाने पर कदे कि मैंने तो उसे ऋपराध का दएड दिया है। तय जिस प्रकार उसका यह फुंटा कथन श्रमान्य होकर श्रन्त में वह दणिडन होता है, उसी प्रकार निरंपराध त्राणियों को धर्म के नाम पर मार कर फिर ऊपर से न्यायान चीश वनने का दोंग करने वाले भी अन्त में अपराची के इंडरे में खड़े किये ज़ाकर कर्म रूपी न्यायाधीश से अवस्य अपराध का दएड पार्वेगे।



२९-क्या ३२मूल सूत्र

बाहर का साहित्य मान्य है ?

प्रश्न-श्राप वत्तीस मूल सूत्र के सिवा श्रन्य सृत्र ग्रंथ तथा उन स्त्रों की टीका, निर्मुक्ति, चूिंगी, भाष्य दीपिका श्रादि को क्यों नहीं मानते ? नन्दीस्त्र जा कि ३२ में ही हैं उसमें श्रन्य स्त्रों के भी नामोल्लेख है, फिर ऐसे सूत्र को क्या मूर्ति पूजा का श्रधिकार होने से ही तो श्राप नहीं मानते हैं।

उत्तर — जो शास्त्र, ग्रंथ, या टीकादि साहित्य वीत-ताग प्रक्षित द्वादशांगी वाणी के अनुकृत है वही हमारा मान्य है, हमारी अद्वानुसार एकादशांग श्रोर श्रन्य २१ सूत्र ऐसे ३२ सूत्र ही पूर्ण कप से वीतराग वचनों से श्रवाचित हैं इसके सिवाय के साहित्य में वाधक श्रश भी प्रविष्ट हो गया है तथा उपस्थित है, श्रतएव उनको पूर्ण कप से मानने को हम तथ्यार नहीं हैं। ३२ सुत्रों के बाहर भी जो साहित्य है



प्रकार भी जैन साहित्य में विगाड़ा हुआ है। क्रॉिक सार्व परता मनुष्य से चाहे सो करा सकती है। भाष्य, वृत्ति, निर्मुक्ति आदि में स्वार्थ परताने भी श्रपना रंग जमाया है। हमारी इस बात को तो श्री विजयानन्द स्र्रि भी जैन तत्वा दर्श हिंदी के पृष्ठ ३४ में लिखते हैं कि—

'श्रनेक तरह के भाष्य, टीका दीपिका रचकर श्रथों की गड़बड़ कर दीनी सो श्रवतांइकरते ही चले जाते हैं।

यद्यपि उस कथन वेदानुयाइयों पर है, तथापि इस घृणित कार्य से स्वयं जैनतत्त्रादर्श के कत्तां श्रोर इनके श्रन्य मूर्ति- पूजक टीकाकार भी वंचित नहीं रहे हैं, श्रन्थकारों ने भी श्रपने मन्तव्य के नूतन नियम श्रागम याने जिनवाणी केएक दम विपरीत घड़ डाले हैं, सबे प्रथम मूर्ति पूजक समाज के उस विजयानन्द सूरि के जैनतत्वाद्श के ही कुछ श्रवतरण पाठकों की जानकारी के लिए देता हैं, देखिये:—

(२) प्रथम तो उष्ण प्राण्यक जल से स्नान करे, जेकर उष्ण जल न मिले तब यस्त्र से छान करके प्रमाण संयुक्त ग्री-तल जल से स्नान करें। (पू॰ ३९९)

- (३) मेथुन सेवके तथा वमन करके इन दोनों में कलुक रेर पीछे स्नान करे। (पृ० ४००)
- (४) देव पूजा के वास्ते गृहस्थ को स्नान करना कहा है, तथा शरीर के चैतन्य सुख के वास्ते भी स्नान है। (ए० ४००)
- (४) स्के हुए फूलों से पूजा न करे, तथा जो फूल घरती में गिरा होने तथा जिसकी पांखड़ी सड़गई होने, नीच लोगों का जिसको स्पर्श हुम्रा होने, जो विकसे हुए न होने जा विकसे हुए न होने जा तिकसे हुए न होने जाते वाले, जो देखने में अच्छे न लगे, दुर्गंध वाले, सुगंध रहित, खट्टी में वाले जाते के जाते से जनदेव की पूजा न करणी। (पू॰ ४१३)
- ्र (६) मन्दिर में मकड़ी के जाले लगे दों उनके उतारने की विधि बताते हुए जिखते हैं कि—

साधु नोकरों की निर्भ्रन्छना करें.....पीछे जयणा से साधु आप दूर करे। (ए० ४१७)

- (७) देव के श्रागे दीवा बाले देवका चन्दन देव का जल (पृ० ४२६)
- (=) संग निकालते समय साथ में जेने का सामान श्रावि का विधान भी देखिये—

श्राडम्बर सहित वड़ा चर, घड़ा, थाल, देरा, तम्बू, कड़ा-हियां साथ लेवे, चलतां कुपादिक को सज करे, तथा सेज वाला, रथ, पर्यंक, पालखी, ऊँट, घोड़ा प्रमुख सार लेंचे, तथा श्रीसंघ की रत्ता वास्ते वड़े योदों को नोकर रक्षे योदों को कवच श्रंगकादि उपस्कर देवे, तथा गीत नाटक वार्जियादि सामग्री मेलवे "" फूल घर कर्सी घरादि महापूजा करे " नाना प्रकार की वस्तु फल एक सो श्राठ, चौवीस, श्यासी, वावन, वहत्तरादि ढोवे, सर्व

भन्न भोजन के थाल डोवे। (पृ० ४७४)

(६) सुन्दर श्रंगी, पत्र भंगी, सर्वाङ्गाभरण, पुष्पगृह, कदलीगृह, पूतली पाणी के यंत्रादि की रचना करे, तथा नाना गीत मृत्यादि उत्सव से महापूजा रात्रि जागरण करे....

तथा तीर्थ की प्रभावना वास्ते वाजे गाजे प्रौडाडम्बर से गुरु का प्रवेश करात्रे। (पृ० ४ ५४)

(१०) श्री संघ की मक्ति में-

'सुगन्धित फूल भक्ति से नारियलादि विविध तांवूल प्रदान रूप भक्ति करे' (पृ० ४७४)

सुब्र वन्बुत्रो ! देखा मूर्ति पृजक त्याचार्य श्री विज्ञयानन्द्रजी के घार्मिक प्रयचन—घमे त्रन्य के घार्मिक विधान का नमूना? क्या ऐसा टल्लेख जैन साधु कर सकते हें ? क्या इसमें से एक यात भी किसी जैनागम से प्रमाणित हो सकती है ? नहीं कदापि नहीं।

्र फल, फूल, पत्रादि तोड़े, कदली गृह बनावे, स्नान करे, मैथुन सेवन कर स्नान करें, गाड़े, घोड़े सीनक, शस्त्र, डेग, हन्त्र, चक, कड़ाही, बादि साथ ले, गीत, हन्य वाजित्रादि करें फबारे छोड़े, हांवृत पदान करें, बादि २ बातों में किस धर्म की प्रक्षाहा हुई। इसमें कोनसा आत्मदित हैं। ऐसा प्रस्तक

आचार्य ने ऐसा कथन नहीं किया होगा, यदि अन्य आचार के उल्लेखों का उद्धरण भी दिया जाय तो व्यर्थ में निवन्य क कलेवर अधिक यड़ा हो जाय, इसलिए इस प्रकार के अन् अवतरण नहीं देकर आपको चौंका देने वाले दो चार अवतर अन्य आचार्यों के भी देता हूं।

देखिये—

(१२) श्री जिनद्त्त सूरिजी विवेक विलास (ब्राइति ५ में लिखते हैं कि—

"छए रसमां आधार स्वरूप उष्णकांति प्रद, कफ, कृषि दुर्गंध, अने वायु नो नाश करनार, मुख ने शोभा अर्पनार एवा तांबूल ने जे माणसो खाय छे तेना घरने श्री कृष्णना घरनी पेंडे लदमी छोड़ती नयी " (पृष्ठ ३६)

(१३) अब जरा सावधान होकर स्त्री वशीकरण सम्बन्धी जैनाचार्य का बताया हुआ प्रयोग भी देखिये—

"जे दिशानी पोतानी नासिका बहेती होय ते तरफ कामिनी ने मासन ऊपर अथवा शैच्या ऊपर वेसाड़े छे, आम करवायी ते उन्मत्त कामिनिश्रो तत्काल मांज वशीमृत थइ जाय छे"। (पृष्ठ १६०)

(१४) जे दिवसे भारे भोजनन कर्यु होय, त्या जुधादिनी वेदना अंगमां लवलेय पण न होय, स्नानादिक थी परवारी अंगे चन्दन केसर आदि नुं विलेपन कर्यु होय, अने हृद्य मां शींत तथा स्नेह नी उमांओ उद्यलती होय तोज ते स्ना ने भोगवी शके हें" (१४ १६८)

इस विषय में जैनाचार्यजी ने और भी बहुत लिखा है, किन्तु यहां इतना ही पर्याप्त है, अब जरा इनके कलि-अल सर्वह जी

नव कोड़ी ने फूलड़े, पाम्यो देश श्रद्धार । कुमार पाल राजा थयो, वर्त्या जय जयकार ।

अर्थात् केवल नो कोड़ों के फूलों से मूर्ति की पूजा करके ही कुमारपाल अठारह देश का राजा हुआ। ऐसा पूर्व जन्म का इतिहास तो विना विशिष्ट ज्ञान के कोई नहीं वता सकता, और अविध आदि विशिष्ट ज्ञान का कथाकार के समय में अभाव था, तब ऐसी पूर्व भव की बात और उस पुष्प पूजा का ही अठारह देश पर राज्य का फल कैसे जाना गया? क्या यह मन गढ़न्त गष्प गोला नहीं है। पाठक उच्यं विचारें तो मालुम होगा कि स्वार्थ परता क्या नहीं कराती? और देखिये—

कल्प सूत्र व आवश्यक की कथा है उसमें यह वतलाया है कि-दश पूर्व घर श्रीमद वज्रस्वामीजी महाराज मूर्ति पूजा के लिए आकाश में उड़कर अन्य देश में गये और वहां से वीस लाख फूल लाकर पूजा करवाई।

पाठक वृन्द ! जब श्रीमद्बजस्वामी जैसे दरार्वधर महान् श्राचार्य भी मूर्ति पूजा के लिए लाखों फूल अनेक योजन श्राकारा मार्ग से जाकर लाये और पूजा करवाई तब आजकल के साधु लोग मन्दिर के बगीचे में से ही थोड़े से फूल तोड़कर पूजा करें तो इसमें क्या बुरी वात है ? इन्हें भी चाहिए कि पातः काल होते ही ये बन और लताओं पर टूट पड़ें, जितने अधिक फूलों से पूजेंगे उतना अधिक फल होगा, और उतने ही अधिक फूलों के जीवों की इनके मतानुसार दया भी होगी। यदि यह कहा जाय कि-श्री बज्र स्वामी ने उस समय अन्य देशों से पुष्प लाकर शासन की बड़ी भारी प्रभावना की और राजा जैन धर्म



नमन सेवा करने का कथन मिलना है, किन्तु किशों भो स्थान पर किसी अन्य सचित्त या अचित्त पदार्थ से पूजा करने का उख्लेख नाम मात्र भी नहीं है, किर श्रोमद् हेमचन्द्रजी ने जो कि से १७०० वर्ष पीछे हुए हैं, सचित्त फूलों से पूजने का हाल किस विशिष्ठ ज्ञान से जान लिया। खैर।

अव पाठक इनके पहाड़ों की प्रशंपा दर्शक वचनों की भी कुछ हालत देखें-रात्रुंजय पर्वत की महत्ता दिखाते हुए लिखा है कि--

''जं लहइ श्रन्न तिरथे, उरगेण तवेण बंग चरेण। तं लहइ पयत्तेण सेत्तंज गिरिम्मि निवसन्तो॥''

अर्थात्—जो फल अन्य तीयों में उत्कृष्ट तप और ब्रह्मचर् से होता है, वहीं फल उद्यम करके शत्रुंजय में निवास करने हं होता है।

वस चाहियं ही क्या ? फिर तप ब्रह्मचर्य पालन कर काय कष्ट क्यों किया जाता है ? जब भयंकर कष्ट सहन करने का भी फल मात्र शत्रुंजय पर्वत पर निवास करने समान ही हो तो फिर महान् तपश्चर्या कर व्यर्थ शरीर और इन्द्रियों को कट क्यों देना चाहियं ? इस विधान से तो साधु होकर संयम पालन करने की भी आवश्यकता नहीं रहती। और देखियं—

जंकोड़ीए पुन्नं कामिय-माहार मोह माजेउ। जं लहड़ तत्य पुन्नं, एगो वासंग संतुंजे॥

अर्थात्—कोड्रॉ मनुष्यां को भोजन कराने का जितना पुरुष

होता है उतना हो पुराय शत्रुंजय पर मात्र एक उपवास करने से ही हो जाता है।

हां, है तो बड़े मतलब की बात पैसे बचे और लाखों रुपये के खर्च के बराबर पुएय भी मिल गया, किर व्यर्थ ही द्रव्य व्यय कर भूखों को अन्नदान देने की आवश्यकता ही क्या है? पेसा सस्ता मौदा भी नहीं कर मके वैसा मूर्ख कौन है? भाग्य पूरे वेचारे दीन तुखियों के कि जिनके पेट पर यह फल विधान की छुरी किरी। आगे बढ़िये—

श्रठावयं समेए पावा चंगाई उन्नंत नगेय । वंदित्ता पुन्नं फलं, सयगुणंतंपि पुंडरिए ॥

अर्थात्-अष्टापद जहां श्री ऋषम देवजी, समेदशिखर जहां बीस तीर्थंकर पावापुरी में श्री महावीर प्रभु चम्पा में श्री बासु प्रथंजी गिरनार जहां श्री नेमिनाथजी मोत्त पधारे इन सभी तीर्थों के वन्दन का जो पुराय फल होता है उससे भी सो-सभी तीर्थों के वन्दन का जो पुराय फल होता है। गुणा अधिक फल पुंडरिक गिरि के दर्शन से होता है।

घर और ज्यापार के कार्यों को छोड़ कर दूर दूर के अन्य तीर्थों में भटकने वाले शायद मूर्ल ही हैं, जो केवल एक बार रात्रुंजय के दर्शन कर अन्य तीर्थों से सोग्रुणा अधिक लाभ रात्रुंजय के दर्शन कर अन्य तीर्थों से सोग्रुणा अधिक लाभ रात्रुंजय के दर्शन कर अन्य तीर्थों के रहने वाले मूर्ति पूजक भाइयों महाराष्ट्र, मालवा, आदि देशों के रहने वाले मूर्ति पूजक भाइयों महाराष्ट्र, मालवा, आदि देशों के रहने वाले मूर्ति पूजक भाइयों के लिए तो पूरे पौवारह है, इन्हें अब अपने समय और द्रव्य के लिए तो पूरे पौवारह है, इन्हें अब अपने समय और द्रव्य खर्च से का विशेष व्यय कर बिलकुल थोड़े लाभ के लिए दूर के तीर्थों का विशेष व्यय कर बिलकुल थोड़े समय और द्रव्य खर्च से में जाने की जरूरत नहीं रही, थोड़े समय और द्रव्य खर्च से अपने पास ही के शत्रुंजय पर एक बार जाकर इस विधान के अपने पास ही के शत्रुंजय पर एक बार जाकर इस विधान के नमन सेवा करने का कथन मिलता है, किन्तु किया भो स्थान पर किसी अन्य सिचत्त या अचित्त पदार्थ से पूजा करने का उटलेख नाम मात्र भी नहीं है, किर श्रोमद् हेमचन्द्रजी ने जो कि से १९०० वर्ष पीछे हुए हैं, सिचत्त फूलों से पूजने का हाल किस विशिष्ठ ज्ञान से जान लिया। खैर।

अव पाठक इनके पहाड़ों की प्रशंपा दशंक वचनों की भी कुछ हालत देखें-शत्रुंजय पर्वत की महत्ता दिखाते हुए लिखा है कि--

''जं लहइ श्रन्न तित्ये, उग्गेण तवेण वंग चरेण। तं लहइ पयत्तेण सेत्तंज गिरिम्मि निवसन्तो॥''

अर्थात्—जो फल अन्य तीयों में उत्कृष्ट तप और व्रह्मचर्य से होता है, वहीं फल उद्यम करके शत्रुंजय में निवास करने से होता है।

वस चाहियं ही क्या ? फिर तप ब्रह्मचर्य पालन कर काय कष्ट क्यों किया जाता है ? जब भयंका कष्ट महन करने का भी फल मात्र शत्रुंजय पर्वत पर निवास करने समान ही हो तो फिर महान् तपश्चर्या का उपर्थ शांग और इन्द्रियों को कष्ट क्यों देना चाहियं ? इस विश्वान में तो साधु होकर संयम पालन करने की भी आवश्यक रा नहीं रहती। और देखियं——

जंकोड़ीए पुन्नं कामिय-माहार मोइ म्राजेउ । जं लहह तत्य पुन्नं, एगो वासेण संतुंजे ॥

मर्यात्-कोड़ों मनुष्यों को भोजन कराने का जितना पुष्य

नमन सेवा करने का कथन मिलता है, किन्तु किसा भी स्थान पर किसी अन्य सचित्त या अचित्त पदार्थ से पूजा करने का उटलेख नाम मात्र भी नहीं है, किर श्रीमद् हेमचन्द्रजी ने जो कि से १९०० वर्ष पीछे हुए हैं, सचित्त फूलों से पूजने का हाल किस विशिष्ठ ज्ञान से जान लिया। खैर।

अव पाठक इनके पहाड़ों की प्रशंपा दशक वचनों की भी कुछ हालत देखें-शत्रुंजय पर्वत की महत्ता दिखाते हुए लिखा है कि--

"जं लहइ श्रन्त तित्ये, उग्गेण ववेण बंग चरेण। वं लहइ पयत्तेण सेत्तंज गिरिम्मि निवसन्तो॥"

अर्थात्—जो फल अन्य तीयों में उत्कृष्ट तप और ब्रह्मचर्य से होता है, वहीं फल उद्यम करके शत्रुंजय में निवास करने से होता है।

वस चाहियं ही क्या ? फिर तप ब्रह्मचर्य पालन कर काय कप्ट क्यों किया जाता है ? जब भयंकर कप्ट सहन करने का भी फल मात्र शत्रुंजय पर्वत पर निवास करने समान ही हो तो फिर महान् तपश्चर्या कर व्यर्थ शरीर और इन्द्रियों को कट क्यों देना चाहिये ? इस विधान से तो साधु होकर संयम पालन करने की भी आवश्यकता नहीं रहती। और देखियं—

र्जकोदीए पुन्नं कामिय-प्राहार मोह प्राजेउ । जं लहर तत्य पुन्नं, एगो वासेण संतुंजे ॥

अर्थात्-कोड्डॉ मनुष्यां को भोजन कराने का जितना कुरव

व्यापारिक समाज तो सदैव सस्ते सौदे को हा पसन्द करती है। अधिक खर्च कर थोड़ा लाम प्राप्त करना और थोड़े खर्च से होने वाले अधिक लाम को छोड़ देना व्यापारियाँ के लिये तो उचित नहीं है। इसलिए इन्हें अन्य तीथों में जाना एक दम वन्द कर देना चाहिए। अब जरा सम्हल कर पढ़िये—

चरण रहियाँई संजय, त्रिमल गिरि गोयमस्य गणियो। पडिला भैय मेग साहणा, श्रड्डी दीत्र साहू पडिल मई॥

अर्थात्—चारित्र से रहित (केवल वेपवारी) ऐसे साधु को भी विमल गिरि पर गौतम गणधर के समान समभना चाहिए ऐसे एक साधु को प्रतिलाभने से अदाई द्वीप के सभी साधुओं को प्रतिलाभने का फल होता है।

(ऐसा ही फल विधान आवकों के लिये भी है।)

उक्त गाथा से हमारे मूर्ति पूजक वन्धुयों के लिये प्रय विजक्तल सरल मार्ग हो गया है, न तो गृहस्थायम छोड़ने की श्रावश्यकता है, त्योर न मेरु समान कठिन पंच महावत पालना भी श्रावश्यक है, निरर्थक कप्ट सहन करने की श्राव्ययकता ही क्या है? जबिक केवल ययंज्ञय पर्वत पर साधु वेप पहन कर कोई भी द्रव्यिलगी चला श्राये तो यह गौतम गण्धर जैसा बनजाता है इससे श्रियक तब चाहिये ही क्या? श्रीर भावुक मक्तों को भी किसी ऐसे द्रव्यिलगी को बुला-कर श्रीय ही निष्टाय से पात्र मर देना चाहिये, यस होगया वेड़ापार। विश्व मर के सुविद्यित साधुयों को दान देने का महाफन सहज ही प्रात होगया, किंदिये किंदना सस्ता सीदा है? क्या ऐसा सहज, सुखद, सहते से सस्ता श्रीर

क्या अब भी कोई गव्य की सीमा है ? हमारे मूर्ति पुत्र वन्धु केवलज्ञानी भाषक सिद्धों को भी स्नान कराकर प्र वित्र से पवित्र करना चाहते हैं, सो भी उईलोक स्वर्ग जल में ही ! वाह, कहीं केवली भी इस मनुष्य लोक के जल नहा सकते हैं ? किन्तु इशानेन्द्र ने एक भूल तो अवश्य की उन्हें यह नहीं सुभा कि इस स्वर्ग गंगा को मैं मनुष्य लोक है लेजाकर पृथ्वी पर क्यों पटक हुं। इससे तो वह इस लोक की साधारण नदियों जैसी हो गई ? कमसे कम पृथ्वी से दो चार हाथ तो ऊंची अधर रखना था, जिससे स्वर्ग गंगा का महत्त्व भी वना रहता, शासन प्रभावना भी होती, ग्रौर ब्राज विचारकों को यह वात गप्प नहीं ज्ञान पड़ती। आज 🕏 सभी विचारक प्रायः इस वात को चंडुखाने की गण से ग्रः धिक मानने को तथ्यार नहीं है। इसके सिवाय इस स्वर्ग गंगा (शत्रुंजय नदी) ने भी श्रपना स्वभाव साधारण नदी जैसा बना लिया, बिरोधी तो दृर रहे, पर द-१० वर्ष पहले कुछ भक्तों को भी अपने विशाल पेट में समा लिये। फिर च्योंकर इसे स्वर्ग वासिनी कही जाय ?

हां, जिस परम पुनीत नदी में केवल द्वानी भी स्नानकर पिवत्र होते हैं, वहां सामान्य साधु स्नान कर कर्म मलरहित होने की चेष्ट करें इसमें तो कहना ही क्या है? किन्तु जय हम इन लोगों के सिद्धान्त देखते हैं तब ऐसा मालूम होता है कि यह लोग भी रूपधुत्रों को स्नान करना नहीं मानते, किन्तु साधुत्रों के लिये स्नान का निषेध करते हैं, और स्नान से संबम भंग होना मानते हैं, वे ही ऐसे गयोड़ों पर विश्वा-स कर इनको सत्य माने यह कहां का न्याय है?

कमी रक्खी ही नहीं है। श्रंगोपांगादि के मूल में किएत पाठ मिलाने के कुछ प्रमाण देने के पूर्व श्री विजयदान स्रिर जी विषयक जैन तत्वाद्शे पु० ४८४ का निम्न श्रवतरण दिया जाता है,—

'जिन्होंने एकादशांन सूत्र श्रनेक वार श्रद्ध करे'। वन्धुत्रो ? यह वार वार ग्रंगश्रुद्धि कैसी ? ग्रीर वह भी श्री धर्मप्राण लोंकाशाह के थोड़े ही वर्षों वाद श्री विजयदानः

सूरिजी ने की ! इसमें श्रवश्य कुत्र रहस्य है।

यहां हम इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि इन गुद्धि-कर्ता महोदय ने मूल में पाठान्त आदि के रूप से धूलतो मिला ही दी होगी, क्योंकि युद्धिकर्ता थ्री विजयदान स्रिजी श्रीमान् घर्मे प्राण लोंकाशाह के बाद ही हुए हैं। उधर श्रीमान लोंकाशाइ ने श्रागमोक्ष ग्रुद्ध जैनत्व का प्रचार कर मृति पूजा के विरुद्ध वुलंद श्रावाज उटाई, मृति-पूजा को सर्वेज्ञ श्रमित्राय रहित घोषित की श्रौर शिथिल हुए साधु समुदाय की भी खबर ली, ऐसी हालत में यदि आगमों की श्रसली हालत में ही रहने दिया जाय तय तो मूर्ति-पूजा का श्रस्तित्व ही खतरे में था, क्योंकि इन्हीं श्रागमों के वल पर तो लोंकाशाह ने मूर्ति-पूजा का विरोध किया था? इस लिये थ्रागमों में इच्छित परिवर्तन करना विजयदान स्**रिजी** को सर्वे प्रथम श्रावश्यक माल्म हुश्रा हो वस करडाली मनमानी ! श्रीर इस प्रकार श्रागमीं के नाम से जनता की श्रपने ही जाल में फंसाबे रकते में भी सुमीता ही रहा। भागे की बात होड दीजिये, सभी इन विश्वयानन्द स्रिजी ने भी पाठ परि-वर्तन बरवे में कृष कमी नहीं रक्ती, सम्यक्त कस्योगार

िरी की नौधी यान्ति के एक र है में एक स्टूर एक स

(१) भिक्यु नामास्त्रातं ३६ जमानः ५ व्यास्त्रात् ॥ मन्द्रित पर्म पार्व जले किया गर्भ पार्व प्राप्त व व व व व Hats.

इस महार पाठ कि । र जिल्लाम संस्थान हो।

यहां भगवंत है है जा करते की केना करें। है है

हैं में मुल पाट में भागावजयान देवा ने कर दे रोको ५० करकेमा निरुद्ध के किया है, के बसने के हैं कर प्रदेश विक समान के रायधनगान सिंह बहादर के सम्बन्धाः के देपाय होता का का त्या पात्र प्रश्व प्राप्त के प्रश्व के क का यो पर दिया भाग म

The first of the contract of some हेत्राच्यु होता राज्याच्या १८७४ स्टब्स्टर १४४४ छ छ। मित्र प्राथम पुर के अपने प्रतास के अपने का अपने विते किया पत्र भाग १०० के ते पत्र भाग भाग स्वत्र भाग स्व मिन्ने उपने का शति प्रकार कर न

विष्णु पात्रक भारी, हें। जना विज्ञाणना जो है है, या पुर पाठ से इस पाठ शांच शत शत शत होता होता है। साच लगा इँगे कि. व्यायां मोतामध्य कालका व स्वयं स्वयं कराम कराम पाले जा कित्रपानस्याम्बं न स्व १७७ से एवं में से कित्रस शान नुगांग है। एक लिए से पाट की न प्रकार खगानक उसमें से अनक शाम का काल वर्ण साधारण कांधा प्र

कमी रक्खी ही नहीं है। श्रंगोपांगादि के मूल में किंग्रित पाठ मिलाने के कुछ प्रमाण देने के पूर्व श्री विजयदान सूरि जी विषयक जैन तत्वादर्श पृ० ४८४ का निम्न श्रवतरण दिया जाता है,—

'जिन्होंने एकादशांन सूत्र श्रनेक बार शुद्ध करें'। वन्भुत्रो ? यह बार बार ग्रंगशुद्धि कैसी?ग्रौर वह भी श्री धर्मपाण लॉकाशाह के थोड़े ही वर्षों वाद श्री विजयदान सूरिजी ने की ! उसमें श्रवश्य कुछ रहस्य है।

यहां हम इतना तो श्रवश्य कह सकते हैं कि इन शुद्धि-कर्ना महोदय ने मूल में पाठान्त आदि के रूप से धूलतो मिला ही दी होगी, क्योंकि युद्धिकर्ता श्री विजयदान सूरिजी श्रीमान धर्म प्राण लोंकाशाह के बाद ही हुए हैं। उधर श्रीमान लोंकाशाह ने श्राममोक्त गुद्ध जनत्व का प्रचार कर मृति पूजा के विरुद्ध वृलंड आवाज उटाई, मृति-पूजा को सबेब श्रीप्रिमय रहित बोपित की और शिथिल हुए साधु समुदाय की भी खार ली, एसी हालत में यदि आगमीं की श्चमली इ।लन में ही रहने िया जाय नच नो मूर्ति-पूजा का श्रस्तित्व ही खतर में था, क्योंकि इन्हीं ब्रागमों के व**ल पर** नो लों काशाद ने मूर्ति पूजा का निरोध किया था ? इस लिये न्नागमों में इंच्छित परिवर्तन करना विजयदान स्**रिजी** को सर्वे प्रथम श्रावश्यक मातृम हुत्रा हो वस करडाली मनमानी! श्रीर इस प्रकार श्रागमों के नाम से जनता की श्रपने ही जाल में फंसाये रखने में भी सुमीता ही रहा। भागे की वात होड दीजिये, अभी इन विजयानन्द स्रिजी ने भी पाठ पिट वर्तन करने में कुछ कमी नहीं रक्ती, 'सम्पक्त राल्योदार'

कमी रक्खी ही नहीं है। श्रंगोपांगादि के मूल में किंगत पाठ मिलाने के कुछ प्रमाण देने के पूर्व श्री विजयदान सूरि जी विषयक जैन तत्वादशे पृ० ४८४ का निम्न श्रवतरण दिया जाता है,—

'जिन्होंने एकादशांन सूत्र श्रनेक बार शुद्ध करें'। वन्भुत्रो ? यह बार बार ग्रंगशुद्धि कैसी?ग्रौर वह भीश्री धर्मपाण लोंकाशाह के थोड़े ही वर्षों वाद श्री विजयदान सूरिजी ने की ! उसमें श्रवश्य कुत्रु रहस्य है।

यहां हम इतना तो श्रवश्य कह सकते हैं कि इन गुद्धि-कर्ना महोदय ने मूल में पाठान्त आदि के रूप से धूलतो मिला ही दी होगी, क्यों कि युद्धिकर्ता थ्री विजयदान स्रिजी श्रीमान धर्म प्राण लोंकाशाह के बाद ही हुए हैं। उधर श्रीमान लोंकाशाह ने श्राममोक्र गुद्ध जनत्व का प्रचार कर मृति पूजा के विरुद्ध वृलंद आवाज उठाई, मृति पूजा की सर्वत्र श्रमि ॥य रहित घोषित की और शिथिल हुए साधु समुदाय की भी स्वार ली, एसी हालत में यदि आगमीं की श्चमली हालत में ही रहने दिया जाय तब तो मूर्ति-पूजा का ब्रस्तित्व ही खतर में था, क्योंकि इन्हीं ब्राम**मों के वल पर** नो लों का शब्द न मूर्ति पूजा का निरोध किया था ? इस लिये ग्रागमों में इच्छित परिवर्तन करना विजयदान स्रिजी को सर्वे प्रथम श्रावस्यक मानम हुत्रा हो वस करडाली मनमानी ! श्रीर इस प्रकार श्रागमों के नाम से जनता को श्रपने दी जाल में फंसाये रखने में भी सुभीता ही रहा। आगे की वात होड दीजिय, अभी इन विजयानन्द स्रिजी ने भी पाठ परि-वर्तन करने में कुछ कमी नहीं रक्सी, 'सम्यक्त राल्योद्धार'

कमी रक्खी ही नहीं है। श्रंगोपांगादि के मूल में किंदात पाठ भिलाने के कुछ प्रमाण देने के पूर्व श्री विजयदान सूरि जी विषयक जैन तत्वादर्श पु० ४=४ का निम्न श्रवतरण दिया जाता है,—

'जिन्होंने एकादशांत सूत्र श्रनेक बार शुद्ध करें'। वन्भुओं ? यह बार बार ग्रंगशुद्धि कैसी?श्रौर वह भी श्री धर्मपाण लॉकाशह के थोड़ि ही वर्षों वाद श्री विजयदान स्र्रिजा ने की ! इसनें श्रवश्य कुछु रहस्य है।

यहां हम इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि इन शुद्धि-कता महोदय ने मृत में पाठान्त श्रादि के रूप से धूलतो मिला ही दी होगी, क्योंकि शुद्धिकतां श्री विजयदान स्रिजी श्रीमान धर्म प्राण लोंकाशाह के बाद ही हुए हैं। उधर श्रीमान लोंकाशाह ने श्रामभोक सुद्ध जनत्व का प्रचार कर मृति पूजा के विरुद्ध वृत्ते द्र श्रायाज उटाई, मृति-पूजा की सर्वत्र श्रप्ति गय रहित योपित की श्रीर शिथिल हुए साधु समुदाय की भी खार ली, एसी हालत में यदि आगमीं को श्रमली हालत में ही रहने दिया जाय तय तो मृति-पूजा का ब्रस्तित्व ही खतर में था, क्योंकि इन्हीं ब्राग**मों के वल पर** नो नों काश इन मूर्ति पूजा का किरोब किया था? इस लिपे न्नागमों में इच्छित परिचर्तन करना विजयदान स्टिजी को सर्वे प्रथम श्रावस्यक भातम हुत्रा हो वस करडाली मनमानी! श्रीर इस प्रकार श्रागमों के नाम से जनता को श्रपने ही जाल में फंसाये रखने में भी सुमीता ही रहा। आगे की यात होड दीजिये, श्रमी इन विजयानन्द स्रिजी ने भी पाठ पिट वर्तन करते में कुछ कमी नहीं रक्ती, 'सम्यक्त राज्योदार'

कमी रक्खी ही नहीं है। श्रंगोपांगादि के मूल में किएत पाठ मिलाने के कुछ प्रमाण देने के पूर्व श्री विजयदान सूरि जी विषयक जैन तत्वादशे पु० ४८४ का निम्न श्रवतरण दिया जाता है,—

'जिन्होंने एकादशांन सूत्र श्रनेक बार श्रुद्ध करें'। वन्भुत्रो ? यह बार बार ग्रंगशृद्धि कैसी ? ग्रीर बह भी श्री धर्मपाण लोंकाशाह के थोड़े ही वर्षों बाद श्री विजयदान सूरिजी ने की ! उसमें श्रवश्य कुछ रहस्य है।

यहां हम इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि इन गुद्धि-कर्ना महोदय ने मूल में पाठान्त आदि के रूप से धूलती मिला ही दी होगी, क्योंकि युद्धिकर्ता श्री विजयदान स्रिजी श्रीमान धर्म प्राण लोंकाशाह के बाद ही हुए हैं। उधर श्रीमान लोकाशाह ने श्रामिक शुद्ध जनत्य का प्रचार कर् मृति पूजा के विरुद्ध वृलंद आवाज उटाई, मूर्ति-पूजा की सबज श्रमि गय रहित बोपित की श्रीर शिथिल हुए साधु समुदाय की भी खार ली, एसी हालत में यदि आगमीं की श्चमली हालत में ही रहने दिया जाय तय तो मूर्ति-पूजा का श्रक्तित्व ही खतर में था, क्योंकि इन्हीं श्रासमों के वल पर नो लोंकाशृह ने मूर्ति पूजा का निरोध किया था **? इस लिये** द्यागमों में इच्छित परिवर्तन करना विजयदान स्टिजी को सर्वे प्रथम त्रावस्यक मातृम हुत्रा हो वस करडाली मनमानी! श्रीर इस प्रकार श्रागमीं के नाम से जनता की श्रपने ही जाल में फंसाये रखने में भी खुमीता ही रहा। आगे की यात होड दीजिये, अभी इन विजयानन्द स्रिजी ने भी पाठ परि वर्तन करने में कुछ कमी नहीं रक्षी, 'सम्यक्त शल्योद्धार'

हिंदी की चौथी प्रावृत्ति के पृ० १८६ में श्री स्राचारांग सूत्र का निम्न पाठ दिया है, देखिये,

(१) 'भिक्खु गामाणुगामं दृइज्जमाणे श्रन्तरासे नई श्रा-गच्छेज्ज एगं पायं जले किचा एगं पायं थले किचा एवं एहं संतरह'।

इस प्रकार पाठ लिखकर विशेष में लिखते हैं कि— 'यहां भगवंत ने हिंसा करने की आज्ञा क्यों दीनी ?

उक्त मूल पाठ में श्री विजयानन्दजी ने कई शब्दों को उड़ा र कैसा निरुष्ट कार्य किया है, यह बताने के लिए मूर्ति र कैसा निरुष्ट कार्य किया है, यह बताने के लिए मूर्ति रिक समाज के रायधनपति सिंह बहादुर के सम्बत १६३६ के ह्याये हुए आचारांग सूत्र दूसरे श्रुतस्कन्ध पृ० १४४ में का यही पाठ दिया जाता है—

"से भिक्खुवा भिक्खुिणवा गामाणुगामं दृहन्जमाणे भंतरासे जंघा संतारिमे उद्यक्तिया से पुट्यामेव ससीसो वा-रियं पोद्य पमन्जेन्ज्ञासे पुट्यामेव पमिन्जिता जाव एगं पादं रियं पोद्य पमन्जेन्ज्ञासे पुट्यामेव एमिजता मेव जंघा संता जले किचा एगं पादं थले किचा तथ्रो संजया मेव जंघा संता रिमे उद्गे भ्राहारियं रिपन्जा"।

पिय पाठक महोद्यों ? जरा विजयानन्दजी के दिये एए
पिय पाठक महोद्यों ? जरा विजयानन्दजी के दिये एए
पाठ से इस पाठ का मिलान करिये, श्रीर फिर हिसाब लगापाठ से इस पाठ का मिलान करिये, श्रीर फिर हिसाब लगापाठ से इस पाठ का मिलान करिये, श्रीर फिर हिसाब लगारथे कि—न्यायांभोनिधि, किलकाल सर्वेड समान कहाने
पाले श्री विजयानन्दस्रिजी ने इस छोटे से पाठ में से कितने
पाले श्री विजयानन्दस्रिजी ने इस छोटे से पाठ को इस प्रकार विगाइकर
शब्द खुराये हैं ? एक छोटे से पाठ को इस प्रकार विगाइकर
उसमें से अनेक शब्दों को उड़ाने वाले साधारण अहर पा

मात्रादि न्यूनाधिक करने में क्या देर करने होंगे! श्रीर एक श्रावश्यक व श्रानिवार्य कार्य की यतना पूर्वक करने की विधि को हिंसा करने की श्राज्ञा बताकर कितना महान श्रम्ब करते हैं ?

जविक—साधारण मात्रा या श्रमुस्वारतक को न्यूनाधिक करने वाला श्रनन्त संसारी कहा जाता है, तय पाठ के पाठ विगाड़ देने वाले यदि श्रपनी करणी के फल भोग रहे हों तो श्रारचर्य ही क्या है ?

(२) उक्त महात्मा की दूसरी वहादुरी देखिये—सम्पन्तव शल्योद्धार चतुर्थावृत्ति पृ० १८४ में आचारांग सूत्र का पाठ इस प्रकार दिया है—

'जाणं वा नो जाणं वदेवजा'

अव रायधनपतिसिंह वहादुर के आचारांग का उक्रणाः देखिए—

'जाणं वा गो जाणं ति वदेजना'

उक्त ग्रुद्ध पाठ को विगाइकर मनःकित्वत श्रर्थकरते हैं।
कि—'जानता होने तो भी कह देने कि मैं नहीं जानता हैं,
श्रर्थात् मैंने नहीं देखा है" इस प्रकार प्रत्यत्त मृपानाद योल ने का विधान करते हैं किन्तु इन्हीं के मतानुयायी श्री पार्श्व चन्द्रजी वान् के श्राचारांग में भाषानुवाद करते हुए टीका-कार के इस प्रकार भूठ भोलने के श्रर्थ को श्रसत्य वताकर

(३) उक्र स्रिजी ने उसी सम्ययस्य शल्योद्धार पृ० १६४ में भी भववती स्त्र शतक ८ उद्देशा १ का पाठ इस महार "मणुस्ब नोगएरिण्या वय मोस जोग परिण्या" श्रीर स पाठ का अर्थ करते हैं कि—''मृगपृञ्छादिक में मन में तो सत्य है और वचन में मृपा है"।

उपरोक्त पाठ और अर्थ दोनों असत्य है भगवती सूत्र के कि स्थल पर इस प्रकार का पाठ है ही नहीं, फिर यह नृतन पाउ श्रीर इञ्चित श्रथ कहां से लिया गया ?यह विजयानन्द

(४) उपासकद्शांग के आनन्दाधिकार में — 'श्रव्या उत्थि-जी ही जानें। य परिगाहियाणि' के आगे "श्ररिहंत' शब्द श्रधिक बढ़ा

ू(४) उववाई सूत्र में चम्पा नगरी के वर्णन में — वहुला दिया गयां है। सिहंत चेह्याई' पाठ वड़ा दिया, कितने ही मू० पू० विद्वान तो इसे पाठान्तर मानते हैं, और कुछ लोग पाठान्तर मानने से भी इन्कार करते है। अभी थोड़े दिन पहले इन लोगोंकी 'ब्राक्तेप निवारिणी समिति' के झोर से 'जैन सत्य प्रकाश' नामक मासिक पत्र प्रकट हुआ है, उसके प्रारम्भ के तीसरे ग्रह ए० ७६ में 'जिन मन्दिर' शीर्षक लेख में थी दर्शनविज-यजी, उचवाई का पाठ इस प्रकार देते हैं—

श्रायारवंत चेइय विविद्द सन्निविट्ट वहुला सूत्र ? श्रीर श्रथ करते हैं कि - चम्पा नगरी सुन्दर चैत्यों तथा सुन्दर विविधता पाला सन्निवेशोधी युक्त छे'।

ते चम्पा वर्णनमां पाठान्तर छे के— अरिदंत चेइय जग-वई-विपिण् विष्ठ वहुला-सूत्र १ अर्थ चम्पापुरी अरिहंत चैत्यो, मानवीश्रो श्रने मुनिस्रो ना सन्तिवेशो यहे विशाल छे।

इस प्रकार श्री दर्शनविजयजी ने मून पाठ श्रीर पाठ न्तर वताया है, हमारे विचार से तो यह पाठान्तर मं इच्छापूर्वक वनाकर लगाया है।

श्रीमान् दर्शनविजयजी भी मृल पाठ में से एक शब्द सा गये और पाठान्तर का अर्थ भी मनमाना कर दिया। देखिये श्रद्ध मृल पाठ—

श्रायारवन्त चेह्य 'जुवह' विविह समिणविद्व बहुला।

इस छोटे से पाटमें से 'जुवइ'शब्द श्रीमान दर्शनिदिजयर्जी ने क्यों उड़ाया। यह तो वे ही जानें, हमें तो यही विश्वास होता है कि—यह शब्द जानवूक्त कर ही उड़ाया गया है क्यों कि इस शब्द का टीकाकारने "युवित वेश्या" अर्थ किया है जो श्री दर्शन विजयर्जा को चैत्य के साथ होने से कुछ बुरा मातुम दिया होगा। किन्तु इस प्रकार मनमाना फेरफार करना यह तो प्रत्यन्त में सद्धान्तिक कमजोरी सिद्ध करता है।

यहां एक यह भी विचारणीय वात है कि—इनके झाचार्यों को जब आयारवन्त चेइय' शब्द से जिन मन्दिर-मूर्ति झर्य इप्ट नहीं था तभी तो इन लोगों ने पाठान्तर के बहाने यह नूतन पाट बदाया है। इस से यह सिद्ध हुझा कि-चेस्य शब्द का अर्थ जिन मन्दिर-मूर्ति नहीं होकर यज्ञालय भी है।

(६) शाताधर्म कथांग में द्रीपदी के सीलहवें मध्ययन में "गमोत्थण " ब्रादि पाठ ब्रधिक बढ़ाया हुमा है।

इस प्रकार साहसिक महातुमायों ने अपने मत की सिद्धि के लिए मूल में घूल मिलाकर जनता की बड़े अम में डाल दिया है। मृत सूत्र के नाम से जो गप्पें उड़ाई गई हैं अब उनके भी इनमुने दिखाये जाते हैं। लोजिये—

(१) सम्यक्षवशल्योद्धार पृ० ६ के नोट में उत्तराध्ययन मून का नाम लेकर एक गाथा लिखी है वो इस प्रकार है—

तीए वि तासि साहूणीणं समीवे गहिया दिक्खाकय सुव्वय-नामा तन संजम कुणमाणी विहरह ।

बन्धुओं! उत्तराध्ययन के ध्वें मध्ययन की कुल ६२ गायाएं हैं, किन्तु इन रूभी काव्यों में उक्त काव्य का पता ही गहीं, फिर उत्तराध्ययन सूत्र के नाम से गण्प क्यों उड़ाई गहीं,

(२) मृति मग्डन प्रश्लोत्तर ए० २३७ में सूत्र हातांग श्रुत-स्वन्ध २ मध्ययन ६ का नाम लेकर आर्द्रकुमार के सम्बन्ध में लिखते हैं कि सूत्र मां तो 'प्रथम जिन पडिमा' एम स्पष्ट प्रथम तिबंदि श्री ऋपम देव स्वामी नी प्रतिमानो पाठ छे "।

यह भी एक पूर्ण रूप से गत्प ही है मूल सूत्र में यह बात है ही नहीं।

(३) पुनः उक्त प्रन्थकार ए० २११ में एक गाथा की दुर्दशा हस प्रकार करते हैं

आरम्भे नत्थी द्या, विना आरम्म न होइ महापुन्नो । पुन्ने न कम्म निज्जरे रान कम्म निज्जरे नत्थी मुक्खी ॥

मर्थात् मारभा में द्या नहीं, बिना मारमा के महापुराय नहीं होता, पुराय से कर्म की निर्जरा होती है, निर्जरा विना मोख नहीं मिल सकता। अव उक्त गाथा इन्हीं के मतानुयायी श्रावक भीमसी माणे के छपवाये हुए 'पर्युपण पर्वनी कथामो' नामक गन्थ के पृ० प में इस प्रकार है—

त्रारम्भे नत्थी दया, महिला संगेण नासएं म । संकाए सम्मतंपत्रज्ञा अत्थगहणेलं ॥

यद्यपि इस ग्रुड पाठ में भी मशुद्धि है किन्तु इससे यह ती सिद्ध हो गया कि मृतिं मएडन कारने न जाने किस मिन्नाय से इस गाथा के तीन चरण तोड़ कर उनकी जगह नये पट किंग दिये हैं।

ये तो इनके मिथ्या प्रयासों के कुछ नमूने मात्र हैं। अर्थ थोड़ा सा अर्थ का अनर्थ करने के भी कुछ प्रमाण देखियें—

(१) आवश्यक सूत्र के लोगस्स के पाठ में आये इंग "महिया " शहर का अर्थ फूलों से पूजा करने का लिसका अनर्थ ही किया है।

(२) निशीय, वृहद्कल्प, व्यवहार, कल्पसूत्र आदि । आयं हुए "विहार भूमिवा" शब्द का अर्थ स्थंडिल भूमि शेत है, किन्तु इससे विरुद्ध " जिन मन्दिर " अर्थ कर इन्होंने यह भी एक अनर्थ किया है।

(३) सूत्रों में "जाएल "राज्द साया है जिसका मर्य "याग यह " होता है, जैन सिद्धांतों को भाव यह ही मान्य है, द्रव्य नदीं, पश्च व्याकरण में द्या को यह कहा है, तथा भगवती सूत्र श०१ स उदेशा २० में स्वीमिल बाह्मण के प्रभा के उत्तर में प्रमु ने कोधादि के नाश को यज कहा है इसी प्रका हाता धर्म कथांग अ० ८ में इन्द्रिय नो इन्द्रिय यह बताया है, इन सभी का भाव आत्मोन्यान कप कियाओं भाव यह नहें ही है स प्रकार जैन धर्म को मान्य ऐसे भाव यश की स्पष्ट पाल्या होते हुए भी मृति पूजक पन्यकारों ने कल्प सूत्र में रसका "जिन प्रतिमा " अर्थ कर दिया, यदि यह शब्द किसी क्यानक में द्रव्य यश को घताने वाला होतो भी वहां " मृतिं " मथ तो किसी भी तरह नहीं हो सकता, ऐसे स्थान पर भी "हवन " अर्थ ही उपयुक्त हो सकता है, अत्रव यह भी अर्थ हा अनये ही है।

(४) यक की तरह ये लोग "यात्रा " रहद का अर्थ भी पहाड़ों में भटकना चतलाते हैं किन्तु जैन मान्यता में यात्रा शब्द का मर्थ कानादि चतुष्ट्य की माराधना करना वताया है, जिसके लिए भगवती, झाता, स्पष्ट साही है। अतप्व यात्रा शहर का अर्थ भी पहाड़ों में भटकना जैन मान्यता और मात्म कल्याण के लिए अनर्थ ही है।

(पू) व्यवहार सूत्र में सिद्ध भगवान की वैयावृत्त्य करने का कहा है, जिस का अर्थ मूर्ति मण्डन प्रश्नोत्तरकार ए० १५०

में निम्न प्रकार से करते हैं,

" सिद्ध भगवान् नी वैयावच ते तेमनुं मन्दिर् बंधावी, मृतिं स्थापन करी वस्तामूपण, गंध पुष्प, धूप, दीपेकरी झष्ट

प्रकारी, सत्तर प्रकारी पूजा कर तेने कहे हैं"। इस प्रकार मन माना अर्थ चनाकर केवल अनर्थ ही किया

(६) श्री ब्रात्मारामजी ने हिंदी सम्यक्तवशल्योद्घार में भगवती सूत्र श० ३ उ० ५ का पाठ लिखकर यह सिंह फरते का प्रयास किया है कि—"संघ के कार्य के लिए लिंध फोड़न में प्रायिश्चित नहीं " किन्तु इस विषय में जो मूल पाठ दिय गया है उसका यह मर्थ नहीं हो सकता, वहां तो भविताना मनगार की शक्ति का वर्णन है, जिसमें श्रीगौतमस्वामीजी के प्रश्न करने पर प्रभु ने फरमाया कि—

"भावितातमा अनगार स्त्री रूप बना सकते हैं, स्त्री रूप से सारा जंबूद्वीप भर सकते हैं, पताका, जनेऊ धारण कर, तलवार, ढाल (या तलवार का म्यान) हाथ में लेकर आकार में उड़ सकते हैं। घोड़े का रूप बना सकते हैं। इत्यादि इसके बाद यह बताया है कि—आतमार्थी मुनि ऐसा नहीं करते और करेंगे वे "मायावी " कहें जावेंगे, उन्हें प्रायश्चित लेना पड़ेगा विना पायश्चित के वे विराधक—आज्ञावहार होंगे।

इस प्रकार के कथन से श्री विजयानन्द्जी लिंध फोड़ने की सिद्धि किस प्रकार कर सकते हैं? यहां तो लिंध्य फोड़ने वाले को विराधक और मायावी कहा है फिर यह अन्याय क्यों? और विना किसी आधार के ही "संधका काम पड़े तो लिंध्य फोड़े" ऐसा क्यों कहा गया?

क्या साधु स्त्री रूप बना कर या घोड़ा वनकर या तलवार लेकर संघ की भक्ति या रज्ञा करे ? यह माया चारिता नहीं है क्या ? स्त्री रूप से संघ सेवा किम प्रकार हो सकती है ? मादि प्रश्नों का यहां समाधान मत्यावश्यक हो जाता है। वास्तव में सूत्र में ऐसे कामों से शामन सेवा नहीं पर शामन विरोध और मायाचारीपन कहा गया है अतुएव यह भी स्नर्श ही है।

(७) मृतिं मण्डन प्रश्लोत्तर पृ० २०८ में टाणांग स् इत्ये हुए "श्रावक "शब्द का अर्थ इस प्रकार किया है—

"टार्लाग सूत्र मां भावक शब्द नो मर्थ कर्यों छै त्यां (१) जिन प्रतिमा (२) जिन मन्दिर (३) ग्रास्त्र (४) साबु (५) साची (६) श्रावक (७) श्राविका ए सात त्तेत्रे धन खर्च वानों हुकम फरमाव्यो छुं"।

इस प्रकार श्रावक शब्द का मन कल्पित ही अर्थ किया गया है। जब कि—सूत्रों में स्पष्ट श्रावक के कर्त्तव्य वताये गये हैं उन सब की उपेद्या कर मनमाना मर्थ करना साफ मनर्थ है।

(म) इसी प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र के पाठ का मर्थ करते हुए मृति मएडन प्रश्नोत्तर पृ० २७≍ में तिखा है कि-

"उत्तराध्ययनना २८ मां अध्ययन मां कह्या मुजव सम्यक्त्व ना भाठ भाचार सेवन कर्या छे तेमां सात चेत्र पण भावी गया, कारण के ते भाचारों मां स्वधर्मी वात्सल्य तथा प्रभावना प वे माचार कह्या छे, तो स्वधमीं वात्सल्य मां साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, ए चार चंत्र जाणवा, ने प्रभावना मां जिन विव, जिन मन्दिर तथा शास्त्र, ए त्रण मावी गया, एम माणन्द कामदेवादि तथा परदेशी राजाए पण करेल छे "।

इस प्रकार मन्दिर मूर्ति सिद्ध करने के लिए मर्थ का मनर्थ

किया गया है।

(E) श्री भवगती सूत्र का नाम खेकर मृति मराडन प्रश्नो-त्तर पृ० २८७ में जो अनर्थ किया गया है वह भी जरा देख लीजिए-

" स्थावर तीर्ध ते शेत्रुंजय, गिरनार, नन्दीश्वर, मिष्टापद, मावू, सम्मेतशिखर, वगेरे छे, तेनी जात्रा जंघाचारण, विद्या-चारण मुनिवरी पण करे हैं, एम भी भगवती सत्र मां फर-मान्यं छे "।

ा यह भी ऋनर्थ पूर्वक गप्प ही है।

(१०) प्रश्न व्याकरण के प्रथम मास्रव द्वार में हिंसा के कथन में देवालय, चैत्यादि के लिए हिंसा करने वाले को मन्द गया है उसका यह अर्थ नहीं हो सकता, वहां तो भवितामा अनगार की शक्ति का वर्णन है, जिसमें श्रीगौतमस्वामीजी के प्रश्न करने पर प्रभु ने फरमाया कि—

" भावितात्मा अनगार स्त्री रूप यना सकते हैं, स्त्री रूप से

सारा जंबूद्वीप भर सकते हैं, पताका, जनेऊ धारण कर, तलवार, ढाल (या तलवार का म्यान) हाथ में लेकर माकाश में उड़ सकते हैं। घोड़े का रूप बना सकते हैं। इत्यादि इसके बाद यह बताया है कि—म्रात्मार्थी मुनि ऐसा नहीं करते भीर करेंगे वे "मायावी " कहें जावेंगे, उन्हें प्रायश्चित लेना पड़ेगा विना प्रायश्चित के वे विराधक—म्राह्मावहार होंगे।

इस प्रकार के कथन से श्री विजयानन्दजी लिध्य फोड़ने की सिद्धि किस प्रकार कर सकते हैं? यहाँ तो लिध्य फोड़ने वाले को विराधक और मायावी कहा है फिर यह अन्याय क्यों? और विना किसी आधार के ही "संधका काम पड़े तो लिध्य फोड़े" ऐसा क्यों कहा गया?

क्या साचु स्त्री रूप वना कर या घोड़ा वनकर या तलवार लेकर संघ की मक्ति या रत्ता करे ? यह माया चारिता नहीं है क्या ? स्त्री रूप से संघ सेवा किस प्रकार हो सकती है ? मादि प्रश्नों का यहां रूमाधान भत्यावश्यक हो जाता है। वास्तव में सूत्र में ऐसे कामों से शासन सेवा नहीं पर शासन विरोध और मायाचारीपन कहा गया है अतपन यह भी अनर्थ ही है।

(७) मूर्ति मण्डन प्रश्लोत्तर पृ० २०० में टाणांग स् आये हुए " आवक " शब्द का अर्थ इस प्रकार किया है—

"दानांग सूत्र मां आवक शब्द नो सर्थ कयों छै त्यां (१) जिन प्रतिमा (२) जिन मन्दिर (३) खन्म (४) माञ्च (४)

बुद्धि और नर्क गमन करने वाले यताये हैं, वहाँ उक्त मृति मएडन प्रश्नोत्तरकार अपना बचाव करने के लिए उन देवालयें को म्लेच्झों, मच्छी मारों, यवनों आदि के बताते हैं, और इस बात को सिद्ध करने के लिए प्रश्न व्याकरण का एक पाठ भी निम्न प्रकार से पेश करते हैं—

" कयरे जे तेसो परिया मच्छवं धासा उणिया जाव कृष् कम्मकारी इमेव बहवे मिलेख जाति किंते सब्बे जवणा"। (पृ० २=२)

उक्त पाठ भी स्वेच्छा से घटा वढ़ा. कर दिया गया है, इस अकार का पाठ कोई प्रश्नव्याकरण में नहीं है और न यह अन्दिर मूर्ति से ही सम्बन्ध रखता है, इस प्रकार मन माना अंग इधर उधर से लेकर मिला देना सरासर अनर्थ है।

(११) श्री विजयानन्द सूरिजी "जैनतत्वाद्र्य " पृ० २३१ में लिखते हैं कि—

"श्रावकों जिन मन्दिर वनाने से, जिन पूजा करने से सध-मिनवत्सन करने से, तीर्यपात्रा जाने सें, रयोत्सव, श्रद्धाई उत्सव, प्रतिष्ठा, श्रद्ध श्रंजन शलाका करने से, तथा भगवान के सन्मुख जाने से, गुरु के सन्मुख जाने से, इत्यादि कर्च-व्य से, जो हिंसा होते सो सर्व द्रव्य हिंसा है, परन्तु भाव हिंसा नहीं, इसका फन श्रद्धप पाप श्रद्ध यहुत निर्जरा है, यह भगवती सूत्र में लिखा है, यह हिंसा साधु श्रादि करते हैं"।

- इस प्रकार श्री विजयानन्दस्ति ने एकदम मिथ्या ही गण्य मारदी है, भगवती स्व में उक्त प्रकार से कहीं भी नहीं किया है, हां, शायद स्तिजी ने अपनी कोई स्वतंत्र प्राइवेट भगवती बनाजी हो, त्रीर उसमें ऐसा विश्वकर किर दूसरों को इस प्रकार बताते रहे हों तो यह दूसरी बात है?

रिएइ)

इस प्रकार मन्दिर व मृति के लिए जिन के स्रिवर्ध श्रर्थ के श्रनथे श्रीर मिध्या गण्पें लगाते रहें, वहां सत्य धन की तो वात ही कहां रहती है ? इस प्रकार अनेक स्थ पर मनमानी की गई है, यदि कोई इस दिवय की खी किंग्ने को बैठे तो सहज में एक बहुत अन्थ बन सकता है श्रतएव इस विषय को यहीं पूर्ण कर इनकी टीका नियुक्ति आदि की विपरीतता के भी कुछ प्रमाण दिखाये जाते हैं—

टीका, भाष्यादि में विपरीतता कर देने के दुःख से हुखित हो स्वयं विजयानन्दस्रिजी जैन तत्वादर्श पृ० ३४ में लिखते हैं कि—

"अनेक तरह के भाष्य, टीका, दीपिका, रचकर अर्थों की गड़वड़ कर दीनी सो अब ताई करते ही चले जाते हैं"।

यद्यपि श्री विजयानन्दजी का उक्त श्रात्तेप वेदानुगायिश्री पर है किन्तु यही दशा इन मूर्ति पूजक श्राचार्यों से रचित टीका नियुक्ति भाष्य आदि का भी है, उनमें भी कत्तांत्रों ने श्रपनी करत्त चलाने में कसर नहीं रक्खी हैं, जयिक स्वयं विजयानन्दजी ने मूल में प्रतिप करते कुछ भी संकोच नहीं किया, श्रीर कई स्थानों पर श्रथों के अनर्थ कर रिये जिनके फुछ प्रमाण पहले दिये जा चुके हैं, तथ टीका भाष्यादि में गड़बड़ी करने में तो भय ही कौनसा है ? जैसी चाहें बैसी ह्याख्या करहें। धी विजयानत्त्रजी का पूर्वीक कथन पूर्व क्षपेण इनकी समाज पर चरितार्थ होता है।

थी विजयानन्दस्रि जैन तत्वादर्श ए० ३१२ पर लिखते हैं कि—

बुद्धि और नर्क गमन करने वाले वताये हैं, वहाँ उक्ते मूर्ति मराइन प्रश्नोत्तरकार अपना बचाव करने के लिएं उन देवालयें को म्लेच्छों, प्रवृद्धी मार्गे, यवनों आदि के बताते हैं, और इस बात को सिद्ध करने के लिए प्रश्न व्याकरण का एक पाठ भी निम्न प्रकार से पेश करने हैं—

"कयरे जे तेको परिया मच्छवं धासा उशिया जाव कृर कम्मकारी इमेव वहवे मिलंख जाति किंते सब्वे जवणा"। (पृ० २=२)

उक्त पाठ भी स्वेच्छा से घटा बढ़ा कर दिया गया है, इस प्रकार का पाठ काई प्रश्नव्याकरण में नहीं है और न यह मन्दिर मुित से ही सम्बन्ध रखता है, इस प्रकार मन माना अंग इधर उधर से लंकर मिला देना सरामर अनर्थ है।

(११) श्री विजयानन्द् सृतिजी "जैनतत्वाद्र्यी " पृ० २३१ में लिखत है कि—

''श्रावकों जिन मन्दिर बनाने से, जिन पूजा करने से सध-रिमयन्सन करने से, तीर्थपात्रा जाने सें, रथोत्सव, श्राडाई उत्सव, प्रतिष्ठा, श्रम्भ श्रंजन शनाका करने से, तथा भगवान के सन्मुल जाने से, एम के सन्मुल जाने से, इत्यादि कर्च-व्य से, जो दिसा दोव सो सब द्रव्य दिसा है, परन्तु भाव हिसा नदीं, इसका फान श्रम्प पाप श्रम्भ यष्ट्रत निर्जरा है, यह भगवती सुत्र में लिखा है, यह दिसा साधु श्रादि करते हैं"।

इस प्रकार थी विजयानन्दस्ति ने एकदम सिथ्या ही गण्य मार्ग्दा है, अगवती सूत्र में उक्त प्रकार से कहीं भी नहीं तिखा है, हो, शायद स्तिता ने अपनी कोई स्वतंत्र मार्थेट भगवती बनाजी हो, श्रीर उसमें ऐसा लिखकर फिर दूसरों हो इस प्रकार बताते रहे हों तो यह दूसरी बात हैं?

्इस पकार मृत्तिर व मृति के लिए जिन के स्रिरवर्ग भी शर्थ के अनथ श्रीर मिध्या गत्वें लगाते रहें, वहां सत्य शो धन की तो वात ही कहां रहती है ? इस प्रकार श्रनेक स्थलों पर मनमानी की गई है, यदि कोई इस विषय की खोज "का ने को बैठे तो सहज में एक गृहत अन्थ वन सकता है। श्रतएव इस विषय को यहीं पूर्ण कर इनकी टीका नियुक्ति आदि की विपरीतता के भी कुछ प्रमाण दिखाये जाते हैं—

टीका, भाष्यादि में विपरीतता कर देने के दुःख से ष्टुखित हो स्वयं विजयानम्दस्रिजी जैन तत्वाद्शं पृ० ३४ में लिखते हैं कि—

"अनेक तरह के भाष्य, टीका, दीपिका, रचकर अर्थों की गड़बड़ कर दीनी सो अब ताई करते ही चले जाते हैं"।

यधिप भी विजयानन्दजी का उक्त श्रात्तेष वेदावुगायिश्री पर है किन्तु यही दशा इन सूर्ति पूजक श्राचार्यों से रचित दीका नियुक्ति माध्य आदि का भी है, उनमें भी कर्ताओं ने श्रपनी करत्त चलाने में कसर नहीं रक्खी हैं. जयिक खयं विजयानन्दजी ने मूल में पंत्रेष करते कुछ भी संकोच नहीं किया, श्रीर कई स्थानों पर श्रधों के श्रनर्थ कर रिये जिनके कुछ प्रमाण पहले दिये जा चुके हैं, तथ टीका भाष्यादि में गड़बड़ी करने में तो भय ही कीनसा है १ बेसी चाहें वैसी व्याख्या करहें। श्री विजयानन्द्रजी का पूर्वीक कथन पूर्व क्रपेण इनकी समाज पर चरितार्थ होता है।

श्री विजयानन्दस्रि जैन तत्वादर्श पृ० ३१२ पर जिस्तते 管衛一

बुद्धि और नर्क गमन करने वाले बताय हैं, बहाँ उक्त मूर्ति मराइन प्रश्नोत्तरकार अपना बचाव करने के लिए उन देवालयें को म्लेच्छों, प्रच्छी मारों, यवनों आदि के बताते हैं, और इस बात को सिद्ध करने के लिए प्रश्न ज्याकरण का एक पाठ भी निम्न प्रकार से पेश करने हैं—

" कयरे जे तेसी परिया मच्छवं धासा उशिया जाव कृर कम्मकार्ग इमेव वहवे मिलंग्व जाति किंते सब्वे जवशा"। (प्र० २=२)

उक्त पाठ भी स्वेच्छा से घटा बढ़ा कर दिया गया है, इस प्रकार का पाठ काई प्रश्नव्याकरण में नहीं है और न यह मन्दिर मृति से ही सम्बन्ध रखता है, इस प्रकार मन माना अंग इधर उधर से लंकर मिला देना सरासर ब्रनर्श है।

(११) श्री विजयानन्द्र सृरिजी " जैनतत्वाद्र्य " पृ० २३१ में लिखते हैं कि—

"श्रावकों जिन मन्दिर बनाने से, जिन पूजा करने से सध-रिमवन्म न करने से, तीर्थ पात्रा जाने में, रयोत्सव, श्राडाई उन्मव,प्रतिष्ठा, श्राह श्रंजन शनाका करने से, तथा भगवान के सन्मुख जाने से, गुरु के सन्मुख जाने से, इत्यादि कर्च-व्य से, जो दिना दोव सो सबे द्रव्य दिसा है, परन्तु भाष हिंसा नहीं, इसका फन श्रह्म पाप श्राह्म बहुत निर्जरा है, यह भगवती सुत्र में लिए। है, यह दिना साधु श्रादि करते हैं"।

इस प्रकार थी विजयानन्त्रम्हिने एकदम मिथ्या ही गत्य मार्री है, भगवती सूत्र में उक्त प्रकार से कहीं भी नहीं लिखा है, हो, शायद स्राजा ने अपनी कोई स्थतंत्र प्राह्मेंट भगवती यनावी हो, श्रीर उसमें ऐसा लिखकर किर दूसरीं हो इस प्रकार बताते रहे हों तो यह दूसरी बात है?

्रहसं प्रकार मन्दिर व सूर्ति के लिए जिन के स्रिवर्ध भी श्रथं के अनथे श्रीर मिध्या गर्पे लगाते रहें, वहां सत्य शो धन की तो वात ही कहां रहती है ? इस प्रकार अनेक स्थलों पर मनमानी की गई है, यदि कोई इस विषय की खोज हका ने को वैठे तो सहज में एक वृहत अन्थ वन सकता है। श्रतपव इस विषय को यहीं पूर्ण कर इनकी टीका नियुक्ति श्रादि की विपरीतता के भी कुछ प्रमाण दिखाये जाते हैं—

टीका, भाष्यादि में विपरीतता कर देने के दुःख से दुखित हो स्वयं विजयानन्दस्रिजी जैन तत्वाद्शं पृ० ३४ में

"अनेक तरह के भाष्य, टीका, दीपिका, रचकर अधी की गड़बड़ कर दीनी सो अब ताई करते ही चले जाते हैं"।

यद्यपि श्री विजयानन्दजी का उक्त श्रानेप वेदानुपायि औं पर है किन्तु यही दशा इन मूर्ति पूजक श्राचार्यों से रचित टीका नियुक्ति भाष्य श्रादि का भी है, उनमें भी कत्तांश्रों ने श्रपनी करत्त चलाने में कसर नहीं रक्खी है, जयिक स्वयं विजयानन्दजी ने मूल में प्रतिप करते कुछ भी संकोच नहीं किया, श्रीर कई स्थानों पर श्रथों के अनर्थ कर रिचे जिनके कुछ प्रमाण पहले दिये जा चुके हैं, तथ टीका भाष्यादि में गड़बड़ी करने में तो भय ही कौनसा है ? जैसी चाहें वैसी व्याख्या करहें। श्री विजयानन्द्रजी का, पूर्वीक कथन पूर्व रूपेण इनकी समाज पर चरितार्थ होता है।

थी विजयानिन्दस्रि जैन तत्वादर्श ए० ३१२ पर लिखते 管衛一

बुद्धि और नर्क गमन करने वाले वताय हैं, वहाँ उक्त मृति मएडन प्रश्नोत्तरकार अपना बचाव करने के लिए उन देवातयें को म्लेच्छों, प्रच्छी मारों, यवनों आदि के बताते हैं, और इस बात को सिद्ध करने के लिए प्रश्न व्याकरण का एक पाठ भी निम्न प्रकार से पेश करने हैं—

" कयरे जे तेसो परिया मच्छवं धासा उणिया जाव कूर कम्मकारी इमेव बहवे मिलेख जाति किंते सच्चे जवणा"। (पु० २=२)

उक्त पाठ भी स्वेच्छा से घटा बढ़ा कर दिया गया है, इस प्रकार का पाठ काई प्रश्नव्याकरण में नहीं है और न यह मन्दिर मृति से ही सम्बन्ध रखता है, इस प्रकार मन माना अंग इधर उधर से लंकर मिला देना सरासर अनर्थ है।

(११) श्री विजयानन्द सृतिजी "जैनतत्वादर्श " ए० २३१ में लिखते हैं कि—

''श्रावकों जिन मिन्द्रि बनाने से, जिन पूजा करने से सध-मिनवन्म न करने से, तीर्थ पात्रा जाने सें, रथोत्सव, श्राह्में उन्सव, प्रतिष्ठा, श्रम्भ श्रंजन शनाका करने से, तथा भगवान के सन्मुख जाने से, गुम्न के सन्मुख जाने से, इत्यादि कर्ता व्य से, जो दिसा होत्र सो सब द्वाप हिसा है, परन्तु भाव हिसा नहीं, इसका फान श्रह्म पाप श्रम्भ यहत निर्जराह, यह भगवती सुत्र में लिखा है, यह हिसा साधु श्राद् करते हैं"।

इस प्रकार थी विजयानन्दस्ति ने एकदम मिथ्या ही गण्य मार्ग्डा है, भगवती सूत्र में उक्त प्रकार से कहीं भी नहीं लिखा है, हा, शायद सारजा ने अपनी कोई स्वतंत्र प्राह्वेट भगवती बनाजी हो, श्रीर उसमें ऐसा लिखकर फिर दूसरीं को इस प्रकार बताते रहे हों तो यह दूसरी बात है?

इस प्रकार मन्दिर व मूर्ति के लिए जिन के स्रिवर्ध भी शर्थ के अनथे श्रीर मिध्या गट्यें लगाते रहें, वहां सत्य श्री धन की तो वात ही कहां रहती है ? इस प्रकार अनेक स्थली पर मनमानी की गई है, यदि कोई इस विषय की खीज काने को बैठे तो सहज में एक वृहत अन्थ वन सकता है। श्रतएव इस विषय को यहीं पूर्ण कर इनकी टीका नियुक्ति श्रादि की विपरीतता के भी कुछ प्रमाण दिखांचे जाते हैं—

टीका, भाष्यादि में विपरीतता कर देने के दुःख से दाका, भाजाप न इिखत हो स्वयं विजयानम्दस्रिजी जैन तत्वादर्श पृश्च स् लिखते हैं कि—

"अनेक तरह के भाष्य, टीका, सीपिका, रचकर अधी की गड़बड़ कर दीनी सो अब ताई करते ही चले जाते हैं।

यद्यपि भी विजयानन्दजी का उक्त श्राचेत वेद जगियां पर है किन्तु यही दशा इन मूर्ति पुनक आवीर्यों से रचित पर है। बन्छ थहा वरण कर कर के जान व्यवसाय से राचत टीका नियुक्ति भाष्य आदि का भी है, उनमें भी कत्तिओं ने धाका विश्वास्य मा कराया न अपनी करत्त चलाने में कसर नहीं रक्ती हैं। जैयेकि स्वयं अपना करपूर्व जाता में प्रतिष करते कुछ भी संकोच नहीं विजयातम्बन्धाः न पूर्वाः प्रथिति । अस्तर्भाः सकाच नहा किया, श्रीर कई स्थानी पर श्रधी के सन्ध कर दिये जिनके क्या, आर कर कर कि जा चुके हैं। तेर से कर दिय जिनक कुछ प्रमाण पहले दिये जा चुके हैं। तेर से कि भाष्यादि में गङ्ग्हा कार्य म ह्याच्या करहें। श्री विजयानात्त्वी का प्रवेशिक कथन पूर्व ह्याच्या करका जा जा वर चरितार्थ होता है। रूपेण इनकी समाज पर चरितार्थ होता है।

थी विजयानन्दस्तरि जैन तत्वाद्य एव ३१२ पर जिस्कू 管除一

"प्रभावक चरित्र में लिखा है कि—सर्व शास्त्रों की टीका लिखी थी वो सर्व विच्छेद होगई"।

उक्त कथन पर से यह तो सिद्ध हो गया कि—प्राचीन टीकार्वे जो थी वो विच्छेद--नए-हो चुकी, ग्रीर श्रव जो भी टीकाएं श्रादि हूं वे भायः नृतन टीकाकारों के मत ० ज में रंगी हुई हैं, श्रीर श्रनेक स्थलों पर मूलाशय विरुद्ध मनमानी ट्यास्या भी की गई है, इन मन्दिर मूर्तियों के लिये ही कितनी मनमानी की गई है, इसके कुछ नमूने देखिये—

- (१) श्राचारांग की निर्धुक्ति में तीर्थ यात्रा करने का त्रिना मूल के लिख दिया है।
- (२) सूत्र कृतांग, उपासकदशांग ग्रादि की टीका में भी वृत्तिकारों ने मूर्ति पूजा के रंग में रंग कर सर्वेद्य नहीं होते हुए भी संकड़ों ही नहीं हजारों वर्ष पहले की वात सर्वेद्य कथित श्रागमों से भी श्रविक टीकाशों में लिख डाली।
- (३) कल्पस्त्र के मृल में साधुकों के चातुमां प करने योग्य देत्र में १३ तेरह प्रकार की सुविधा देखन की गणना की गई है, उनमें मंदिर का नाम तक भी नहीं है, किन्तु टीकाकार महोदय ने मृल से बढ़कर चौदहवां जिन मंदिर की सुविधा का बचन भी लिख माग है।
- (४) द्यायर्यक निर्मुक्ति में भरतेश्वर चक्रवर्ती ने द्यारा पर पर श्री ऋषमदेव स्वामी और भविष्य के अन्य २३ ती-द्यारों के मंदिर मूर्ति वनवाये ऐसा यचन विना दी मूल के लिख डाडा है।

(५) उत्तराध्ययन की नियुक्ति में थी गौतम स्वामी ने साज्ञात् प्रभु को छोड़कर ऋष्टापद पहाड़ पर सूर्य किरण पकड़ कर चढ़े, ऐसा विना किसी मूलाधार के ही लिख दिया है।

(६) श्रावश्यक निर्युष्तिकार ने श्रावकों के मंदिर वनवाने पृजा करने श्रादि विषय में जो श्रहंगे लगाये हैं. ये सब विना मूल के ही भाड़ पैदा करने बरावर है।

इस विषय में श्रीर भी बहुत लिखा जा सकता है किन्तु प्रथ बढ़ जाने के भय से अधिक नहीं लिख कर केवल मूर्ति प्रक समाज के विद्वान एं० देचरदासजी दोशी एचित जैन साहित्य मां विकार थवाथी थयेली हानि नामक पुस्तक के पृ० १-३ का श्रवतरण दिया जाता है, पंडितजी इन टीका-कारों के विषय में क्या लिखते हैं, जरा ध्यान पूर्वक उनके

ह्रद्योद्वारों को पढिये।

"मारुं मानवुं छेके कोई पण टीकाकारे मूलना आशय ने मूलना समय ना वातावरण नेज ध्यानमां लईने स्पष्ट करवो मूलना समय ना वातावरण नेज ध्यानमां लईने स्पष्ट करवो कोइए, आरीते टीकाकरनारो होय तेज खरो टीकाकार होइ शके छे, परन्तु मूल नो अर्थ करती वखते मौलिक समय ना वातावरण नो ख्याल न करतां को आपणी परिस्थिति ने ज खातावरण नो ख्याल न करतां को आपणी परिस्थिति ने ज अनुसरिए तो ते मूलनी टीका नथी पण मूल ो मूसलकरवा अनुसरिए तो ते मूलनी टीका नथी पण मूल ो मूसलकरवा जेवुं छे, इं सूत्रोनी टीका आ सारी रीते जोई गयो छुं, परन्तु तेमां मने घणे ठेकाणे मूलनुं मूसल करवा जेवुं लाग्युं छे, अने तथी मने घणे उख्य थयुं छे, आ संबंधे अहिं विशेष लख्छं अपस्तुत छे, तो पण समय आव्ये सूत्रों अने टीकाओ ए अपस्तुत छे, तो पण समय आव्ये सूत्रों अने टीकाओ ए विथे इं विगतवार हेवाल आपवानुं मारुं कर्तथ्य सूकीश निर्ध

"प्रभावक चरित्र में लिखा है कि—सर्व शास्त्रों की टीका लिखी थी वो सर्व विच्छेद होगई"।

उक्त कथन पर से यह तो सिद्ध हो गया कि—प्राचीन टीकाएँ जो थी वो विच्छेद--नष्ट-हो चुकी, ग्रीर ग्रद जो भी टीकाएँ ग्रादि हैं वे भायः नृतन टीकाकारों के मत ० ज़ में रंगी हुई हैं, श्रीर श्रनेक स्थलों पर मूलाशय विरुद्ध मनमानी ट्याल्या भी की गई है, इन मन्दिर मूर्तियों के लिये ही कितनी मनमानी की गई है, इसके कुछ नमूने देखिये-

- (१) श्राचारांग की निर्युक्ति में तीर्थ यात्रा करने का त्रिना मूल के लिख दिया है।
- (२) सूत्र कृतांग, उपासकदशांग श्राद् की टीका में भी वृत्तिकारों ने मूर्ति पूजा के रंग में रंग कर सर्वेग्न नहीं हाते हुए भी संकड़ों ही नहीं हजारों वर्ष पहले की वात सबब कृषित श्राममों से भी श्रविक टीकाशों में लिख डाली।
- (३) कल्पसूत्र के मृत में साधुक्रों के चातुमां म करने योग्य देव में ६३ तेरह प्रकार की सुविधा देखन की गणना की गई है, उनमें मंदिर का नाम तक भी नहीं है, किन्तु टीकाकार महोदय ने मृत से बढ़कर चौदहवां जिन मंदिर की सुविधा का बचन भी तिस्र मारा है।
- (४) श्रायद्यक निर्मुक्ति में भरतेश्वर चक्रवर्ती ने अष्टा-पद पर श्री ऋषमदेव स्वामी और मियप्य के अम्य २३ ती-र्शकरों के मेदिर मूर्ति वनवाये ऐसा यचन विनादी मूल के तिक दाता है।



तो पण श्रागल जणावेला श्री शीलांक स्रिए करेला श्रावा रांग ना केटलाक पाठोना श्रवला श्रथों उपरथी श्रने चैत्य शब्द ना श्रथं उपर थी श्राप को कोई जोई शक्या हशोके टीकाकारो ए श्रथों करवा मां पोताना समयनेज सामो राखी केटलुं वधुं जोखम खेळ्युं छे। हुं श्रा वावत ने पण स्वीकार करूं छुं के जो महेरवान टीकाकार महाशयोग जो मूल नो श्रथ सून नो समय प्रमाणेज कर्यो होत तो जैन शाशन मां धर्मान मां जे मतमतांतरों जोवा मां श्रावे छे ते घणा श्रोछा होत, श्रने धर्म ने नामे श्राबुं श्रमासनुं श्रंधारुं घणुं श्रोबुं व्यापत"

द्यागे पृ० १३१ में लिखते हैं कि-

जे यात श्रंगो ना मूल पाठो मां नधी ते वात तेना उपां-गोमां, निर्शु क्तश्रोमा. भाष्योमां, चृिणश्रो मां, श्रवचृिणश्रो मां, श्रने टीकाश्रो मां शीरीते होइ शके ?

इस प्रकार जय मृल की टीकाओं की यह हालत है तय स्व-तन्त्र प्रन्थों की तो शत ही क्या ? इन बंधुओं ने मृति-पूजा को शास्त्रोक्त सिद्ध करने के लिये कितने ही नूतन प्रन्थ बना डाले हैं। पहाड़ पर्यतों की महिमा भी खूब भर पेट कर डा-ली है, अन्य को जिल्ला देने में खुशल ऐसे श्री विजयान-दजी में स्वयं 'श्रद्धानितिमर मास्कर' नामक प्रन्थ के पृ० १८ में तिथों का महातम्य सो टंकसाल हैं' शीर्षक से स्पष्ट लिक्कते

"नहीं, गाम, तालाव, पर्वत, मूमि इत्यादिक जो वेदी में नहीं हैं तिनके महात्म्य लिखने सुगे तिनकी कथा जैसी द



तो पण त्रागल जणावेला श्री शीलांक स्रिए करेला ब्राची रांग ना केटलाक पाठोना श्रवला श्रधों उपरथी श्रने चैत्य शब्द ना श्रथं उपर थी श्राप री काई जोई शक्या हशोंके टीकाकारों ए श्रशों करवा मां पोताना समयनेज सामोराखी केटलें वश्रुं जोस्तम खेळ्युं हो। हुं श्रा वावत ने पण स्वीकार कर हुं के जो महेरवान टीकाकार महाश्रयोप जो मूल नो श्रथं मूल नो समय प्रमाणेज कर्यो होत तो जेन शाशन मां वर्मान मां जे मतमतांतरों जोवा मां श्रावे हुं ते घणा श्रोहां होत, श्रने धर्म ने नामें श्रावुं श्रमासनुं श्रंधारं घणुं श्रोहुं व्यापत"

श्रागे पूर्व १३१ में लिखने हैं कि —

ज वात श्रेमो ना मृत पाटो मां नथी ते वात तेना उपां-गोमां, नियु कर श्रोमा, साप्योमां, स्वृणिश्रो मां, श्रवसृणिश्रो मा, श्रने टीक श्रो मां शीरीत होड शके ?

इस प्रकार जब मुल की दीकाओं की यह हालत है तब स्व-तन्त्र प्रस्थों को तो अत ही क्या? इन बंधुओं ने मृति-पृज्ञा को शास्त्राफ्त सिंह करने के लिये कितने ही सूतन शस्य बना डाल हैं। पराड प्रयों की महिमा भी खुब मर पेट कर डा॰ ली है, अन्य को जिला हने में कुगल एसे श्री विजयानन्द्री। में स्वय 'अज्ञानितामर मास्कर' नामक अन्य के पुठ १ मर्म 'तीर्थों का महातस्य सा दक्साल है' श्रीपंक से स्पष्ट लिखते हैं कि—

"नदी, गाम, तालाय, पर्यत, मृमि इत्यादिक जो येदी में नहीं हैं तिनके महातम्य लिखने एको तिनदी कथा जैसी द (४) श्री वल्लभविजयजी गप्प मालिका में लिखते हैं कि श्री भद्रवाहु स्वामी ने व्यवहार सूत्र की चूलिका में वि-षि पूर्वक प्रतिष्ठा करने का कहा है।

इन प्रमाणों पर पाठक विचार करें, इनसे यह स्पष्ट सिख् होता है कि व्यवहार सूत्र की चूलिका श्री भद्र गष्ट स्वाभी रचित है, इसे श्रस्वीकार कर श्री संतवाल रचित, किएत तथा जाली कहने वाले स्वयं जालवाज श्रीर श्रविश्वास के पात्र ठहरते हैं। इस प्रकार एक सत्य वस्तु को श्रसत्य कह-कर तो श्री न्यायविजयजी ने न्याय का खून ही किया है।

ऐसी अनेक करत्ने मात्र अपने मन कित्यत मत को जनता के गले मढ़ने के लिये की जाती है, इसलिये तत्व-जनता के गले मढ़ने के लिये की जाती है, इसलिये तत्व-गवेषी महानुभावों को इनसे सदैव सावधान रहना चाहिये। अब यह सेवकतत्वेच्छुक महानुभावों से निवेदन करता

अय यह सेवकतत्वेच्छुक महानुभावा ता लावस्य करते है कि वे स्वयं निर्णय करं, सत्य का स्वीकार करते हुए स्वपर कल्याणकर्ता वने।

म्॰ पू॰ प्रमाणों से मूर्ति-पूजा की श्रनुपादेयता

यह तो में पहले ही यता चुका हूं कि मूल ग्रंगोपांगादि यह तो में पहले ही यता चुका हूं कि मूल ग्रंगोपांगादि ३२ सुत्रों में कहीं भी मृति पूजा करने, मिन्दर यनवाने, पहा-३१ सुत्रों में भटकने श्लादि की श्लाग्रा नहीं है, ग्लोर न किसी साधु इंगे में भटकने श्लादि की श्लाग्रा ने सह कि ही मिलता है। सूत्रों या श्लावक ने ही धैसा किया हो ऐसा उल्लेख ही मिलता है। सूत्रों या श्लावक ने ही धैसा किया हो ऐसा उल्लेख ही मिलता है। सूत्रों या श्लावक ने ही धैसा किया हो ऐसा उल्लेख ही मिलता है। सूत्रों मंजहां २ श्लावकों का वर्णन श्लाय है पहां २ ज्लाव ग्रंगोपांगांदि भूति पूजा के सम्बन्ध में तो एक श्लार भी 'श्रीमद् भद्रवाहु स्वामी कृत व्यवहार सूत्र चूलिका हुंडे नहिं " ए तो संत्रवाल रचित हुं " बिलकुल जाली तथा नवीन सूत्र हुं " किरात हुं "" श्रादि। यद्यपि इन महात्मा का उक्त कथन एकान्त मिथ्या है, तथापि इन की दूरदर्शिता का पूर्ण परिचायक यदि ये ऐसा नहीं करे तो कथित मृति पूजा की किरातना स्पष्ट होकर इनकी जमी हुई जढ़ खोखली होजाय इसके सिवाय (उक्क प्रन्थ को किर्यत कहे सिवाय) इनके पास श्रपने यनाव का

दूसरा मार्ग भी तो नहीं है।

श्रव यह लेखक न्याय का गला घोंटने वाले इन न्याय विजय जी के उक्त लेख को मिथ्या निद्ध करने के लिये इन्धीं के मनानुयायी श्रीर हमारे पूर्व परिचित मूर्ति-मंडन प्रश्नो- त्यायिजय जी को व्यवहार मूत्र की चृलिका श्री भट्ट बाहु स्वामी रचित है ऐसा सत्य स्वीकार ने की सुके। श्रीर जनता इनके श्रसत्य कथन पर विश्वास नहीं कर प्रमाण युक्त सत्ययात को स्वीकार करें, देखिये, मूर्ति-मंडन प्रश्नोत्तर—

(१) श्री भद्रवाहु स्वामीए पण श्री व्यवहार चृतिका मां द्यविधिनो निषेच करी विधिनो श्रादर कर्गी है। (पृ० २१३)

(२ श्री मद्रवाहु स्वामी वली व्यवहार सूत्र नी चूलिका मां चोवा स्वप्त ना ऋषे मां कहे हुँ के (पृ० २६४)

(३) श्री मह्दाह स्वामीय व्यवहार स्व नी सृतिका मां द्रव्य निर्मी केय स्थापन करवा स्व मी अंग्रेट्यां सृति स्यापना नो अर्थ कर्यों के, (ए० २=६

(४) श्री वल्लभविजयजी गप्प मालिका में लिखते हैं कि श्री भद्रवाहु स्वामी ने त्यवहार सूत्र की चूलिका में वि-घि पूर्वक प्रतिष्ठा करने का कहा है।

इन प्रमाणों पर पाठक विचार करें, इनसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि व्यवहार सूत्र की चूलिका श्री भद्रगहु स्वाभी रचित है, इसे अस्वीकार कर थी संतवाल रचित, किएत तथा जाली कहने वाले स्वयं जालवाज श्रीर श्रविश्वास के पात्र ठहरते हैं। इस प्रकार एक सत्य वस्तु को श्रसत्य कह-कर तो श्री न्यायविजयजी ने न्याय का खून दी किया है।

ऐसी अनेक करत्तें मात्र अपने मन कित्यत मत को जनता के गले मढ़ने के लिये की जाती है, इसलिये तत्व-गवेषी महानुभावों को इनसे सदैव सावधान रहना चाहिये।

अय यह सेवकतत्वेच्छुक महानुभावों से निवेदन करता है कि वे स्वयं निर्णय कर, सत्य का स्वीकार करते हुए

स्वपर कल्याणकर्ता वने।

म्॰ पू॰ प्रमाणों से मूर्ति-पूजा की श्रनुपादेयता

यह तो मैं पहले ही बता चुका है कि मूल ख्रेगोपांगादि ३२ सुत्रों में कहीं भी मूर्ति पूजा करने, मन्दिर यनवाने, पहा-रू स्वा न कारि की साहा नहीं है, और न किसी साधु शास मध्या आवक ने ही धैसा किया हो ऐसा उल्लेख ही मिलता है। सूत्रों या श्रावक ने ही धैसा किया हो ऐसा उल्लेख ही मिलता है। सूत्रों या आवण । या को वर्णन आया है वहां २उनके प्रभु वन्दन में जहां २ आवकों का वर्णन आया है वहां २उनके प्रभु वन्दन भगवा , व्रताचरण, व्रतपालन, कष्ट सहन शादि का कथन धर्मश्रवण, मूर्ति-पूजा के सम्बन्ध में तो एक अत्तर भी तो है।

'श्रीमद् भद्रवाहु स्वामी कृत व्यवहार सूत्र चूलिका छेत नहिं ... ए तो संत्रवाल गचित छे... ... बिलकुल जाली तथा नवीत सूत्र छे किएत छे श्रादि । यद्यपि इन महात्मा का उक्त कथन एकान्त मिथ्या है,

तथापि इन की दूरदर्शिना का पूर्ण परिचायक यदि ये ऐसा नहीं करें तो कथित मृति पूजा की किंद्रानता स्पष्ट होकर इनकी जमी दुई जड़ खोखला होजाय इसके तिवाय (उक्त प्रस्थ को किंद्रात कहें सिवाय। इनके पास अपने यचाव का दूसरा मार्ग भी तो नहीं है।

श्रय यह ले वक न्याय का गला घोंटने वाले इन न्याय यि जय ती के उक्त लेख को मिश्या निद्ध करने के लिये इन्हीं के मतानुयायी श्रीर हमार पूर्व परिचित मूर्ति-मंडन प्रश्नो- लरकार के निस्न लिखित प्रनाण देता है, कि जिन्हें देखकर श्री न्यायविजय ती को व्यवहार मुत्र की चूलिका श्री भट्ट याहु स्वामी रिचित है एया सत्य स्वीकार ने की सूके। श्रीर जनता इनके श्रमत्य कथन पर विश्वास नहीं कर प्रमाण युक्त सत्ययात का स्वीकार करें, देखिये, मृति-मंडन प्रश्नोत्तर —

्रश्री भद्रवाह स्वामीए पण श्री व्यवहार चृतिका मां चिविधना निषेच करी विधिना खादर कर्यो छै। (पू० २१३)

(२ थी महवाह स्वामी वली व्यवहार सूत्र नी चूलिका मां चावा स्वान ना श्रथ मा कहे छे के (ए० २६४)

(३) श्री मद्रबाह स्वामील व्यवहार गृथ नी स्नुलिका मां द्रव्य निगी चेन्य स्थापन करवा लगी संग्रेत्यां मृति स्थापना नो अर्थ कर्यो हो, (१०२=६ में विरकात से रूढि रूप चला छाता है, से। भी संसार भीर गीतार्थ समित किएत दूपरो करी दृषित न करे'।

(अज्ञान तिमिर भाष्कर पृ० २६४)

इस उत्तर में यह स्पष्ट कहा गया है कि — चैत्यवंदन पुत्र में नहीं कहा है, पुनः स्पष्टीकरण देखिए-

"कितनीक कियां को जे आगम में नहिं कथन करी है ितिनको करते हैं, श्रीर जे श्रागम ने निषेध नहीं करी है-चिरंतन जनों ने श्राचरण करी है तिनको श्रविधि कह करके िनिपेघ करते हैं, श्रीर कहते हैं यह कियाश्री धर्मी जनां को करणे योग्य नहीं है, किन किन किया में विषे "चैत्य कृत्येषु-स्तात्रविम्य प्रतिमाकरणादि," तिन विषे पूर्व पुरुषों की पर-परा करके जो विधि चली श्राती है तिसको श्रविधि कहते (श्रज्ञान तिमिर भास्कर पृ० २९६) . हें"।

श्री विजयानन्दस्रि के उक्त कथन से यह स्पष्ट होगया कि—चैत्य कराना, स्नात्र पूजा, िस्व प्रतिमा स्थापना आदि कत्य सूत्रों में नहीं कहे, किन्तु केवल पूर्वजों से चली आती

(२) संधपटुक कार थी जिन वज्ञमसूरि क्या कहते हैं ं हुई राति है।

ं का अध्यारुषं मुग्ध-मीनान् यहिशपि शित्वद् विवमादश्ये जैनं । तलाम्ना रम्यरूपा-नयवर-कमठान् स्वेष्ट-सिद्धः विधा-जन । तजार । वजार । जन । वजार | वजार भदालुमीम जैनेश्वलित इच शहेंचेंच्यते हा जनोऽयम् ॥२१॥

नहीं है। कोणिक राजा प्रभु का प्रस्म मक था, सदै प्रभु के समाचार मंगवाया करता था। सम्बाद माप्त करते को उसने कितने ही नौकर रख छोड़े थे। जो कि प्रभु के विद्यार्थ के समाचार हमेशा पहुंचाया करें ऐसा श्रीपपातिक सूत्र में कथन है, किन्तु ऐसे स्थान पर भी यह नहीं तिका कि कीणिक महाराज ने एक छोटासा भी मन्दिर बनाया हो, या मूर्ति के दूरीन पूजन करता हो, इस पर से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मूर्ति-पूजा शास्त्रोक्त नहीं है।

इमारे इतने प्रयास स मृति-पुजा अनावश्यक और बीत-राग धर्म के विरुद्ध प्रमाणित हो जुकी, तथापि अब मू॰ पू॰ की द्देयता दिखाने को मृति-पूजक समाज केमान्य प्रत्यों के ही कुछ प्रमाण देकर यह अनावश्यक सिद्ध की जाती है।

(१) सब प्रथम श्री विजयानन्द स्रिजी के निस्न प्रज्ञोचर को ध्यान पूर्वक पढिये।

प्रशन-तुमने कहा है जो सूत्र में कथन करा है सो प्ररूपण करे, जो पुनः सूत्र में नहीं है श्रीर विवादास्पव् लोगीं में है। कोई कैसे कहता है श्रीर कोई किस तरह कहना है, तिस विषयक जो कोई पृष्ठे तब गीतार्थ को क्या करना दिवित है?

टक्तर—जो वस्तु भनुष्टान सूत्र में निर्दे सथन करा है, करने योग्य सूत्य वस्तुन भावश्यकादि सम् और नासा विवाद दी दरह सूत्र में निर्देश मी नहीं सरा है, और लोगों

नहीं है। को गिक राजा प्रभु का परम भक्त था, सदेव प्रभु के समाचार मंगवाया करता था। सम्बाद प्राप्त करते को उसने किनने ही नौकर रख छोड़े थे। जो कि प्रभु के विहार रादि के समाचार हमेशा पहुंचाया करें ऐसा श्रीपपातिक सूत्र में कथन है, किन्तु ऐसे स्थान पर भी यह नहीं तिला कि की गिक महाराज ने एक छोटासा भी मन्दिर बनाया हो, या मूर्ति के दर्शन पूजन करता हो, इस पर से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मूर्ति-पूजा शास्त्रोक्त नहीं है।

हमारे इतने प्रयास से मृति-पूजा श्रनावश्यक और बीत-राग धर्म के विरुद्ध प्रमाणित हो चुकी, तथापि अब मू० पू० की देयता दिखाने को मृति-पूजक समाज केमान्य प्रन्थोंकेही कुछ प्रमाण देकर यह श्रनावश्यक सिद्ध की जाती है।

(१) सब प्रथम श्री विजय'नन्द स्रिजी के निम्नप्रश्नोद्धर को ध्यान पूर्वक पहिंचे।

परन-तुमने कहा है जो मुत्र में कथन करा है सी
प्ररूपण करे, जो पुनः मुत्र में नहीं है और विवादास्पद लोगों
में है। कोई कैसे कहता है और कोई किस तरह कहता
है, तिस विषयक जो कोई पृष्ठ तय गीतार्थ को प्रयाकरना
दिवित है?

उत्तर—जो वस्तु बहुशन सूत्र में नहिं बयन सर। है, बरने योग्य बहुए बन्दन कायरप्रशदि यन और प्राणा क्रिपाट दी टरड सूत्र में निषय भी महीं बरा है, और लोगी

नहीं है। को िएक राजा प्रभु का परम भक्त था, सदैव प्रभु के समाचार मंगवाया करता था। सम्बाद माप्त करने को उमने किनने ही नीकर रख छोड़े थे। जो कि प्रभु के विहार रादि के समाचार हमेशा पहुंचाया करें ऐसा श्रीपपातिक सूत्र में कथन है, किन्तु ऐसे स्थान पर भी यह नहीं लिखा कि की िएक महाराज ने एक छोटासा भी मन्दिर बनाया हो, या मूर्ति के दर्शन पूजन करता हो, इस पर से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मूर्ति-पूजा शास्त्रोक नहीं है।

हमारे इतने प्रयास स मृति-पूजा श्रनावश्यक और बीत-राग धर्म के विरुद्ध प्रमाणित हो चुकी, तथापि भव मृ० पृ० की देयता दिखाने को मृति-पूजक समाज केमान्य प्रत्यों केही कुछ प्रमाण देकर यह श्रनावश्यक सिद्ध की जाती है।

(१) सब प्रथम श्री विजय नन्द सूरिजी के निम्न धर्नोच्छ को घ्यान पूर्वक पहिसे।

प्रश्न-तुमने कहा है जो मुत्र में कथन करा है सो
प्ररूपण करे, जो पुनः मुत्र में नहीं है और विवादास्पदलोगों
में है। कोई कैम कहता है और कोई किम तरह कहता
है, तिस विषयक जो कोई पृष्ठे तय गीतार्थ की क्या करना
हिन्नी हैं?

उसर—जो वस्तु अनुष्ठान सुत्र में निर्दे कथन सर। है, करने योग्य समय यन्द्रन आयण्यकादि घर श्रीर माला क्रियाट की दृष्ट सूत्र में निर्देश भी नहीं करा है, श्रीर सीगी

नहीं है। को गिक राजा प्रभु का परम मक्क था, सदैव प्रभु के समाचार मंगवाया करता था। सम्बाद प्राप्त करने को उसने किनने ही नौकर रख छोड़े थे। जो कि प्रभु के विद्या-रादि के समाचार हमेशा पहुंचाया करें ऐसा श्रीपपातिक स्व में कथन है, किन्तु ऐसे स्थान पर भी यह नहीं लिखा कि की गिक महाराज ने एक छोटासा भी मन्दिर बनाया हो, या मूर्ति के दर्शन पूजन करता हो, इस पर से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मूर्ति-पूजा शास्त्रोक्त नहीं है।

हमारे इतने प्रयास स मृति-पूजा श्रनायश्यक और बीत-राग धमें के विरुद्ध प्रमाणित हो चुकी, तथापि भव मृ० पृ० की देयता दिखाने को मृति-पूजक समाज केमान्य प्रत्यों केही कुछ प्रमाण देकर यह श्रनायश्यक सिद्ध की जाती है।

(१) सब प्रथम श्री विजयानन्द सूरिजी के निम्नप्रहनोन्नर को घ्यान पूर्वक पहियो।

परन—तुमने कहा है जो मृत्र में कथन करा है सो प्रमुप्त करे, जो पुनः मृत्र में नहीं है और विवादास्पद होगी में है। कोई कैस कहता है और कोई किस तरह कहता है, दिस विषयक जो कोई पृष्ठे तय गीतार्थ को क्या करना टिचित है?

उत्तर—मो वस्तु भतुष्टान सूत्र में निर्दे कथन सर। है, करने योग्य चन्य बन्दन अवश्यकादि घत् और माना निपाट बीटाइ सूत्र में निषय भी नहीं कथा है, और सोगी

नहीं है। को एिक राजा प्रभु का परम सक था, सदैव प्रभु के समाचार मंगवाया करता था। सम्बाद प्राप्त करने को उसने किनने ही नौकर रख छोड़े थे। जो कि प्रभु के विहा रादि के समाचार हमेशा पहुंचाया करें ऐसा श्रीपपातिक सूत्र में कथन है, किन्तु ऐसे स्थान पर भी यह नहीं लिखा कि की एिक महाराज ने एक छोटासा भी मन्दिर वनाया हो, या मूर्ति के दर्शन पूजन करता हो, इस पर से यह साष्ट सिद्ध होता है कि मूर्ति-पूजा शास्त्रोक्त नहीं है।

हमारे इतने प्रयास स मूर्ति-पूजा अनावश्यक और बीत-राग धर्म के विरुद्ध प्रमाणित हो चुकी, तथापि ग्रव मू० पू० की देयता दिलाने को मूर्ति-पूजक समाज केमान्य प्रत्योंकेही कुछ प्रमाण देकर यह अनावश्यक सिद्ध की जाती है। (१) सब प्रथम श्री विजयानन स्मिनी के विरुद्ध निर्माण

(१) सब प्रथम श्री विजय नन्द स्रिजी से निस्न प्रश्ने) सर को ध्यान पूर्वक पहिसे।

प्रश्न-तुमने कहा है जो मृत्र में कथन करा है सो प्ररूपण करे, जो पुनः मृत्र में नहीं है जीन विवादास्पद लोगों में है। कोई कैसे कहता है जीन कोई किस तरह कहता है, तिस विषयक जो कोई पृष्ट तय गीतार्थ को प्रयाकरना उचित है।

उत्तर—जो वस्तु अनुष्टान सूत्र में निर्दे कथन खरा है, करने योग्य धन्य वन्द्रन आवश्यकादि धन् श्रीर माणा क्रिपाद ही हाइ सूत्र में निषय भी नहीं करा है, और लोगी

अर्थात्—जिस प्रकार रसमेन्द्रिय में मुग्ध महालियों को फंसाने के लिए बिधिक लोग मांस को कांटे में लगाते हैं, उसी प्रकार द्रव्य लिंगी लोग मांसवत् ऐसे जिन बिग्व को दिखाकर, तथा स्वर्गादि इप्ट सिद्धि कहकर, यात्रा स्नात्रादि उपायों से, निशा जागरणादि छुलों से यह श्रद्धालु भक्त, धूर्व की तरह नामधारी जैनों से उगे जाते हैं यह दुःख की बात है।

यह एक मू० पू० आचार्य के दुःग्वद हृद्य के उद्गार क्या संघपट्टक का २१वां काव्य मूर्ति पूजा के पाखगृह और स्वार्थ पिपासुओं की स्वार्थपरता को खुल्ला करने में पर्याप्त है, वास्तय में मूर्ति पूजा की ओट से मतलवी लोगों ने जन साधारण को खूब घोजा दिया है, अतप्य मुमुखुओं को इससे सर्वधा दूर ही रहना चाहिये।

(३) स्थयं विजयानन्दस्रि सृति पूजा को धर्म का आंग नहीं मानकर लौकिक पद्धति ही मानते हैं, वेखिये जैनतत्वा वर्ग पृ० ४१८—

"विध्न उपशांत करणे घाली ऋक प्रवादि, तथा मोटा अभ्युद्य पुण्य की साधने घाली अग्र प्रवादि, तथा मोहा की दाता भाव पूजा है"।

इसमें केयल मात्र पूजा को ही मोल दाता मानी है, और मात्र पूजा का स्वक्ष में ही ए० ४११ पर जिलते हैं ि

'इहां मने जो मान पूत्रा है, सो और

•" |

अर्थात्—जिस प्रकार रसने निद्रय में मुख्य महालियों को , फंसाने के लिए बिघक लोग मांस को कांट में लगाते हैं, उसी प्रकार द्रव्य लिंगी लोग मांसवत् ऐसे जिन बिग्ब को दिखाकर, तथा स्वर्गादि इप्ट सिद्धि कहकर, यात्रा स्नात्रादि उपायों से, निशा जागरणादि छलों से यह श्रद्धालु भक्त, धूर्न की तरह नामधारी जैनों से उने जाते हैं यह दुःख की बात

यह एक मू० पू० आचार्य के दुःग्वद हृदय के उद्गार मा संघपट्टक का २१वां काव्य मूर्ति पूजा के पासगृह भीर स्वार्थ पिपासुश्रों की स्वार्थपरता को खुल्ला करने में पर्यात है, बा-स्तय में मूर्ति पूजा की शोट से मतलवी लोगों ने जन साधा-रण को खूब घोषा दिया है, श्रतपत्र मुमुखुश्रों को इससे सर्वया दूर ही रहना चाहिये।

(३) स्वयं विजयानन्दस्ति मृति पृता को अमे का अंग नहीं मानकर लौकिक पद्धति ही मानते हैं, देखिये जैननत्वा इंग्र पृ० ४१८—

"विष्त उपशांत करणे वाली अक्न पूजादि, तथा मोहा अभ्युद्य पुण्य की साधने याली अग्न पूजा है, तथा मोस्सी दाता भाव पूजा है"।

इसमें केत्रक भाव पूजा को ही मोश दाता मानी है, जीर भाव पूजा का स्वक्ष के ही पुरु ४१६ पर जिन्नते हैं कि---

ंश्वां कर्षे को भाष पूका है, को भी किनाबा का पासना है'। ्रसी तरह थी हरिनद्रसूरि भी लिखते हैं कि ं भाषणी मुक्ति ईश्वरनी आहा पालवा मांज छेः'। (जैन दर्शन प्रस्तावना पृ० ३३)

्रिफिर पूजा का स्वरूप भी हरिभद्रसूरि क्या वताते हैं,

देखिए-

'पूजा एउले तेक्रोनी क्याशातुं पालन'। (जैन दर्शन प्र० पृ० ४१)

इस प्रकार प्रभु आज्ञा पालन रूप भाव पूजा ही आतम. कत्याण में उपादेय है, किन्तु मूर्ति पूजा नहीं। श्रीर भाव प्जा में साधुवर्ग भी पंच महावत, ईटर्या भाषादि पंच समिती तीन गुप्ति, श्रीर श्रानादि चतुष्ट्य का पालन करके करते हैं, भावक वर्ग सम्यक्त्व पूर्वक बारह व्रत तथा अन्य त्याग् प्र-त्याख्यानादि करके करते हैं, यह भाव पूजा अवश्य मोक्त जैसे शाश्वत छुख की देने वाली है। और मूर्ति पूजा तो आत्मकल्याण में किसी भी तरह आदरणीय नहीं है, यह तो उल्ही श्रास्त्रव द्वार का जो कि आत्मा को भारी बनाकर आत्मकल्यण से वंतित रखता है, सेवन कराने वाली है, जिसमें प्रभु आबा भंग हर पाप रहा हुआ है, अतएव

ान थाप्य वा क्रानित्वस्रिजी 'दीवानुं सुन्दर स्वरूप' नाम त्यागने योग्य ही है।

पुस्तिका के पूर १४७ पर लिखते हैं कि -

तका न हैं 'श्री जिनेश्वर भगवाननी पूजा वगेरे चुं फल चारित्र भागा वात्य ना लाखमां अशे पण नथी आवतं, अने धमना आयता, मादिने छोड़ी ने पण भाव धर्म रूप चारित्र तथी तेवी पूजा ग्रादिने छोड़ी ने पण भाव धर्म रूप चारित्र नंगीकार करवा मां भावे छे'।

अर्थात्—जिस प्रकार रसमेन्द्रिय में मुग्ध महालयों को किसाने के लिए बिधिक लोग मांस को कांटे में लगाते हैं, उसी प्रकार द्रव्य लिंगी लोग मांसवत् ऐसे जिन बिग्ध को दिखाकर, तथा स्वर्गादि इप्ट सिद्धि कहकर, यात्रा स्नात्रादि उपायों से, निशा जागरणादि छुलों से यह अहानु भक्त, धूर्न की तरह नामधारी जैनों से ठगे जाते हैं यह दुःस की बान है।

यह एक मू० पू० आचार्य के दुःग्य इट्य के उद्गार कप संघपट्टक का २१वां काव्य मूर्ति पूजा के पासगृह और स्थार्थ पिपासुओं की स्वार्थपरता को खुल्ला करने में पर्याप्त है, बा-स्तय में मूर्ति पूजा की ओट से मतलवी लोगों ने जन साधा-रण को खूद घोष्ता दिया है, अतप्य मुमुखुओं को इससं सर्वेथा दूर ही रहना चाहिये।

(३) स्वयं विजयानन्दस्रि मृति पृता को अमें आ अंग नहीं मानकर लौकिक पद्धति ही मानते हैं, वेक्किये जैनतत्वा दुर्ग पृ० ४१८—

''विष्न उपर्शात करणे वाली ऋक पूजादे, तथा मोटा ऋभ्युद्य पुण्य की साधने वाली सम्र पूजा है, नथा 'मोख की कृता भाव पूजा है"।

इसमें केयस भाव पूजा को ही मोदा दाता मानी है, और भाव पूजा का स्वक्षय में की पूर्व ४१६ पर जिसले हैं कि---

'श्रद्धां सबे को जाब पूजा है, सो भी जिलावा का पासना है'।

इसी तरह थी हरिभद्रस्रि भी लिखते हैं कि 'भापणी मुक्ति ईश्वरनी आजा पालवा मांज छेः'। (जैन दर्शन प्रस्तावना पृ० ३३)

्र फिर पूजा का स्वरूप भी हरिभद्रसूरि क्या बताते हैं, ंदेखिए--

'पूजा एउले तेश्रोनी आशार्त पालन'।

(जैन दर्शन प्र० पृ० ४१)

इस प्रकार प्रभु श्राह्म पालन रूप भाव पूजा ही आतम. कल्याण में उपादेय है, किन्तु मूर्ति पूजा नहीं। श्रीर भाव प्ता में साधुवर्ग भी पंच महावत, ईर्य्या भाषादि पंच समिती तीन गुप्ति, श्रीर झानादि चतुष्ट्य का पालन करके करते हैं, भावक वर्ग सम्यक्त्व पूर्वक बारह व्रत तथा श्रन्य त्याग् प्र-त्याख्यानादि करके करते हैं, यह भाव पूजा ग्रवश्य मोत्त जैसे शाश्वत छुख की देने वाली है। श्रीर मूर्ति पूजा हो भात्मकल्याण में किसी भी तरह आदरणीय नहीं है, यह तो उल्टी श्रास्त्रव द्वार का जो कि आत्मा को भारी बनाकर श्रात्मकल्यण से वंचित रखता है, सेवन कराने घाली है, जिसमें प्रसु काहा भंग रूप पाप रहा हुका है, अतएव

ाग थाण्य वा क्र त्यागने योग्य ही है।

पुस्तिका के पृ० १४७ पर लिखते हैं कि -प्रशासिक अगवाननी पूजा वगेरे वुं फल चारित्र आ। जगान ता लाखमां अंशे पण नथी आवतं, अने धमना आराया आदिने छोड़ी ने पण भाव धर्म रूप चारित्र तथी तेवी पूजा आदिने छोड़ी ने पण भाव धर्म रूप चारित्र भंगीकार करवा मां भावे हैं'।

अर्थात्—जिस प्रकार रसमेन्द्रिय में मुग्ध महिलयों को फंसाने के लिए बिधिक लोग मांस को कांटे में लगाते हैं, उसी प्रकार द्रव्य लिंगी लोग मांसवत् ऐसे जिन बिग्ब को दिखाकर, तथा स्वर्गादि इप्ट सिद्धि कहकर, यात्रा स्नात्रादि उपायों से, निशा जागरणादि छुलों से यह अद्वालु भक्त, धूर्व की तरह नामधारी जैनों से ठगे जाते हैं यह दु:स की बात है।

यह एक मू० पू० आचार्य के दुः छद हृद्य के उद्गार कर संघपट्टक का २१ यां काट्य मृति पूजा के पालगृह और स्वार्ध पिपासुश्रों की स्वार्थपरता की खुल्ला करने में पर्याप्त है, वास्त्रय में मूर्ति पूजा की श्रोट से मतल्जी लोगों ने जन साधारण को खूब घोजा दिया है, अतएव मुमुलुओं को इससं सर्वया दूर ही रहना चाहिये।

(३) स्वयं विजयानन्दस्रि मृति पृजा को धर्म का श्रंग नहीं मानकर लौकिक पद्मति ही मानते हैं, वेश्विये जैनतत्वा इग्रे पृ० ४१८—

"विचन उपशांत करणे घाली ऋक पूजाहै, तथा बोधा अभ्युद्य पुण्य की साघने घाली अग्र पूजा है, तथा 'बोच की बाता मात्र पूजा है"।

इसमें केवन भाव पूजा को ही मोश दाता मानी है, और भाव पूजा का रुवका में डी पू॰ ४१६ पर जिस्ते हैं कि—

ंदर्श सर्वे जो भाव पूजा है, को भी जिनावा का पातका है':

इसी तरह थी हरिभद्रस्रि भी लिखते हैं कि 'आपणी मुक्ति ईश्वरनी आहा पालवा मांज छेः'। (जैन दर्शन प्रस्तावना पृ० ३३)

्रिफिर पूजा का स्वरूप भी हरिभद्रसूरि क्या बताते हैं, देखिए--

'पूजा एउले तेश्रोनी आशार्त पालन'।

(जैन दर्शन प्र० पृ० ४१)

्रस प्रकार प्रभु आहा पालन रूप भाव पूजा ही आतम-कल्याण में उपादेय है, किन्तु मूर्ति पूजा महीं। श्रीर भाव प्जा में साधुवर्ग भी पंच महावत, ईच्या भाषादि पंच समिती तीन गुप्ति, और झानादि चतुष्य का पालन करके करते हैं, भावक वर्ग सम्यक्त्व पूर्धक बारह व्रत तथा अन्य त्याग् प्र-त्याच्यानादि करके करते हैं, यह भाव पूजा अवश्य मोत जनाद करक करत है, यह मान पूजा अवश्य माल जैसे शाश्वत छुख की देने वाली है। और मूर्ति पूजा तो भात्मकल्याण में किसी भी तरह आदरणीय नहीं है, यह तो उल्टी आसव द्वार का जो कि आत्मा को भारी बनाकर आत्मकल्यण से वंचित रखता है, सेयन कराने घाली है, जिसमें प्रसु काहा भंग हर पाप रहा हुआ है, अतएव

।न याग्य वा स् (४) श्री सागरानन्दस्रिजी 'दीतानुं सुन्दर स्वरूप' नाम त्यागने योग्य ही है।

पुस्तिका के दृ० १४७ पर लिखते हैं कि -

तका नार है 'श्री जिनेश्वर भगवाननी पूजा वगेरे वुं फल चारित्र अगाजा ना लाखमां अंशे पण नथी आवतुं, अने धमना भाषा आदिने छोड़ी ने पण भाव धर्म रूप चारित्र तथी तेवी पूजा आदिने छोड़ी ने पण भाव धर्म रूप चारित्र तथा पना करवा मां भावे हैं'।

श्रव हमारे पाठक स्वयं विचार कर निर्णय करें कि कहां तो धर्म का श्रद्ध चारित्राराधन श्रीर कहां उसके लाव श्रंश में भी नहीं शाने वाली मृति पूजा ? वास्तव में तो मू पूजा में श्रनन्तवें भाग भी धर्म नहीं है, किन्तु श्रधमें ही हि श्रत्यव त्यागने योग्य है।

(प) पुनः सागरानन्दस्रिजी इसी ब्रन्थ के पृ०१७ में पर चौभंगी द्वारा भाष निद्धेष को ही बन्दनीय, पूजनीय सिर करते हैं, देखिये वह चौभंगी—

'एक तो चांदी नो कटको जो के चोखी चांदी नो है, छतां रुपियां नी महोर छाप न होय तो तेन रुपियो कहवाय नहीं, अने ते चलण तरीके उपभोग मां आयी शके नहीं? बीजो रुपियांनी छाप बांवा ना कटका उपर होय तो पण ते बांवा नो कटको रुपियां तरीके चाली शके नहीं, बीजो बांबा ना कटका उपर पंसानी छाप होय तो ते रुपियों नज गणाय, अने चोथों भांगोज पवो छ के जेमां चांदी चोखी अने छाप पण रुपियांनी साची होय, तेनोज दुनियां मां रुपियां तरीके स्ववहार थह शके, अने चलण मां चालें।

यदी उदाहरण श्री हरिसदस्रि ने श्रायश्यक छूनि में बन्दनाच्ययन की स्याच्या करते हुए बन्दनीय पर भी दिया है।

यद्यपि उक्त चीं भंगी लेखक ने मृति प्ता पर नहीं दी, तथापि उक्त चीं भंगी पर से यह तो स्पष्ट सिंद ही जाता है कि चतुर्व भंग कर्षीत स्वात भाग निशेष युक्त प्रभु ही कार्य सावक है, क्यार मृति पूजा ता तांवे के दुक्त है पर स्पर्व २०५ की द्वाप बाबे दूसर भंग की तरह एक्ट्रम निश्चेक है। मु-सुत्रुषों को इस पर स्वृत्त मन्त्र करता वाहिके।

(६) चौदह पूर्वधर श्रीमान भद्रवाहु स्वामी ने व्यवहार सत्र की चूलिका में चन्द्रगुप्त राजा के पांचवें स्वप्त के फल में भविष्य में कुगुरुश्रों द्वारा प्रचलित होने वाली मूर्ति पूजा की भयंकरता दिखाते हुए जिखा है कि

"पंचमप दुवालस फिर्मा संजुत्तो, करहे ग्रहि दिहो, त-ससफलं—दुवालसवास परिमाणो दुक्कालो भविस्तइ तत्थ कालिय-सुयरपमुहाणि सुत्ताणि वोच्छि दिजसंति, चेइयं ठवा-वेर, द्व्वहारिणा मुणिणो भविस्संति, लोभेण माला रोहण देवल-उवहाण-उज्जमण जिल विम्य-प्रहावण विहि पगासि-संति, श्रविहि पंथे पहिसा तत्थ जे के इ. साह साहिणिश्रो सावय-सावियाश्रो, विहि-मागे चुहिसंति तसि यहण हिल्णाणं, णिदणाणं, खिल्णाणं, ठारहणाणं, भविस्तरं"। अर्थात्—पांचवें स्यप्त में द्वादश फर्ली वाले काले सर्प

को जो देखा है उसका फल यह है कि—

भविष्य में द्वादश वर्ष का दुष्काल पड़ेगा, उस समय का लिका आदि सूत्र विच्छेद जायँगे, दृष्य रखने वाले मुनि होंगे, जाद सूत्र विरुद्ध आहें। वैत्य स्थापना करेंगे, लोम के वशहोकर मूर्ति के गले में माला-रोपण करेंगे, मन्दिर, उपधान, उजमणा करावेंगे, सूर्ति-स्थापन व प्रतिष्ठा की विधि प्रकट करेंगे, स्विधि मार्ग में पड़ेंगे, सौर न पात्रक्षा का ।वाय न्यान्य साध्यों, श्रावक, श्राविका, विधि मार्ग उस हमय जो कोई हांचु साध्यों, श्रावक, श्राविका, विधि मार्ग जल रुमय जा कार लाज होता. जान जा जात नाम साम प्रवर्तने वाले होंगे, उनको बहुत निद्दा, अपमान, अप शब्दादि

प्रिय पाठक वृन्द ! श्रोमद्भद्रवाह स्वामी का उक्त भविष्य ते हीलना करेंगे i ाप्रय पार्ट सत्य निकला, ऐसा ही हुआ, और अब तक बरा-बर हो रहा है।

श्रीमद् भद्रवाहु स्वामी के उक्त कथन को बताने वाली श्री व्यवहार सूत्र की चूलिका पर श्री न्याय विजयजी इतने कृष् हैं कि—यदि इनकी चलती तो उक्त चूलिका की समस्त प्रतिये एकत्रित कर हवन कुएड की भेट कर देते, किंतु विवयता वश सिवाय मिथ्या भाषण के झन्य कोई उपाय ही नहीं मूभता, जिसका परिचय पहले करा दिया गया है।

. (७) सम्बोध पकरण में इस्भिट्ट सूरि लिखते हैं कि—

संनिहि महा कम्मं जल, फल, कुसुमाइ सन्त्र सचितं चेह्य मठाहवासं पूयारंमाइ निच्चवासित्तं। देवाइ दन्त्रभोगं जिसाहर शालाइ करसंच ॥

भर्यात्—प्रथम रुचित्त जल, फल, फूलों का भारम्भ पूजा के लिए हुवा, चैत्यवासभीर चैत्य पूजा चली देव द्रव्य भीगना, जिन मन्दिरादि बनवाना चला।

(=) सन्देह दोलावली में लिखा है कि— गड़री-प्यवाहऊ जे एड़ नयरंदीसह बहुजिसोहि जिसागह कारवबाह सो धम्मो सुच विरुद्धो अधम्मोय।

इयति-लोक में गङ्गिया भवाह से गतानुगतिक अलते वाला भमूह कथिक दोता है, वे जिन मन्दिरादि करवाना यह मुद्र विक्ट कथमें को भी धर्म मानने वाले हैं।

(१) विवाद सुलिका के र में पाहुड़े के द में उरेते में रूक्ट्रीक--

ज्ह्यां भंते जिण पहिमायां वन्दमायो, श्रव्चमायो सुय-भगं चरित्त धरमं लभेज्जा ? गोयमा ? ग्यो श्रष्टे समङ्घ । सेकेण हेणं भंते एवं युच्चइ ? गोयमा ? पुढवी कार्य हिसइ,

जाव तस कायं हिसइ। मर्थात्-श्री गौतम स्वामी प्रश्न करते हैं कि नमही भगवान्! नयात्-श्रा गातम स्वामा भरत पार्थि प्या श्रुत धर्म चारित्र जिन प्रतिमा की वन्द्ना अर्घना करने से क्या श्रुत धर्म चारित्र धर्म की प्राप्ति होती है ? उत्तर-यह अर्थ समर्थ नहीं। पुनः प्रश्न-पंसा क्यों कहा गया ? उत्तर-इसिलप कि-प्रतिमा पूजा में पृथ्वीकाय से लेकर श्रसकाय तक के जीवों की हिंसा होती है।

इस प्रकार विवाह चूलिका में भी मू॰ पू॰ द्वारा सूत्र

चारित्र धर्म की हानि बताई गई है। यद्यपि विवाह चूलिका से उक्त सम्बाद प्रभु महावीर मौर श्री गौतम स्वामी के बीच होना पाया जाता है, किन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि-प्रन्यकारों की यह एक शैली है, जो प्रश्नोत्तर में प्रसिद्ध और सर्व मान्य महान मात्सामों को सड़ा कर देते हैं। वर्तमान के बने हुए कितने ही ऐसे स्वतंत्र गुन्थ विस्ताई देते हैं जिनमें उनके रचनाकार कोई अन्य महात्मा अन्य दिखाइ वर्त का दांचा भगवान महावीर भीर श्री हात हुए मा प्रश्ताप ना में का रचा गया है, ऐसे ही जो गातमगणधर के प्रांत मार्वार्थ रचित हैं, उनमें भी ऐसी भी सूत्र पन्य पूर्व है, तद्तुसार विवाह चूलिका के रचयिता श्री ग्रह्मा पकड़ा पर पा जनता को भगवदाश का स्वरूप बताने भद्रवाई स्वामी ने भी जनता को भगवदाश का स्वरूप बताने भद्रवाड स्वाम के लिये उक्त कथन का श्री महावीर और गौतम गणधर वे श्रीमद् भद्रवाहु स्वामी के उक्त कथन को बताने वाली श्री व्यवहार सूत्र की चूलिका पर श्री स्थाय विजयजी इतने कृद हैं कि—यदि इनकी चलती तो उक्त चूलिका की समस्त प्रतियें एकत्रित कर हचन कुएड की भेट कर देते, किंतु विवशता वश सिवाय मिथ्या भाषण के अन्य कोई उपाय ही नहीं मृभता, जिसका परिचय पहले करा दिया गया है।

(७) सम्बोध पकरण में इरिभद्र सूरि लिखते हैं कि-

संनिहि महा कम्मं जल, फल, कुसुमाइ सन्त्र सिन्तं चेह्य मठाहवासं प्यारंमाइ निञ्चवासित्तं। देवाह दन्त्रभोगं जिणहर शालाइ करणंच ॥

अर्थात्—प्रथम रूचित्त जल, फल, फूलों का आरम्भ पूजा के लिए हुवा, चैत्यवासऔर चैत्य पूजा चली देव द्रुव्य भोगमा, जिन मन्दिरादि बनवाना चला।

(=) सन्देह दोलावली में लिखा है कि— गड़री-प्यवाहऊ जे एड़ नयरंदीसड़ वहुविबेदि विकासक कारवबाद सो धरमो सुत्त विरुद्धो अधरमोय।

इयदि-तोक में गड़रिया दवाह से गतानुगतिक अन्तर्भ वाता समुद्द कविक कोता है, ये जिन मन्दिरादि करवाना यह इब विक्त कवर्म को मी धर्म मानते वाले हैं।

(१) विशास स्विता के र में पातु है के माने प्रदेश में fam है कि--- जइएं मंते जिण पिंडमाएं बन्दमारों, अञ्चमारों सुय-परमं चरित्त घरमं लभेज्जा ? गोयमा ? एगे अहे समह । सेकेणहेएं मंते एवं युञ्चइ ? गोयमा ? पुढवी कायं हिसइ, जाव तस कायं हिसइ।

मर्थात्-श्री गौतम स्वामी पश्न करते हैं कि-महो भगवान्! जिन पतिमा की वन्द्रना मर्चना करने से क्या श्रृत धर्म चारित्र धर्म की प्राप्ति होतो हैं ? उत्तर-यह मर्थ समर्थ नहीं। पुनः प्रग्न-ऐसा क्यों कहा गया ? उत्तर-इसलिए कि-प्रतिमा पूजा में पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकाय तक के जीवों की हिंसा होती

इस प्रकार विवाह चूलिका में भी मू॰ पू॰ द्वारा सूत्र चारित्र धर्म की हानि बताई गई है।

यद्यपि विवाह चूलिका से उक्त सम्वाद प्रभु महाबीर और श्री गौतम स्वामी के बीच होना पाया जाता है, किन्तु यह श्री गौतम स्वामी के बीच होना पाया जाता है, किन्तु यह एक गैली है, ध्यान में रखना चाहिए कि-पन्थकारों की यह एक गैली है, ध्यान में रखना चाहिए कि-पन्थकारों की यह एक गैली है, जो प्रश्नोत्तर में प्रसिद्ध और सर्व मान्य महान मात्मामों को जो प्रश्नोत्तर में प्रसिद्ध और के वने हुए कितने ही ऐसे स्वतंत्र सद्धा कर देते हैं। वर्तमान के बने हुए कितने ही ऐसे स्वतंत्र मन्य दिखाई देते हैं जिनमें उनके रचनाकार कोई मन्य महातमा प्रन्य दिखाई देते हैं जिनमें उनके रचनाकार कोई मन्य महातमा होते हुए भी प्रश्नोत्तर का दांचा भगवान महावीर और भी तो गौतमगणधर के परस्पर होने का रचा गया है, ऐसे हो जो गौतमगणधर के परस्पर होने का रचा गया है, उनमें भी ऐसी भी सूत्र पन्य पूर्वधर मादि माचार्य रचित हैं, उनमें भी ऐसी भी सूत्र पन्य पूर्वधर मादि माचार्य रचित हैं, उनमें भी ऐसी भी सूत्र पन्य पूर्वधर मादि माचार्य रचित हैं, उनमें भी ऐसी भी भूत पन्य पूर्वधर मादि भी जनता को भगवदाहा का स्वरूप बताने भद्रबाई स्वामी ने भी जनता को भगवदाहा का स्वरूप बताने के लिये उक्त कथन का श्री महावीर और गौतम गणधर के कि लिये उक्त कथन का श्री महावीर और गौतम गणधर के कि लिये उक्त कथन का श्री महावीर और गौतम गणधर के

वीच होना बताया है, किन्तु वास्तव में यह रचना शैली ही
है, श्री महावीर गौतम की उक्ति से सत्य नहीं, क्योंकि-प्रभु की
उपस्थिति के समय तो यह प्रधा थी ही नहीं। इसीलियं
किसी प्रमाणिक और गणधर रचित अंग शाकों में भी ऐसा
उल्लेख नहीं है, अतएव इस कथन को साज्ञात् प्रभु और गणधर
के बीच होना मानना भूल है, तो भी मृति पूजा के निरेध में ती
उक्त कथन बहुत स्पष्ट है, इस यन्य को मृति पूजक लोग भी
मानते हैं, इसके सिवाय अब किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं
रहती।

(१०) महा निर्शाय सूत्र का तीसरा और पाँचवां स्रध्ययन तो इस मुनि पूजा का जड़ काटने में कुछ भी न्यूनता नहीं रखता, जो कि—मुनि पुजकों का मान्य यंन्थ है।

इस तरह मृति पूजक मान्य दन्यों से भी मृति पूजा निविद्य ठहरती है, श्रात्मायी बन्धुश्री को इसका त्याग कर इतना समय आत्म फट्याण की साधक सामायिक में लगाना चाहिये। मृ० पू० से सामायिक करना श्रेष्ठ है।

्रेड्य पृजा (इन्य रुचित्त या अचित्त वस्तुओं से पृजा करना) सावय-हिरायुक्त है, राथ हो व्यर्थ और निर्ध्यक भी। अतप्य इसका त्याग कर भाव पृजा रूप सामायिक कर झात्म साधन करना चाहिए श्रावकों की सामायिक थोड़े समय का देशिवरही चारित्र है, अटएव इसका श्राराधन करना स्वल्य कालका चारित्र थर्म पालना है। स्वयं विजयानन्द् गृरि स्वीकार करतेहैं कि—

् ब्रह श्रावक सामाधिक करता है, तय साधु की नगर हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामाधिक में तेय स्ताप, पूजादिक, त की, कोंकि साम स्ताब के कास्ते तस्य स्ताय कास्त्र है सी

भविस्तव सोमायिक में प्राप्त होजाता है, रम वास्ते आवक सामायिकं में द्रव्यस्तवरूप जिन पूजा न करें।

जैननत्वादर्श पृ० ३५१)

े इसके सित्राय "पर्य्यण पर्वनी कथाओं के पृ० ६६ में भी

वली सामाधिक करता थकं सावद्य योग नो त्याग थाय, लिसा है कि-माटे सामायक श्रेष्ठ हो, तथा सामायक करनार ने मात्र पूजा-रिक ने विषे पण अधिकार नधी, अर्थान् द्रव्यस्तव करण नी योग्यता नयी, ते सामाधिक उदय झाउव महा दुर्नम छे। इन दो प्रमाणों के सिवाय सामायिक की उत्कृष्टता में और

भी प्रमाण दिये जा सकते हैं, किन्तु प्रन्थ गौरव के भय से यहां इतना ही वताया जाता है, इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि-मृति पूजक भाइयों के कथन से भी मृति पूजा से सामायिक रूप रूपम नार्म एक साधारण वुद्धि वाला भी सम्भ सकता राजायक थ्रष्ठ है। है कि—मृति पूजा सावग्र-हिंसाकारी-व्यापार् है, और सामा-र ।भ—स्रात रूपा पर का त्याग हो जाता है, इस नग्न सत्य यिक में सावध ह्यापार का त्याग हो जाता है, इस नग्न सत्य भिक्त स लावच अर्थ स्वीकार कर चुके हैं, इसलिए मूर्ति पूजक को मूर्ति पूजक भी स्वीकार कर चुके हैं, इसलिए मूर्ति पूजक का भूरत पूजा को चाहिये कि अवकों को सावद्य मूर्ति तमाज क ताउ सावच त्याग रूप सामायिक करने का ही उप-पूजा धार पार जाय मनुष्य मतमोह में पड़ जाता है तब हैय दश कर, विश्व समस्रकर भी नहीं छोड़ता है, यही हाल ऊपर को छोड़ते योग्य समस्रकर भी नहीं छोड़ता है, यही हाल ऊपर का छ। इत को भ्रष्ट कहने चाले थ्री विजयानन्दजी का भी ज सामाप्य सामायिक की प्रशंसा की और फिर ये ही सारी पह हुआ प्राप्त वाले श्रावक को सामायिक रहेल्ल्हर पूजा के कर पूरत गूंधने सादि की बाजा भर

मारम्भ परियह मादि का छूटना ही मधिक कटिन है, इसलिए सामायिक का उदय में आना ही दुलभ है।

मृतिपूजा में दुर्लभता कैसी ! भट से स्नान किया, फूल तोड़े, केशर चन्दनादि घिस कर पूजा की। ऐसे आरम्भ जन्म कार्य से तो चित्तप्रसन्न हो होता है, और यह प्रवृत्ति भी सव को सरल व सुखद लगती है, इसमें दुर्लभता की वात ही क्या है ?

धर्म दया में है हिंसा में नहीं

महानुभावो ! खरा धर्म तो इच्छाझों को वश कर विषय कपाय और स्रारम्भ के त्याग में तथा प्राणी मात्र की दया में है। इसके विपरीत निरर्थक हिंसा भव भ्रमण को बढ़ाने वाली होती है। मात्र एक दया ही संसार से पार करने में समर्थ है, यदि शंका हो तो प्रमाण में आगम वाक्य भी देखिये—

(१) श्री साचारांग सूत्र के शरूपरिज्ञा नामक प्रथम अध्ययन में जाइ मरण मोयणाए कह कर धर्म के लिए की गई पृथ्वी कायादि जीवों की हिंसा को अहित एवं अवोधी कर वताई है, और प्रभु ने स्पष्ट कहा है कि—जो इस प्रकार की हिंसा से त्रिकरण त्रियोग से निष्टत्त है, उसे ही में संयमी साधु कहता हूं।

(२) सुत्र कृतांग झ० ११ गा० ६ से मोज्ञ मार्ग की परू-

पणा करते हुए प्रभू फरमाते हैं कि—

पुढवी जीवा पुढो सत्ता, माउ जीवा तहागणी। वांउजीवा पुढो सत्ता, तण रुक्खा सन्वीयगा ॥ ७ महावरा तसा पाणा, पवं छकाय माहिया। पतावप जीवकाप, णावरे कोइ विज्ञह ॥ 🛱

" पूजादिक सामधी के झभाव से द्रव्य पूजा करती असमर्थ है, इस वास्ते सामायिक पारके काया से जो कुछ फूल गूंधना-दिक छत होवे सो करे।

प्रश्न-सामायिक त्याग के द्रव्य पूजा करणी उचित नहीं ?

उत्तर — सामायिक तो तिसक स्वाधीन है। बाहे जिस वन्तत कर लेवे, परन्तु पूजा का योग उसको मिलना दुर्लभ है, क्यों कि—पूजा का मंडाण तो संघ समुद्राय के माधीन है, करेरे होता है, इस वास्ते पूजा में विरोप पुग्य है। जैनतस्वाद्र्य पृ० ४२०)

इस प्रकार वेही विजयानन्दर्जी यहां भावस्तव कप सामापिक को त्याग कर युक्ति से सावद्य पूजा में प्रकृत्त होने की
माझा प्रदान करते हैं, एक सामायिक का उद्य माना दुर्लम
कहता है तो दूसरा उल्टा पूजा का योग किटन बताता है। इम
प्रकार मन गढ़ंत लिख डालने वालों को क्या कहाजाय?
श्रीमान विजयानन्द सूरि के मन्तव्यानुसार तो सामायिक में
ही फूल गूंच लेने चाहिय, क्योंकि इन्हीं का कथन (सम्यक्त्र
श्रव्योद्धार में) है कि—फुलों से पूजना फुलों की द्या करना
है। माश्चर्य तो यह है कि—सम्यक्त्य श्रल्योद्धार में तो इस
प्रकार लिखा, भीर जैन तत्यादर्श में सामायिक में द्रव्य पूजा
का निरंध भी कर दिया!

वास्तव में मामायिक उदय भाना ही करिश है इसमें अब त्रजन व शरीर के योगों को भारम्भादि मात्रज स्थापार के इसा इस निरास्त ऐसे सम्बर में समाना धोता है, जो कि उसमें समय का चारित धर्म का मारायन है। शुक्रस्य मोगों से भारम्भ परियह भादि का छूटना ही भ्रधिक कठिन है, इसलिए सामायिक का उदय में भाना ही दुलम है।

मृतिंपूजा में दुर्लभता कैसी! भट से स्नान किया, फूल तोड़े, केशर चन्दनादि घिस कर पूजा की। ऐसे आरम्भ जन्म कार्य से तो चित्त प्रसन्न हो होता है, और यह प्रवृत्ति भी सब की सरल व सुखद लगती है, इसमें दुर्लभता की बात ही क्या है?

धर्म दया में है हिंसा में नहीं

महानुभावो ! खरा धर्म तो इच्छाओं को वश कर विष्ट कपाय और आरम्भ के त्याग में तथा प्राणी मात्र की दृख हैं है। इसके विपरीत निर्धक हिंसा भव अमण को बहुने बहुत होती है। मात्र एक द्या ही संसार से पार करने में कुछ है, यदि शंका हो तो प्रमाण में आगम वाष्य भी देखिये—

(१) श्री झाचारांग सूत्र के शक्षपरिका नामक प्रक्रम् अध्ययन में जाइ मरण मोयणाए कह कर धर्म के लिए दी कहें पृथ्वी कायादि जीवों की हिंसा को झिहत पर्व करेंदी कर चताई है, और प्रसु ने स्पष्ट कहा है कि नहीं दूस प्रकार की हिंसा से त्रिकरण त्रियोग से निष्ठत्त हैं, उसे के के स्वयमी साधु कहता हूं।

(२) सूत्र कृतांग अ०११ गा०६ हे से हे हर्न क्रिंड इन्हें पणा करते हुए प्रभू फरमाते हैं कि—

पुढवी जीवा पुढो सत्ता, भाउ जीवा कार्याः बाउजीवा पुढो सत्ता, तण रुपला स्वाद्धाः क भहावरा तसा पाणा, पवं छकाय कार्यः पतावप जीवकाप, णावरे कोइ विद्याः क सव्वाहिं अणुजुत्तिहिं, मितमं पडिलेहिया। सव्वे अक्कंत दुक्लाय, अतो सव्वे अहिंसया॥१ पर्य खुणाणिणो सारं, जं नहिंसइ किंचणं। अहिंसा समयं चेव, पतावंत्तं वियाणिया॥१० उड्हं अहेय तिरियं, जेकेइ तस थावरा। सव्वत्य विरति कुज्जा, संति णिव्वाण माहियं॥११

अर्थात्—पृथ्वी, अप, तेजस वायु, वनस्पति, वीज सहित तथा त्रम पाणी, इस तरह छः कायरूप जीव कहे गये हैं, इनके सिवाय संसार में कोई जीव नहीं है इन सब जीवों को दुःख अप्रिय है, ऐसा युक्तिओं से युक्तिमान का देखा हुआ है। अहिंसा और समता ही मुक्ति मार्ग है, ऐसा समस कर किसी जीव की हिसा नहीं करे, यही झानी का सार है। उर्ध्व अयो और तिर्यक दिशा में जो जीव रहने वाले हैं उनकी हिंसा से निर्दृति करने को निर्वाण मार्ग कहा है।

- (३) "दाणाण संट्ठं अभयप्ययाणं"। सूत्रकृतांग श्रु०२ झ०६।
 - (४) पुन. सृत्र कृतांग श्रु० २ झ० १७ में—
- " जे इसे तस थावरा पाणा भवति तेणो सयं समारंभीति, गो अगुणे दि समारंभावति, अगुणं समारंभेतं न समणु जाणित, इति से महतो आयाणाओं उवसंते उवसंते उवदिष, पडिविस्ते से भिष्मु।
- (प) शाना धर्म कथांग में मेचकुंबार ने हाथा के भव में एक पत्र की दया की जिससे संसार परित् कर दिया, स्वर्य मूत्रकारने वहीं भागागुरूस्याएं स्पदि से संसार की परि मित कर देने का कारण दया ही बताया है।

- (६) ज्ञाता धर्म कथा झ० म में भगवती मिल्ल कुमारी ने चोक्खा परिवाजिका को कहा कि—जिस प्रकार रक्त में सना हुवा वस्त्र रक्त से धोने पर शुद्ध नहीं होता, उसी प्रकार हिंसा करने से धर्म नहीं हो सकता।
- (७) प्रश्न व्याकरण के प्रथम सम्बर द्वार में स्वयं श्रीगणधर महाराजा ने द्या को महिमा की है और साथ ही द्यावानों की महिमा करते हुए द्या के गुण निष्पन्न ६० नाम भी बताये हैं। महिमा करते हुए द्या के गुण निष्पन्न ६० नाम भी बताये हैं। उक्त प्रकाण में यहां तक लिखा गया है कि—श्री सर्वे प्रभु ने उक्त प्रकाण में यहां तक लिखा गया है कि—श्री सर्वे प्रभु ने 'समस्त जगत् के जीवों की द्या अर्थात् रहा के लिए ही धर्म कहा है "।
- (८) उत्तराध्ययन सूत्र झ०१८ में सगर चक्रवर्ती का द्या से ही मोत्त पाना वताया है, यथा—

सगरो वि सागरंत्तं, भरहं वासं नराहिवो। इस्सरियं केवलं हिचा, दयाए परिणिव्धुए॥

उक्त प्रमाणों से हमारे प्रेमी पाठक यह स्पष्ट समक्ष सके होंगे-कि जैनागमों में आत्मकत्याण की साधना के लिये द्या को सर्व प्रधान और अत्यधिक महत्व का स्थान दिया गया है, को सर्व प्रधान और अत्यधिक महत्व का स्थान दिया गया है, किन्तु मुर्ति पूजा के लिए तो एक विन्दु मात्र भी जगह नहीं है, प्रयोकि-यह दया की विरोधिनी और हिंसा जननी है।

क्योंकि-यह दया का जिसावता आर किसा जनता है। अब इस दया की महिमा में कुछ प्रमाण मूर्ति पूजक पत्थों के भी देखिय, जिन में कि ये धर्म के कार्यों में भी हिंसा करना बुरा कहते हैं

(१) योगशास्त्र के प्रकाश २ में श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य लिखते हैं।

-

सन्वाहिं ब्रणुजुत्तिहिं, मितमं पडिलेहिया। सन्वे अस्कंत दुक्खाय, अतो सन्वे अहिंसया॥१ पयं खुणाणिणो सारं, जं नहिंसइ किंचणं। अहिंसा समयं चेव, पतावंत्तं वियाणिया॥१० उड्हं अहेय तिरियं, जेकेइ तस थावरा। सन्वत्य विरति कुज्जा, संति णिट्वाण माहियं॥११

अर्थान्—पृथ्वी, अप, तेजस वायु, चनस्पति, चीज सहित तथा त्रस प्राणी, इस तरह छः कायकप जीव कहें गये हैं, इनके सिवाय संसार में कोई जीव नहीं है इन सब जीवों को दुःख अप्रिय है, ऐसा युक्तिओं से बुद्धिमान का देखा हुआ है। अहिंसा और समता ही मुक्ति मार्ग है, ऐसा समक कर किसी जीव की हिसा नहीं करे, यही झानी का सार है। उर्ध्व अयो और तिर्यक दिशा में जो जीव रहने वाले हैं उनकी हिसा से निर्देशि करने को निर्वाण मार्ग कहा है।

- (३) "दाणाण सेट्टं अनयप्ययाणं"। सूत्रकृतांग श्रु०२ अ०६।
 - (४) पुनः स्त्र छतांग श्रु० २ स्र० १७ मं—
- " जे इमे तम थावरा पाणा भवति तेणो सर्य समार्गनि, णो मण्डो हि समारंभावति, मण्णे समारंभेतं न समणु जाणेति, इति से महतो मायाणात्रो उवसंते उवसंते उवहिए, पडिविस्ते से भिक्स्।
- (4) हाता वर्ष कथांग में मेचकुंबार ने हाथा के भव में एक पत्र की दया की जिससे संसार परित् कर दिया, स्वरयं सृत्रकारने वहीं भागागुहरूम्याण् साहि से संसार की परि मित कर देने का कारण दया ही बताया है।

सञ्ज्ञाहि श्रणुज्जित्तिहिं, मितमं पडिलेहिया। सञ्जे अक्कंत दुक्लाय, अतो सञ्जे अहिंसया॥१ पयं खुणाणिणो सारं, जं नहिंसइ किंचणं। अहिंसा समयं चेव, पतावंसं वियाणिया॥१० उड्हं अदेय तिरियं, जेकेइ तस थावरा। सञ्जर्थ विरति कुज्जा, संति णिड्वाण माहियं॥११

अर्थान् — पृथ्वी, अप, तेजस वायु, वनस्पति, वीज सहित तथा त्रम प्राणी, इस तरह छः कायक्ष जीव कहे गये हैं, इनके सिवाय संमार में कोई जीव नहीं है इन सब जीवों को दुःन अप्रिय है, ऐसा युक्तिओं से चुक्तिमान का देखा हुआ है। महिसा और समता ही मुक्ति मार्ग है, ऐसा समभ कर किसी जीव की हिसा नहीं करे, यही झानी का सार है। उर्ध्व अयों और निर्यक दिशा में जो जीव रहने वाले हैं उनकी हिसा से निर्वृत्ति करने को निर्वाण मार्ग कहा है।

- (३) "दाणाण सेट्टं सभयप्ययाणं"। सृत्रहतांग श्रु०२ स०६।
 - (४) पुन. सूत्र कृतांग श्रु० २ अ० १७ में—

" जे इमे तस थावरा गाणा भवंति तेणा सयं समार्गनि, यो ग्रामो हि समारंभावंति, ग्रामो समारंभंतं न समगु जालंति, इति से महतो ग्रायाणाप्रो उवस्ति उवस्ति उवहिष, पश्चित्रिते से निक्यु।

(५) जाता घर्म कथांग में मेघकुंबार ने हाथा के सब में एक पशु की दया की जिल्ले खंगार परित् कर दिया, इवर्य मूलकारते बर्दो भागागा, रूपथाएं साहि से संसार की परि मित कर देने का कारण दया ही बताया है। (प्)योग शास्त्र भाषान्तर भावृत्ति चौथी पृ० १३७ यं० १० में १०म वें श्लोक का विवेचन करते हुए श्री केशर विजयजी गणि लिखते हैं कि-बहेतर छे के प्रथमथीज धर्म निमित्ते श्रारम्भ न

करवोग दिगम्यर जैन सम्प्रदाय के ज्ञानावर्णव प्रन्थ के प्राठवें सर्भ में श्रहिंसाबत के विवेचन का कुछ श्रवतरण पढिये-श्रहो व्यसन विध्वस्त लोकः पाखिषडिभिर्वलात् नीयते नरकं घोरं, हिंसा शास्त्री पदेशकः ॥१॥ शान्त्यर्थं देवपूजार्थं यज्ञार्थमथवा नृभिः। कृतः प्राणभृतां घातः, पातयत्यवितंबितं।१८। चारु मंत्रौषधानांवा, हेतो रन्यस्यवा क्वीचत्। कृता सती नरेहिंसा, पातत्य विलंबितं॥ २७॥ धमेबुद्धयाऽधमेः पाप जंतु घातादि लच्णम्। क्रियते जीवितस्यार्थे पीयते विषमं विषं॥ २६॥ श्रहिंसैव शिवं सूते दत्तेव, त्रिदिव अय। श्रहिंसैव हितं कुर्याद् व्यसनानि निरस्यति। ३३। श्रहिंसैकापि यत्सौख्यं, कल्याणमथवाशिवम्। दसे तद्देहिनां नायं, तपः श्रत यमोत्करः ॥ ४७॥ अर्थाव - । इयामय है किन्तु स्वार्थी लोग हिंसा का उपदेश देने वाले शास्त्र रचकर जगत जीवों को बलात्कार से नर्क ने लेजाते हैं यह कितना अनर्थ है है॥ १६॥

हिंसा विष्नाय जायते, विष्नशांत्ये कृताऽपिहि। कुलाचार धियाप्येषा, कृता कुल-विनाशिनी ॥२६]

मर्थात्-विघ्न शांति या कुलाचार की बुद्धि से भी की गई हिंसा विष्नवर्द्धक एवं कुल का चय करने वाली होती है।

(२) पुनः होमचन्द्रजी उक्त यन्य और उक्त ही प्रकाश के श्लोक ३१ में लिखते हैं कि——

दमो देव गुरुपास्ति-दानमध्ययनं तपः। सर्वमप्येतद् फलं, हिंसां चेन्न परित्यजेत्॥ ३१

अर्थात्-जो हिंसा का त्याग नहीं करे तो देव गुरु की मेत्रा और दान, इन्द्रिय दमन, तप, अध्ययन, यह मत्र निष्णल है।

(३) फिर झामे चालीसवाँ श्लोक पढ़ियं---

शम शील दया मुलं, हिन्दा धर्म जगद्धितं। महो ! हिंसापि धर्माय, जगदे मन्द्बुखिमिः ॥ ७० मर्थात्—शान्ति शील व दया मुलके जगहितकारी धर्म की

छोड़कर मन्द्रुडि वाले लोग धर्म के लिए भी हिमा कहते हैं, यह महदाश्रर्थ है।

(४) श्री हेमचन्द्राचार्य मन्दिर सूर्ति से तप संयम की महिमा स्थित बताते हुए प्रकाश, श्लोक १०८ के विवेचन में तिस्टों हैं कि-(योगशास्त्र मा० ए० १३७)

वंचण-मणि सोवाणं, थंम सदस्सो-सियं भुवन-तर्न। जो कारिजद जिणहरं, तस्रो वि तव-संत्रमा सदिसो॥

मर्थात्-मोने व मित्रमय पायरी वाला हजारी स्त्री में उग्रत तरें वाला भी यदि कोई जिनमन्दिर बनावे तो उम्में मी तम मेंयम श्रेष्ट है।

(पू)योग शास्त्र भाषान्तर झावृत्ति चौथी पृ० १३७ यं० १० में १०८ वें श्लोक का विवेचन करते हुए श्री केशर विजयजी बहेतर छे के प्रथमथीज धर्म निमित्ते श्रारम्भ न गणि लिखते हैं कि-

दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के ज्ञानावर्णव ग्रन्थ के प्राठवें करवो" सर्भ में श्रहिंसाबत के विवेचन का कुछ श्रवतरण पढिये-श्रहो व्यसन विध्वस्तेलींकः पाखिरिडिमर्वलात् नीयते नरकं घोरं, हिंसा शास्त्री पदेशकः ॥१॥ शान्त्यर्थं देवपूजार्थं यज्ञार्थमथवा नृभिः। कृतः प्राणभृतां घातः, पातयत्यवित्तंवितं।१८। चारु मंत्रीषधानांवा, हेतो रन्यस्यवा क्वीचत्। कृता सती नरेहिंसा, पातत्य विलंगितं॥ २७॥ धमेंबुद्ध्याऽधमेः पाप जंतु घातादि लच्णम्। कियते जीवितस्यार्थे पीयते विषमं विषं॥ २६॥ श्रहिंसैव शिवं सूते दत्तेव, त्रिदिव श्रय। श्रहिसेव हितं कुर्योद् व्यसनानि निरस्यति। ३३। श्चहिंसेकापि यत्सोख्यं, कल्याणमथवाशिवम्। वसे तदेहिनां नायं, तपः अत यमोत्करः॥ ४७॥ अर्थात - धर्म तो वयामय हैकिन्तु स्वार्थी लोग हिंसा का उपवेश

देने वाले शास्त्र रचकर जगत जीवों को बलात्कार से नर्फ में क्षेत्रावे हैं यह कितना मनर्ष है ।। १६ म

हिंसा विष्नाय जायते, विष्नशांत्ये कृताऽपिहि । कुलाचार धियाप्येपा, कृता कुल-विनाशिनी ॥२६]

अर्थात्-विध्न शांति या कुलाचार की युद्धि से भी की गई हिंसा विध्नवर्द्धक एवं कुल का चय करने वाली होती है।

(२) पुनः होमचन्द्रजी उक्त प्रन्य और उक्त ही प्रकाश के श्लोक ३१ में लिखते हैं कि——

दमो देव गुरुपास्ति-दानमध्ययनं तपः। सर्वमप्येतद् फलं, हिंसां चेन्न परित्यजेत्॥ ३१

अर्थात्-जो हिंसा का त्याग नहीं करे तो देव गुरु की सेवा और दान, इन्द्रिय दमन, तप, अध्ययन, यह सब निष्फल है।

(३) फिर आगे चालीसवाँ श्लोक पढ़ियं-

राम शील दया मूलं, हित्वा धर्म जगद्भितं। अहो ! हित्तापि धर्माय, जगदे मन्द्युक्तिमः ॥ ४० अर्थात्—शान्ति शील व दया मूलके जगहितकारी धर्म की छोड़कर मन्द्युद्धि वाले लोग धर्म के लिए भी हिंगा कहते हैं,

यह महदाश्चर्य है।

(४) श्री हेमचन्द्राचार्य मन्दिर मृति से तप संयम श्री महिमा मधिक बताते हुए प्रकाश, श्लोक १०= के विवेचन में तिराते हैं कि-(योगशास्त्र भा० १० १३७)

वंचगःमणि मोताणं, यंग सहस्यो। सियं भुत्रम् तत्नं। जो कारिज्ञद्र जिल्हरं, तभो वि तत्र-गंजमी स्रिक्षे ॥

मर्थात्-मोने व मिलमय गायरी वाला हजारी स्त्री से उन्नत तरें वाला भी यदि कोई जिनमन्दिर समात्र तो उसमें मी तप मेयम श्रेष्ट है।

(५) योग शास्त्र भाषान्तर आवृत्ति चौथी पृ० १३७ यं० १० में १०६ वें श्लोक का विवेचन करते हुए श्री केशर विजयजी गणि लिखते हैं कि-

वहेतर छे के प्रथमथीज धर्म निमित्ते श्रारम्भ न करवो"

दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के शानावर्णव अन्थ के आठवें सर्भ में ऋहिंसाबत के विवेचन का कुछ श्रवतरण पढ़िये— श्रहो व्यसन विध्वस्तैलोंकः पाखिएडिभिर्वलात् नीयते नरकं घोरं, हिंसा शास्त्री पदेशकः ॥१॥ शान्त्यर्थं देवपूजार्धं यज्ञार्थमथवा नृभिः। कृतः प्राणभृतां घातः, पातयत्यविलंबितं। १८। चारु मंत्रीषधानांवा, हेतो रन्यस्यवा क्वीचत्। कृता सती नरेहिंसा, पातत्य विलंबितं॥ २०॥ धर्मबुद्धयाऽघमैः पाप जंतु घातादि लच्चणम्। कियते जीवितस्यार्थे पीयते विषमं विषं॥ २६॥ श्रहिंसैव शिवं सूते दत्तेव, त्रिदिव अय। श्रहिंसैव हितं कुर्याद् व्यसनानि निरस्यति। ३३। श्रहिंसैकापि यत्सौख्यं, कल्याणमथवाशिवम्। दत्ते तदेहिनां नायं, तपः अत यमोत्करः ॥ ४७॥

मर्थात — धर्म तो दयामय है किन्तु स्वाधी लोग हिंसा का उपदेश देने वाले शास्त्र रचकर जगत जीवों को बलात्कार से नर्क में लेजाते हैं यह कितना अनर्थ है।। १६ ॥

हिंसा विष्नाय जायते, विष्नशांत्ये कृताऽपिहि । कुलाचार धियाप्येषा, कृता कुल-विनाशिनी ॥२६]

मर्थात्-विघ्न शांति या कुलाचार की वृद्धि से भी की गई हिंसा विघ्नवर्द्धक एवं कुल का त्तय करने वाली होती है।

(२) पुनः हमचन्द्रजी उक्त मन्य और उक्त ही प्रकाश के श्लोक ३१ में लिखते हैं कि——

दमो देव गुरुपास्ति-दानमध्ययनं तपः। सर्वमप्येतद् फलं, हिंसां चेन्न परित्यजेत्॥ ३१

अयिन्जो हिंसा का त्याग नहीं करे तो देव गुरु की सेवा और दान, इन्द्रिय दमन, तप, अध्ययन, यह सब निष्फल है।

महो ! हिंसापि धर्माय, जगदे मन्दवुद्धिमिः ॥ ४०

अर्थात्—शान्ति शील व दया मुलके जगहितकारी धर्म की छोड़कर मन्दतुद्धि चाले लोग धर्म के लिए भी हिंगा कहते हैं, यह महदाश्चर्य है।

(४) श्री हेमचन्द्राचार्य मन्दिर मृति से तप संयम की महिमा मधिक बताते हुए प्रकाश, श्लोक १०८ के विवेचन में तिरकों हैं कि-(योगशास्त्र भा० ए० १३०)

कंचरा-मणि मोबार्ग, यंग महस्मो-सियं भुवनश्यमं। जो कारिजद जिल्हारं, तमो वि तव-मंत्रमा महिमो ॥

कर्यात्-गोने व मिलमय पायरी वाला हजारी क्रेमी के उपन तर्व वाला भी यदि कोई जिनमन्दिर बनावे तो प्रमासे मी तप भीयम थेट है। तैयारियां करनी पड़ती है। यद्यपि जैन समाज की मूिं पूजा
में इस प्रकार की हिंसा नहीं होती, तथापि ज़हों काया के जीवों
का याने एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के असंख्यात जीवों का
घमासान तो हो ही जाता है, और धर्मान्धता के चलने सघमासान तो हो ही जाता है, और धर्मान्धता के चलने समय २ पर एकान्त निन्दनीय ऐसी मानव हत्या, अरे अपने
मय २ पर एकान्त निन्दनीय ऐसी मानव हत्या, अरे अपने
माई की हत्या भी हो जाती है, जिसके लिये केसरिया तीर्थ
भाई की हत्या भी हो जाती है, जिसके लिये केसरिया तीर्थ
भाई की हत्या भी हो जाती है, जिसके हि । ऐसी अनर्थ एवं
हत्याकाएड का काला कर्लक प्रसिद्ध ही है। ऐसी अनर्थ एवं
इत्याकाएड का काला कर्लक प्रसिद्ध ही है। ऐसी अनर्थ एवं
कन्ती इस मूर्ति पूजा को समसदार लोग कभी उपादेय नहीं
जननी इस मूर्ति पूजा को समसदार लोग कभी उपादेय नहीं



श्रपनी शान्ति के लिये या देवपूजा श्रथवा यज्ञ के लिये जो प्राणी हिंसा करते हैं वह हिंसा उनको शीव ही नर्क में लेजाने वाली होती है ॥ १ = ॥

देवपूजा, या मनत्र अथवा श्रीपध के लिये अथवा अन्य किसी भी कार्य के लिये की हुई हिंसा जीवों को नर्क में लेका ती है।। २७॥

जो पापी घर्म बुद्धि में दिसा करते हैं वे जीवन की रच्छा से विपर्पात हैं ॥ २६ ॥

यह अहिंसा ही मुक्ति और स्वर्ग लक्ष्मी की वाता है यही हित करती है, और समस्त आपनियों का नाग करती है। ॥ ३३॥

श्रकेली श्रहिसा ही जीवों को जो सुख, कल्याण प्रव श्रम्युदय देती है, वह तप स्वाच्याय श्रीर यमनियमादि नहीं देख सकते ॥ ४०॥

इतने स्पष्ट प्रमाणों से अहिंसामय धर्म ही आगमा को शानितान निद्ध होता है। इससे प्राणी दिया मय मृति पूजां निर्धेक और अहितकार ही पाई जानी है। यहि आस्वार्य में सहा जाय तो पास्पार्थ में सहा जाय तो पास्पार्थ में सहा जाय तो पास्पार्थ में सह जाय तो पास्पार्थ में जह अधिकांश में मृति-पूजा ही है। इस मृति पूजा के आधार से कितनी ही श्रेष श्रद्धा किली हुई है और कई प्रकार की श्रंष श्रद्धाचों की यह जननी भी है। जितनी हत्यों धर्म के नाम पर सृति-पूजा जारा हुई और ही जहीं है उनती श्रद्ध किली मी कारण से नहीं हुई या सश्चीरी। इसी मृति-पूजा के नाम पर होती हुई दिसा को जिलाने के जिले बीर शानवार गरी हो आप अपने विद्धांत करने की भारतार

general term

गरियां करनी पहती है। यद्यपि जैन समाज की मूरि पूजा रस प्रकार की हिंसा नहीं होती, तथापि अहों काया के जी बे हा याने एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तकके असंख्यात जीवों का घमासान तो हो ही जाता है। श्रीर घर्मान्धता के चलते स मय २ वर एकान्त निन्दनीय ऐसी मानव हत्या, अरे अपने भाई की हत्या भी हो जाती है, जिसके लिये केसरिया तीर्थ हत्याकाएड का काला कर्तक प्रसिद्ध ही है। ऐसी अनर्थ एवं अहिन की मून, पाखाड की प्रचारक व अन्यविश्वास की जननी इस मूर्ति पुजा को समसदार लोग कभी उप देय नहीं कह सकते।



अपनी शान्ति के लिये या देवपूजा अथवा यह के लिये जो प्राणी हिंसा करते हैं वह हिंसा उनको शीव ही नर्क में लेजाने वाली होती है॥ १ =॥

देवपूजा, या मनत्र श्रथया श्रीपध के लिये श्रथवा श्रन्य किसी भी कार्य के लिये की हुई हिंसा जीवों को नर्क में लेजा ती है।। २७॥

जो पापी घर्म बुद्धि में हिंसा करते हैं वे जीवन की इच्छा से विपपीत हैं॥ २६॥

यह श्रहिंसा ही मुक्ति श्रीर स्वर्ग लक्ष्मीकीवाना है यही हित करती है, श्रीर समस्त श्रापत्तियों का नाश करती है। ॥ ३३॥

स्रकेली श्रहिमा ही जीवों को जो मुख, कल्याण एवं श्रभ्युदय देती है, वह नप स्वाध्याय श्रीर यमनियमादि नहीं देख सकते ॥ ४०॥

इतने स्पष्ट प्रमाणों से, श्राहिंसामय धर्म ही आतमा की शास्तिदाना लिख होता है। इससे प्राणी दिसा मय मृति पूजा निर्धक थीर श्रहितकार ही पाई जाती है। यदि शास्त्राय में यदुरसेन जी शास्त्री के शब्दों में कहा जाय तो पास्त्रार्थ के जह श्रिकांश में मृति-पृणा ही है। इस मृति पृज्ञ के श्राधार से कितनी ही श्रेष श्रज्ञा केली हुई है और कई प्रकार की श्रंच श्रद्धार्थों की यह जननी भी है। जितनी हत्या धर्म के नाम पर मृति-पृजा ठारा हुई थार ही रही है इतर्ता श्रम्य किसी भी कारण के नहीं हुई श्र न होगी। इसी मृति-पृज्ञा के नाम पर होता हुई दिसा की मिश्रों के जिले बीर राजवर्ट शर्मी हो श्राहर श्रीवदान करने की श्राहना

فتجعليني

गारियां करनी पहती है। यद्यपि जेन समाज की मूर्ि पूजा रस प्रकार की हिंसा नहीं होती, तथापि इहीं काया के जी जो हा याने पकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तकके असंख्यात जीवों का घमासान तो हो ही जाता है, श्रीर धर्मान्धता के चलते स मय २ वर एकान्त निन्दनीय ऐसी मानव हत्या, अरे अपने भाई की हत्या भी हो जाती है, जिसके लिये केसरिया तीर्थ हत्याकाएड का काला कर्तक प्रसिद्ध ही है। ऐसी अनर्थ एवं त्रित की मून, पाखाइ की प्रचारक व अन्धविश्वास की जनती इस मूर्ति पुजा को समसदार लोग कभी उप देय नहीं कह सकते।



४०--श्रंतिम निवेदन

इतने कथन के अन्त में अपने मृति पूजक यन्धुओं से समम्र निवेदन करता है कि वे व्यर्थ की घांचली श्रीर शान्त समाज पर मिथ्या श्राक्रमण करना छोड़कर शुद्ध हदय से विचार करें। श्रीर जिस प्रकार दयादान, सत्य संयम, श्रादि हितकर धर्म की पुष्टि और प्रमासिकता लिख की जाती है उसी प्रकार मूर्ति पूजा की सिद्धि कर दिखावें, श्रीर यदि यह कार्य त्रागम सम्मत हो तो यह भी जाहिर करदें कि श्रमुक उभय मान्य मूल सिद्धान्त में सबेह मधु ने मूर्ति पूजा करने की भाजा पदान की है। इस प्रकार विधियाद के स्पष्ट प्रमाण पेस करें, कथाओं की व्यर्थ ओट होना, और शब्दों की निर-र्यक स्त्रीच तान करना यह तत्वगवेषियों का कार्य नहीं किन्तु द्यमिनिवेप में उन्मत्त मतान्य व्यक्तियों का है। इसलियेग्रा-गमों के विधियाद दर्शक प्रमाण ही पेरा करें, कथाओं की श्रीट श्रीर शक्तीं की खींचतान श्रथया श्रामम श्राज्ञा की श्र-बहेलता करने यासे प्रत्यों के प्रमाण तो किसी भोसे और हासीगा सकते को रामकाने के लिये ही रख छोड़ें। में ह्याप होगों की सुविधा के निये आप ही की मृति पुत्रक समाज के प्रतिमाशाली विद्वान पं० सेचरदासभी दोशी रचित किन माहित्य मां विकार थयाथी थयेशी द्राति' नामक पुस्तक में पंडितजी के विचार श्रापके सामने रखना है जिससे आपकी तन्य निर्माय मैं सरगुता हो, देखिये पूर्व रेश्व 🛊—

एटलुंज नहीं पण भगवती घरोरे सूत्रोमां केटलाक श्रायकों नी कथाश्रो आवे छे, तेमां तेश्रोनी चर्यानी पण नोंघ छे परं तु तेमां एक पण शब्द एवो जणातो नथी के जे उपर्धी श्रापणे श्रापणी उमी करेली देव पूजननी अने तदाश्रित देव इट्यनी मान्यताने टकायी शकीए।

हुं आपणी समाज ना धुरंधरों ने नम्रता पूर्षक विनित्त करूं हुं के तेश्रो मने ते धिपेनुं एक पण प्रमाण या प्राचीन विधान—विधि याक्य यतावशे तो हुं तेश्रोनो घणोज ऋणी धहश। " (श्रामे पृ० १३१ में) " हुं तो त्यां सुधी मानुं हुं के अमण प्रनथकाने जेश्रो पंच महावत ना पालक हुं, सर्पथा हिंसा ने करता नथी, करावता नथी, श्राने तेमां सम्माति पण श्रापता नथीं, जेश्रो माटे कोह जातनो द्रव्यस्तव विधेय रूपे होह शकतो नथी, तेश्रो हिंसा मूलक श्रा मृतिवाद ना विधान नो श्रने तद्यक्रम्बी देव द्रव्यवाद ना विधान नो उन्लेख शी रिते करे ?"

तर्बेच्हुक पाटक महोदयो ? मृति पृत्तक समाज के एक प्रसिद्ध विद्वात के उक्त तटस्य विचार मनन काने में आपको भारी सहायता देंगे, इस पर से आप अच्छी तरह से समक संकंगे कि नहमारे मृति पृतक थेणु सन्माग से वेचित हैं, इन्हें सत्यासम्य के निर्णय करने की गिव नहीं है इमीसे ये लोग आले बेदकर सूत्र तथा चारित्र घगे का घातक, संसार बद्धक एवं सम्पद्ध्य का द्वित करने वाली ऐसी मृति पृता के चक्कर में पड़े हुए हैं।

व्या हालत में आपका यह कर्नश्य हो जाता है कि-बदम आप स्वयं इस विषय को अव्हीत्रश्य अवस्त से, जिल्

(२०२)

श्रन्त में श्री जिनवाणी से विपरीत फुछ भी शब्द वादय या श्रर्थ लिखा गया हो तो मिथ्या तुष्कृत देता हुआ, आग-मह यहुश्रुतों से नम्न विनती करता हूं कि वे कृपया भूल को समभा देने का कप्ट स्वीकार करें।

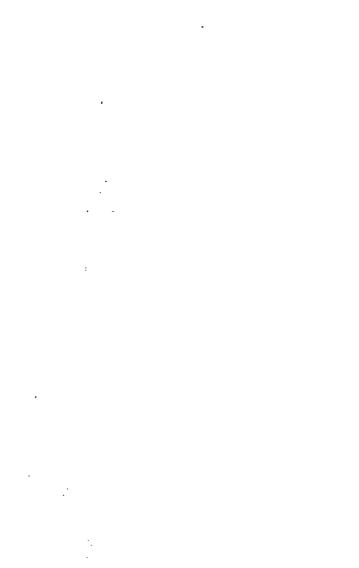
॥ सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥



॥ कव्वाली ॥

यहाना धर्म का करके, कुगुरु हिंसा बढ़ाते हैं। विम्य पे, बील, दल, जल, फूल, फल माला चढ़ाते हैं ॥ टेर । नेत्र के विषय पोपन को, रचे नाटक विविध विधि के। हिंडोला रास ग्रीर साँजी, मूढ़ मगडल मंडाते हैं ॥१॥ करावें रोशनी चंगी, चखन की चाह प्रन को। वता देवें भगति प्रभु की, आप मीजें उड़ाते हैं ॥२॥ लिला है प्रकट निशि भोजन, श्रमद्यों में तद्पि भोंदू। रात्रि में भोग मोदक का, प्रभू को क्यों लगाते हैं ॥३॥ न कोई देव देवी की, मूर्ति खाती नजर आती। दिखा श्रेगुष्ठ मूरित को, पुजारी' माल खाते हैं ॥४॥ कटावें पेड़ कदली के, बनावें पुष्प के बंगले। यिकत को मुक्तिदा कहके, जीव बेहद सताते हैं ॥४॥ सरासर दीन जीवों के, प्राण तूटें करें पूजा। वतावें श्रङ्ग परभावन कुयुक्ति पठ लगाते हैं ॥६॥ सुगुरु श्री मगन मुनिवर को, चरण चेरो कहे 'माघव'। धर्म के हेतु हिंसा जो, करें सो फ़गति जाते हैं ॥॥

[।] पुजारी—पूजा, ग्ररि, सेखक—



शुाद्धि-पत्र

		<i>'</i> €. ⇔	
68	фo	সম্ভৱ	शुद्ध
B	~	कायो	कार्यो
11	११	या चने	याचने
>>	१६	कि	o
६	११	चतुर्थ वृत्ति	चतुर्थावृत्ति
4	ર	भी	थी
3	१≒	विशाल	विशाला
१०	` १	करना	करनी
१२	२	पटिन	पत्नी
१५	¥	श्रीर	श्चतः
13	१५	विधिमार्ग	स्रविधिमार्ग
२३	१८	श्या	शस्या
३०	Ł	स्वीकार फर्ही	श्रस्वीकार नहीं
३१	8	शीघ	शीस
"	=	जाते'	गये
*)	१६	सूची	स्चि
३२	8	इस सभा	्रहन सभी
રુક			श्रंश फूट नोट है,
	पाठव	हध्यान रफ्कें।	
३ ७	Ę	जितनी	कितनी
,,	35	ऊर्च	अ र्घ
"	, =	") 1
,,	१० ,	ऊदादि	क र्ष्वदि
₹ E	É	ती -	तो

पृष्ठ	φ̈́o	श्रयुद	गुर
४०	शीर्थक	तुगिया	तुंगिया
,,	<u>π</u>	पेसा हैं	ऐसा किया है
,,	,,	यर्थ है	श्रमर्थ है
૪૪	×	पठन	पालन
,,	१४	में	से
8X	१४	महिता	माईता
४६	¥	धुवं	યુ મં
χο	२	महावर	महासूर
४१	ર	स्तनो	स्ततो
X	१३	श्रोर	थोट
४२	રૂ	मृति में	मृतियं
,,	१२	को मात्र ही कह	ते मात्र कहने को है।
४३	813	उनको 💮	उनके
¥¥	२२	मृति	मृति
;;	२३	विभेतायुक्तियां	ः निर्मतायुक्तिर्वयस्याः
XS	7	यह	ø
XX	80	श्रेथों	यंथीं
17	११	श्चागयाश्च	श्रागगाग्रय
४६	ક	सामायय	सामायिक
६०	3	मस्ति	व्रतीत्
17	8,36	विषयस्टि	વિવર્ષય
દ્ધ	\$4.	श्रीर द्वायांश्य	
६३	१२		व्याचार्य देव रक्ष
,,	1.5	र्नात	तुनी न -
६६	1,3	धं?	भा

पं०	श्रशुद्ध	शुद्ध
ર	क्या	तो
y.	हितचिन्तक	हितचिन्तन
રપ્ટ	फल्यो	कल्यो
v	-	धतां ्
१६	मुखराशाकशीभिनः	मुखराशोक्तशोभिनः
3	मालव्य	मालब्य
११	कुतक	जुतर्भ
६	द्वेश	द्वेप
ሂ	गिना	शिनना
१२	दान्	दाना रक्खे
,,	खावे	र क्
¥	हो	₹मर्ग
Ę	स्मार र् ग >	पेसे
ર	ऐस भोजन	भाजन
દ્	माजन काल)	युगं (काल) में
ક ૧૬	वह मूल्य	वहुमूल्य
<u> १</u> ८ २	की	भी
१६	भन	द्मन
ષે <u>`</u>	न्याय मल	पाप मल
વ	की तरह	"क्री तरह"
હ	श्चथ	অর্থ
ý r	नून	नूतंन
१४	पट	पेट
દ	निषे	निषेघ

वृष्ठ	ψo	श्रग्रद	शुद्ध
४०	शीर्पक	तुगिया	<u> त</u> ुंगिया
,,	5	पेसा हैं	ऐसा किया है
,,	,,	यर्थ है	श्रनर्थ है
૪૪	8	पठन	पालन
,,	१४	में	से
8X	६४	महिता	मांईता
४६	২	धुवं	શુ મં
Хo	ર	महाकर	मराभूर
प्रश्	ર	स्तनो	स्ततो
χę	१३	श्रोर	थांट .
પ્રસ	3	मृति मं	मृतियं
,,	१२	को मात्र ही कह	ते मात्र यहने की है।
४३	१७	उनको	उनके
¥ is	२२	मृति	मृति
,,	६३	निर्मतायुक्तिया <u>ं</u> ः	निर्गतायुक्तियंस्याः
XS.	ર્	यह	o
**	१०	र्प्रथी	यं याँ
,,	११	श्रागयाश्रय	आगगाश्य
યુદ	ય	सामायय	सामायिक
६०	3	म तित	प्रती न
,,	1.11	विषयीम	विवर्धय
६१	te.	चीर प्रायोश्चर	
६३	१६	याचायं देवरक	श्राचार्य देश रक्ष
, ,	१%		युक्ता म र
દ ર	१४	धा	भी

о́р	श्रश्च स	शुद्ध
٠ ٦	क्या	तो
×	हितचिन्तक	हिनचिन्तन
રષ્ટ	फल्यो	कल्यो
\u0	*	धतां 🛴
१६	मावराशाकशीभिनः	मुखराशोकशोभिनः
3	मालव्य	मालभ्य
११	कुतक	कुतर्क
٠, ٤	हे श	द्वेप
પ્ર	गिना	शिनना
१२	दान	दाना
,,	खावे	रक्खे
¥	हो	हों
	स्मार्श	स्मरण
લ ૨	पेंस 🕆	पेसे
દ્દ	भोजन	भाजन
š	युगमें काल)	
१६	वह मूल्य	वहुमूल्य
ેર	की	भी
१६	मन	द्मन
थ ७	न्याय मल	पाप मल
२	की तरंद	''की तरह''
છ	श्रथ	শ্বৰ্থ
,,	नून	नूतंन
१४	पट	पेट
દ્	निषे	निषेच

		• -	
पृष्ठ	पं०	श्रग्रद	शुद्ध
१२०	દ	. श्रनुदेन	श्र <u>न</u> ुगोदन
,,	3	कत्तद्य	कर्त्तदय
1)	80	पजा	पूजा
१२१	२	मूर्तियों में	मूर्तियें मूर्तियें
१२२	૪	चित्र	चित्रता
१२४	२ १	दया हुई ?	दया कैसे हुई ?
१२७	3.5	महिमा	महिया
१२ट	१८	श्रंतरुहशांग	खांत राहरा गि
१३१	{ ¤	साधु त्यागी	
"	२०	हि सा	हिं सा
१३४	ą	यचना उसक	उसको यचना
"	Şpr.	यही	यह
१३६	5. I. 19 ·	यलपा	श्रम्पा
१३=	१३	श्रमुचित्	श्रमुनित
દ્દેકર	ર્	मागा	प्राण
१४३	२३	दोपी	(दोयी)
ર્ક્ક	3	नहीं जानेंगे	जानेंगे
१४६	2.2	শ্বহা	थ्रं श
१४३	ક	स्लास्य	भुखाशय
१४६	1.5		रंग्य
888	ર	यरर्थ :	ब स्वां
? ?	? 5	यातकः भ व	पा वक्षा के
**	२४	राजा र	भा के
14%	.	1	?
33	3,00	i	?

```
(보)
                            शुद्ध
 ψo
          ষ্ময়ুব্ধ
१२
                          धी
            था
ર૪
                           श्रादि का
            श्रादि
રપ્ર
                           कि प्रभु से
           कि सं
 8
                          प्रशंसा
           प्रशंषा
                           वेरेण
  Ę
            ञ्देण
                            साहुगो
  3
            साहगो
                            पडिलब्मई
  ৩
            पडिल भई
                            (भोजनालय)
  9 5
            भोजनालय
                             सुपेवित्त
  ૪
            सुपक्ति
 २१
           कोई
  १
            उद्ध
  રૂ
                               ान्तर
            पाठान्त
 १०
                             सूत्र
            सू
 ર્ર
                             सुत्र
             सत्र
                             मूर्ति
  ર્ર
             मूति
   १
                              मच्छीमारों
             मच्छीमारा
   ঽ
                             कोई
             काई
  १०
                              जिनके
             जिन के
   Ł
                              निर्युक्ति
             नियुक्ति
   Ę
                                "
  १४
                ,,
                              की
               का
    ,,
                              सर्वश्र
              सवह
   १३
                              देखने
              देखन
   १६
                               ग्रंथ
              प्रथ
     3
```

(&)

वृष्ट	पं०	श्रशुद्ध	शुद
१८०	२०	सरा	करा
१⊏३	१७	कल्यण	कल्याण
१८४	२४	રરષ્ઠ	٥
१८४	१ ५-१६	का लिका	कालिक
१६१	ષ્ઠ	जन्म	जन्य
१६२	રરૂ	खरयं 🛒	
१६६	१६	खरानी	स्रागतर







पूर्वाचार्यविरचित दादासाहेब के प्राचीन स्तोत्र—स्तवन संग्रहः

श्रोजिनद्त्तस्रिपुस्तकोद्धार फण्ड प्रन्थांक: ४०

जैनाचार्य-जंगमयुगप्रधान-भट्टारक-श्रीमट् जिनकृपाचंद्रसूरीश्वरजी महाराज साहेव के शिष्य
उपाध्यायजी श्री सुख्वसागरजी
महाराज साहेव के सदुपदेश से—
सुरतिनवासी झवेरी कस्तुरचंद कल्यानचंद
फलोधीनिवासी शेठ वागमल मानकलालजी गोलेछा
की द्रव्य सहाय से

प्रकाशक:

जिनदत्तसूरि ज्ञानभंडार—सुरत.

प्रथमात्रृतिः] :: [प्रत ५००.



पूर्वाचार्यविरचित दादासाहेय के प्राचीन स्तोत्र—स्तवन संग्रहः

जैनाचार्य-जंगमयुगप्रधान-भद्दारक-श्रीमद् जिनकृपाचंद्रसूरीश्वरजी महाराज साहेव के शिष्य
उपाध्यायजी श्री सुख्नसागरजी
महाराज साहेव के सदुपदेश से—
सुरतिनवासी झवेरी कस्तुरचंद कल्यानचंद
फलोधीनिवासी शेठ वागमल मानकलालजी गोलेखा
की द्रव्य सहाय से

प्रकाशक:

जिनदत्तसूरि ज्ञानभंडार—सुरत.

प्रथमानृति.] :: प्रत ५००.